नवयुग ग्रन्थमाला प्रथम पुस्तक

वीर मराठे

FORE-WORD.

Mr. Bhimsen Vidya Alankar, Editor of the "Satyavadi" and the "Arjun" has asked me to write a foreword to his book called the "Vir Mahratta'. I regard it a high compliment not only to myself but to the race to which I belong. Racial pride has a recognized place in the national psychology, and it is allowed by common consent to be cherished, though it must be done in quite an inoffensive manner, and I may say in a spirit of humility which is by no means inconsistent with the proper pride of race and even adds dignity to it. History is an open book into which the inquiring mind likes to read and which gives it in return elevation and enlightenment. Readers of History who have imbibed the real historical spirit can easily free their mind from jealousy and form judgments upon a ground of detachment. Mr. Bhimsen evidently possesses this happy mental detachment and the pure spirit of the student; for he has in this instance gone out of his way to write an appreciative volume on the heroic achievements of the Mahratta race and to present it to the great world of Hindi readers. I feel the small service that I may be able to do to him by writing this fore-word for his book is already repaid to me more than a hundred fold by his writing the book itself, which is a generous glorification of the Mahrattas.

I do not know that the name of the Mahratta is liked and respected equally in all the provinces in India. I am afraid the Mahratta is a by-word among some people for a kind of a freebooter and a marauder. And if that be so, it must be said that the Mahrattas must take their own share of opprobrium which is always inseparable from one kind of political success in life. It is an admitted fact that in their quest of Swarajya and imperial predominance over India, the Mahrattas came perilously near to supplanting the sovereign Mogul power at Delhi, and that in the judgment of European writers on History the English succeeded the Mahrattas rather than the Moguls as *de facto* rulers in this country. For about a hundred years before 1803, when Lord Lake

* नवयुग ग्रन्थमाला का प्रथम पुष्प *

ओ३म्

"वीर मराठे"

लेखक—

भीमसेन विद्यालङ्कार

सम्पादक--सत्यवादी।

—o—

प्रथम संस्करण } १९२५ फरवरी { कीमत १)

Printed by the Arjun Press, Naya Bazar, Delhi.

समर्पण

यह तुच्छ भेंट भागीरथी के पुण्य जलों से सिञ्चित हिमालय के उपवन में अवस्थित कुल माता के चरणों में सादर समर्पित है। इस माता की गोदी में बैठकर ही सब कुछ पाया है--यहीं बाल सखाओं के साथ खेल कूद का अनुपम आनन्द पाया है--यह इकट्ठी की हुई भिक्षा माता के श्री चरणों में बार बार समर्पित है।

१२ फरवरी १९२५ भीमसेन

नया बाजार दिल्ली।

लेखक के दो शब्द

प्रस्तुत पुस्तक नवयुग ग्रन्थमाला का प्रथम पुष्प है। हमने पुस्तक को मनोरञ्जक और उपयोगी बनाने का पूर्ण यत्न किया है। भारतवर्ष में जिस नवयुग का उदय होरहा है, उसकी भावनाओं से प्रेरित होकर, नए दृष्टि कोण से लेखक ने मराठा इतिहास को कथा के ढंग पर लिखा है। कोशिश करने पर भी हम महाराष्ट्र का उत्तम मानचित्र नहीं प्राप्त कर सके, इसके लिए हमें दुःख है तथापि अपनी ओर से इसको पूर्ण करने में हमने कमी नहीं की।

प्रस्तुत पुस्तक लिखने में इन ग्रन्थों से सहायता लीगई है :—

१—मराठी रियासत (मराठी भाषा में)

२—राइज़ आफ क्रिश्चियन पावर इन इंडिया (मेजर वसु कृत)

३—एम्पायर इन एशिया (मि० टौरन्स)

४—छत्रपतीचे कारस्थानी तथा मराठी भाषा में लिखे गए शिवाजी का जीवन चरित्र।

५—यदुनाथ सरकार द्वारा लिखित शिवाजी।

६—मौडर्न रिव्यू के विशेष लेख।

७—महादेव गोविन्द रानडे का मराठों का उत्कर्ष।

हम इन सब ग्रन्थों के लेखकों तथा सम्पादकों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता का भाव प्रकाशित करते हैं।

प्रथम परिच्छेद में हमने लिखा है कि पुस्तक के परिशिष्ट में शिवाजी की ओर से जयसिंह को लिखी चिट्ठी प्रकाशित करेंगे परन्तु वह हम प्रकाशित नहीं कर सके क्योंकि उस कवितात्मक चिट्ठी की एतिहासिकता में हमें अभी तक सन्देह है।

॥ ओ३म् ॥

प्रथम परिच्छेद

(१)

समय की लहर

समय की लहर को रोकना असम्भव है। शक्तिशाली सम्राट् और संसार व्यापी साम्राज्य तक भी इस लहर के वेग को नहीं रोक सकते। रशिया और जर्मनी के प्रवल सम्राट् जार निकोलस द्वितीय तथा विलियम केसर तक को भी अपने सिंहासन छोड़ने पड़े। स्वाधीनता, आत्मनिर्णय तथा समानता के भाव आजकल के जीवन मन्त्र हैं। ब्रिटिश साम्राज्य जैसे शक्तिशाली संगठन इन भावों को दवाने में असमर्थ है। छोटे २ देश, समय की लहर का सहारा लेते हुए प्रवल वेग से उठ रहे हैं। इसी प्रकार १७ वीं १८ वीं सदी में भी उस समय के सम्राट् समय की लहर (जातीयता समानता और स्वाधीनता के भावों को) को नहीं रोक सके थे। अमेरिका, फ्रांस, इटली और इंगलेण्ड में जनताओं ने अपने जन्म सिद्ध अधिकारों को प्राप्त किया। प्राचीन रीति रिवाज़ों को वदलने में और अन्यायों को मटियामेट करने में कमी नहीं की गई। इस प्रवल अनिवार्य प्रवाह का आदि का स्रोत कहां है? किस समय और किस देश में इस नये युग का अवतार हुआ था?

विचारशीलदार्शनिक और विस्तृत दृष्टि वाले ऐतिहासिक इस संसार की एक राष्ट्र समझते हैं। भिन्न २ देशों को वे लोग इस विश्व राष्ट्र के अंग समझते हैं। हमारे इस शरीर राष्ट्र में एक अंग पर जब आघात पहुंचता है तो उसका अन्य अंगों पर भी असर पड़ता है। महा समुद्र

में उठी हुई तरंगे किसी न किसी तरह दूर २ तक अपना प्रभाव पैदा करती हैं। प्राकृतिक जगत् में यह घटना स्वाभाविक है। इस नियम की सचाई को हम आजकल के सभ्यसामाजिक जगत् में भी देख सकते हैं। रशिया के बोलशविस्म ने अपने विचारों को सब भूमि भागों तक पहुंचाया है। विचारक्रांति बड़े २ समुद्रों को पार कर के असर पैदा कर रही हैं।

अमेरिका और फ्रांस की राज्य क्रांतियों ने अनेक देशों में क्रांतियां कराई। भारतवर्ष में भी समय २ पर नई लहरें पैदा हुई। सम्राट् अकबर के समय मध्य काल में, इस देश में जनता प्राचीन रीति रिवाज़ों से ऊबकर नये और स्वर्गीय युग के लिए तरस रही थी। धर्मान्धता से बिछुड़े और रूठे हुए हिन्दुओं और मुसलमानों को, मिलाने का उद्योग किया जा रहा था। सम्राट् अकबर के जीवन में यह लहर पूर्ण रूप से उतरी हुई थी। राष्ट्रीयएकता के महत्व को अकबर समझता था। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए उसने नयी संस्थाओं और नयी नीतिओं का संचालन किया। पश्चिमीय देशों में भी इसी प्रकार की जागृति हो रही थी। यूरोप में लूथर ने इसका श्री गणेश किया। उसने रोम के पोप की स्वेच्छाचारिता और एकाधिकारता को तिलांजलि दी। लूथर का जीवन प्राचीन धार्मिक अत्याचारों के मुकाबिले में प्रोटस्टरूप या प्रतिवाद रूप था। फ्रांस स्विटजलैंड आदि देशों में इस जागृति ने ह्युगनिस्म और कैल्वनिस्म का रूप धारण किया। इंगलैंड में राणी एलिज्वेथ ने इन दो विरूद्ध लहरों की टक्कर से स्वदेश को बचाने की कोशिश की। उस समय के भारत वर्ष में भी यही रंग दिखाई देते हैं। उत्तर भारत में गुरुनानक देव धार्मिक असहिष्णुता का अन्त करने के लिए समाज को शिक्षित कर रहे थे। प्राचीन धार्मिक एकाधिकारी महन्तों के प्रभाव को मटियामेट करने के लिए उन्होंने प्राकृत भाषा में धार्मिक उपदेश देने का उपक्रम बांधा। नानक देव की शिक्षायों ने सिक्ख जाति के रूप में अपना तेज प्रकट किया। गुरु गोविन्द और महाराज रणजीतसिंह ने इस तेज को राजतेज का

रूप दिया । यह सब कैसे हुआ ! इन फकीरो के सामने उस समय के शांहशाहों की कुछ न चली । औरंगज़ेब गुरु तेगबहादुर पर अपना जोर अजमा चुका । परन्तु शहीद गुरू के शिष्य गोबिन्द के सामने उस बलशाली औरंगजेब की तलवार भी रुक गयी । लाचार होकर उसे रुख बदलना पड़ा । परन्तु समय की लहर सब जगह एक सी थी । उत्तर भारतवर्ष में जो आंदोलन प्रकट हो रहा था वही दक्षिणभारत में भी जोर पकड़ रहा था । उत्तर भारतवर्ष में सिक्ख लोग समानता और स्वाधीनता के लिए प्राणों पर खेल रहे थे ।

गुरुं गोविन्दसिंह के खालसे वाह गुरु का खालसा के जयकारा करके ऊंच नीच के भावों को दूर कर रहे थे । औरंगजेब ने इस लहर को आंख मूंद कर टालना चाहा; और दक्षिण की ओर यात्रा की । मध्य भारत में बालवीर छत्रसाल ने भी अन्यायों तथा अत्याचारों के प्रतिनिधि का मुकाबिला किया और बताया कि यहां भी स्वाधीनता की हवा वह रही है । दक्षिण में भी वही हवा बह रही थी । साधारण स्थिति के लोग अपने अधिकारों की रक्षा के लिये समर्थ रामदास के गेरुए झंडे के नीचे इकट्ठे हो रहे थे । उस समय के जन्मसिद्ध सम्राट् के मुकाबिले में वे लोग अपने हृदय सम्राट् को सिन्हासन पर बैठाने की कोशिश कर रहे थे । यह युद्ध मजहवी युद्ध न था । यह युद्ध अधिकार रक्षा का युद्ध था । उत्तर भारत में लोगों ने जन्मसिद्ध सम्राट् के मुकाबले में हृदय सम्राट् को राजसिंहासन पर बैठाने के लिए क्या २ किया; इस की कहानी मनोरञ्जक और सुनने लायक है ।

उत्तरी भारत की कथा को फिर कभी के लिये छोड़ कर अब हम आपके सामने दक्षिण देश की कथा ही रखेंगे । यहां लोगों ने अपने हृदय सम्राट् को राज गद्दी पर बैठाने के लिए, किस प्रकार अपने प्राणों को तुच्छ समझ कर इस महायज्ञ में अपने आप की स्वाहा कर दिया ? इस यज्ञ की पवित्र राख से किस शक्ति का विकास हुआ, उसका कहां तक विस्तार हुआ ? उस सक्ति ने अन्तरीय तथा वाह्य राक्षसों का

संहार कैसे किया। उस शक्ति की बढ़ती गति को किसने रोका और वह क्यों रुकी ? इन्हीं बातों का वर्णन करना है। अब इस स्वतन्त्रता की कहानी का श्रीगणेश करते हैं, परन्तु इतना ध्यान में रखिये कि कथा समाप्ति के बाद कथा सुनाने वाले दक्षिणा भी लेते हैं। इस कथा के सुनाने वाले सांसारिक ऐश्वर्य के भूखे नहीं है। उन्होंने बड़े २ साम्राज्यों को पैरों ठुकरा कर नये स्वर्गीय साम्राज्य स्थापित किये थे। इस कथा के मुख्यपात्र ही इस कथा को सुनाने वाले हैं, हमतो साधन मात्र हैं। सचाई अपने आप बोलती है। सोने पर मुल्लमा चढ़ाने की जरूरत नहीं होती। अधिक क्या कहें, हमारे पुरुषा, और हम सब की माता भारतमाता इस वीर कथा के सुनाने वालों के द्वारा अपने पुत्रों से किसी चीज की आशा लगाये बैठी हैं। वह चीज क्या हैं ? इस का पता इस कथा को सुन कर ही लगेगा। सदियों से उठती हुई समय की लहर का स्रोत स्थान कौनसा है ? आइये ! उसके दर्शन करें:—

(२)

❀ स्वाधीनता के अभेद्य दुर्ग ❀

स्वतन्त्र देशों में जन्म लेना बड़े सौभाग्य की बात है। परमात्मा ने सब को स्वतन्त्र दशा में ही सृजा है। प्रकृति और पुरुष जब इस संसार में प्रकट होते हैं, तब वे सर्वथा स्वतन्त्र होते हैं। मानवीय क्रूर हाथ के छूते ही पराधीनता की बीमारी फैलने लगती है। सामाजिक, राजनैतिक या धार्मिक पराधीनताओं का प्रारम्भ तभी होता है जब मनुष्य परमात्मा के दिये हुए स्वतन्त्र प्रकृति के प्रासाद को अपने संकुचित प्रमादयुक्त व्यवहार से कलंकित करता है:—तभी अनर्थ और उत्पात होते हैं। परन्तु सब बन्धनों से ऊपर उठे हुए परमात्मा ने मनुष्य की पैशाचिक वृत्तियों को रोकने के लिये स्वतन्त्रता देवी के लिए; कई एक ऐसे अभेद्य दुर्ग बना दिये हैं; जहां पर पराधीनता के भूतों का प्रवेश हो ही नहीं सकता, जहां

का वातावरण प्रकृति देवी की स्वतन्त्रता भरी तानों से गुञ्जित रहता है, जहां पर्वतमालाओं की उच्च चोटियां स्वतन्त्र अनन्त विस्तृत आकाश को स्पर्श करती हुई दिनरात वातावरण को स्वाधीनता की विद्युत से संचारित करती है, जहां की नदियां और बहते जल स्वाभिमानी पर्वतों के बहते निर्भर प्रपातों में से स्वच्छन्दता की शीतलता से तटवर्ती शहरों और ग्रामों में रहने वाले लोगों के दिलों को, अत्याचारियों की कोपाग्नि से पैदा होने वाले सन्ताप से बचाते हैं। जहां समुद्र अपनी अनन्त उच्छृंखल तरंगों द्वारा देखने वालों को सच्ची स्वतन्त्रता का क्षण क्षण में पाठ पढ़ाता है। जहां समुद्र के वक्षःस्थल पर क्रीड़ा करते हुए बड़े २ जहाज अपनी गगन-मंडल में फहराती पताकाओं से स्वतन्त्रता के गीत गाते हैं। ऐसे स्थानों पर प्राकृति माता स्वतन्त्रता देवी की पूजा का सामान सजाती है, ऐसे पवित्र स्थानों में प्रकृति देवी स्वतन्त्रता देवी की:—अपनी आराध्य देवी की स्थापना कर; चारों ओर दिव्य अंगुलियों द्वारा रेखा खींच देती है। इस रेखा को रावण जैसे उच्छृंखल मर्यादा हीन लोग लांघ कर मन्दिर में प्रवेश नहीं कर सकते। यदि बलात् करेंगे तो:—या तो उनका नाश होगा या उन्हें अपना स्वभाव बदलना पड़ेगा।

यौरप में स्वतन्त्रता के अभेद्य दुर्ग हौलैंड इटली और फ्रान्स हैं। जब २ योरुप में सम्राटों ने अपनी अहम्मन्यता चलानी चाही तब २ इन अभेद्य दुर्गों के रहने वालों ने क्रान्तियों द्वारा उन्हें चैन नहीं लेने दी। होलैंड का विलियम दि साइलेन्ट, इटली का मेजिनी, फ्रान्स की स्वतन्त्र जनता आज स्वतन्त्रता के उपासकों में अग्रगण्य हैं।

भारत में भी स्वतन्त्रता के दो अभेद्य दुर्ग हैं। उत्तरीय भारत के हिमालय की उच्च शिखाओं से घिरे हुए पांच नदियों से सिञ्चित प्रदेश ने चिरकाल तक भारत की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये क्या नहीं किया?

इस समय के विदेशी शासन का यदि किसी ने अन्त तक मुकाबला किया तो वह पंजाब ही था। मध्यकाल में अत्याचारी मुसलमानों का

विरोध यदि किसी ने किया था तो इसी पंजाब के सिंहों ने । आज भी यदि स्वाधीन होने की आशा लगी है तो पंजाब के सिंहों की गर्जना से ।

पंजाब शेर के रहते स्थलीय युद्धों में भारत की विजय निश्चित है। भारत की स्वतन्त्रता पर होने वाले; स्थलीय आक्रमणों का प्रकृति की ओर से किया हुआ प्रतिकार यदि कोई है तो यह पंजाब ही है। परन्तु जलीय सेनाओं द्वारा समुद्र की ओर से स्वतन्त्रता पर होने वाले आक्रमणों का मुकाबला करने के लिए भी भारत में प्रकृति देवी ने एक अभेद्य दुर्ग बनाया है। **इस अभेद्य दुर्ग का नाम महाराष्ट्र है।**

इसे पहिले दक्षिणापथ कहते थे। ताप्ती और तुंगभद्रा के नीचे के प्रदेश को महाराष्ट्र कहते हैं। यही पर कोंकण के पहाड़ पश्चिमीय समुद्र से सिंचित होकर स्वतन्त्रता देवी की पूजा करते हैं। इसी पवित्र स्थान में गोदावरी, भीमा और कृष्णा नदियें पश्चिमीय पर्वत श्रेणियों से निकल कर पूर्वीय समुद्र में समाकर अपने जलकणों से स्वतन्त्रता की शीतल बयार बहा रही है। इसी जगह के देवगिरि पंढरपुर और कल्याण नाम के पवित्र तीर्थ स्थान आज यादव चालुक्य और शालिवाहन के स्वातन्त्र्य प्रेम को प्रकट कर रहे हैं। पंढरपुर से समाजिक और धार्मिक स्वतन्त्रता की गंगा वह निकली थी। इस गंगा में नामदेवादि ने स्नान कर लोगों को स्वतन्त्र किया था। दिल्ली के अफगान वंश की गति यदि कहीं रुकी थी तो इन्हीं कोंकण के मैदानों में। अफगान वंश को तहस नहस करने वाले राज्य की यदि कहीं स्थापना हुई थीं तो इसी देवगिरि के चरणों में। मुसलमानों के कट्टरपन को यदि किसी ने कुन्द किया तो यहां के रहने वालों ने। जिस समय बहमनी रियासत राजमद से मतवाली होकर स्वतन्त्रता देवी का चीर हरण करने को उतारू थी उस समय उसके मुकाबले में यदि कोई उठा था तो इसी दक्षिण का विजय नगर। मुगलबंश के बढ़ते प्रभाव को रोकने वाली दक्षिण की पांच (आदिलशाही निजामशाही बरीदशाही कुतुब शाही इमादशाही) रियासतें ही थी। अकबर जैसे सम्राट की गति को रोकने वाली, दक्षिण की वीरांगना चांद बीबी ही थी।

दक्षिण भारत में औरंगजेब की तलवार को यदि किसी ने थामा तो महाराष्ट्र के वीरों ने। कहीं भी देखो प्राचीन काल से लेकर:—रावण के समुद्री आक्रमणों से लेकर दिल्ली के बादशाहों के आक्रमणों तक:—स्वतन्त्रता देवी की यदि किसी ने रक्षा की तो इसी महाराष्ट्र अभेद्यदुर्ग के रहने वालों ने। अर्वाचीन काल में भी भारत को पुर्तगीज और सीदियों के आक्रमण से यदि किसी ने बचाया तो इसी अभेद्य दुर्ग के रक्षकों ने। स्वतन्त्रता की भूमि में खेल कूद करने वाली विजयमद से मत्त होने वाली इंग्लिश जाति के जहाजों को यदि किसी ने रोकने का साहस किया तो इन्हीं मराठों ने। यदि अंगरेजों ने बंगाल की खाड़ी की जगह, महाराष्ट्र की ओर से यह राज नैतिक जाल फैलाने का यत्न किया होता तो भारत का इतिहास दूसरी तरह लिखा जाता। मराठों से वास्ता पड़ने पर उन्हें मालूम होता कि वे वीर होलेण्ड वालों से किसी तरह कम नहीं है। दक्षिण भारत में आखिर तक यदि किसी ने इन्हें रोका तो वह महाराष्ट्र के वीर राजनीतिज्ञ नानाफड नवीस ने। वेलजली की नीति का यदि किसी ने मुकाबला किया तो मराठों के नेता नानाफड नवीस ने। १७८० में चारों ओर से आक्रमण करने का प्रयत्न कर, यदि किसी ने अंगरेजों की स्थिति को संदिग्ध बना दिया था, तो इसी मराठा ब्रे ने। दिल्ली की बादशाहत को अंगरेजों के मुकाबले में हथियाने का यदि किसी ने साहस किया था तो भगवा झंडा फहराने वाले महादजी सेंधियां ने।

अधिक क्या कहें! १७ वीं सदी में भारत में यदि कहीं प्राचीन राजवंशों की जगह नए राजवंश की स्थापना हुई थी तो इसी महाराष्ट्र में। शिवाजी जैसे साधारण जमींदार को उसके स्वातन्त्र्य प्रेम के उपलक्ष में यदि कहीं राजमुकुट दिया गया था, तो इसी स्वाधीनता के मन्दिर में। अधिक क्या बखानें! भारत की स्वतन्त्रता के दो अभेद्य पूजा मन्दिर हैं। यदि हमको भारत में स्वतन्त्रता स्थापित करनी है और फिर से हृदय सम्राट् शिवाजी का राज्याभिषेक करना है तो आइये **भरत तिलक** की तरह स्वतन्त्रता देवी के सामने आत्मबलिदान करें। आइये राजतिलक करने की तयारी के लिये समुद्रो से सिञ्चित महाराष्ट्र तीर्थ की यात्रा करें।

(३)

❀ सन्तों का तेज ❀

पुराणों में कथा आती है कि एक बार राजर्षि विश्वामित्र अपने राजतेज के अभिमान में चूर हुए वशिष्ठ के आश्रम में पहुंचे। राजतेज और ब्रह्मतेज में कौन अधिक प्रभावशाली है, इस पर विचार होने लगा। अन्त में विश्वामित्र को मानना पड़ा कि ब्रह्मतेज के सामने राजतेज की कुछ नहीं चल सकती। उन्हें स्वीकार करना पड़ा था "ब्रह्मतेजो बलंबलम्" ब्रह्मतेज ही असली बल है। इस कथा की सचाई हमें भिन्न २ देशों के इतिहासों में दिखाई देती है। युरोप और इंगलैंड का इतिहास इस बात का साक्षी है कि बिना धार्मिक सुधार और धार्मिक जागृति के कोई देश व राष्ट्र स्वतन्त्र नहीं हो सकता। युरोप में प्रोटेस्टेन्टों ने धार्मिक क्षेत्र में पोपों की एकाधिकारिता को नष्ट करके ही राजनैतिक आजादी की आवाज को बुलन्द किया था। इंगलैण्ड में प्युरिटन्स ने कैल्विनिस्ट के साथ मिल कर रोमन कैथों-लिक महन्तों से देश को मुक्त कराने के बाद ही राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त की थी। भारत में भी यही हुआ था। उत्तर भारत में नानकदेव ने कबीर आदि कि शिक्षाओं के साथ २ सच्चे धर्म का उपदेश सुना कर उस समय के ब्राह्मणों के एकाधिकार को तोड़ा था। दक्षिण भारत में १५ वीं सदी में पंढरपुर स्थाम पर ज्ञानदेव नामदेव आदि सन्तों ने इस धार्मिक जागृति का प्रारम्भ किया था। उस समय के दाक्षिणात्यब्राह्मण धर्म-कार्य में एकाधिकारी बने हुए थे। कोई भी अब्राह्मण कर्मकाण्ड या देवतार्चन करने का अधिकारी नहीं समझा जाता था। इस प्रकार की परिस्थिति में आर्यधर्म सर्वथा निस्तेज हो गया था। ब्राह्मणों के सिवाय अन्यों को विद्यादान देना पाप समझा जाता था। धार्मिक ग्रन्थ संस्कृत भाषा में लिखे गये थे। साधारण लोग अपने धर्म के स्वरूप को न समझते थे। जो लोग अपने धर्म को, अपने कर्तव्य को नहीं समझते, उन्हे जो चाहे दबा सकता है। जिस प्रकार राख से आच्छन्न आग पर कोई भी आदमी चल सकता है। परन्तु जब वही आग अपने दाहरूप धर्म से प्रचण्ड तेज वाली

हो तो उसके पास कोई फठकने तक का साहस नहीं करता। यही बात समाज की है। अपने धर्म पर दृढ़ लोगों को कोई नहीं दबा सकता। भारत में कई सदियों से अनिर्वाय कारणों से आर्य हिन्दू लोग अपना धर्म खो बैठे थे। इसी लिए गजनी के विदेशी शासक यहां पर अधिकार कर सके। इन सब आक्रमणों से देश को बचाने के लिए आवश्यक था कि धर्म का प्रचार किया जाय। इस का श्रीगणेश १५ वीं सदी में हुआ। इस समय के ज्ञानदेव आदि सन्तों ने अपनी अखण्ड तपस्या बल द्वारा अदमनीय तेज धारण किया। हजारों ब्राह्मण दीक्षा लेने के लिए उनकी शरण में आने लगे। इन सन्तों ने धार्मिक शिक्षाओं को व्यवहारिक भाषा मराठी में प्रचारित किया। नामदेव चोखा मल नरहरि सुनार आदि छोटी जाति के लोगों को इस सन्त मंडली ने अपनाकर धर्म के क्षेत्र में जन्म के बंधन को दूर किया। पंढरपुर के मन्दिर में सन्तों ने इस प्रकार की घोषणा की कि ऊंची जाति में जन्म लेने से क्या लाभ है? यदि हृदय में, परमात्मा के लिए दृढ़ विश्वास औ भक्ति नहीं है तो संस्कारों से और धार्मिक परायणों से कोई फ़ायदा नहीं। इस संत मंडली की शिक्षा के कारण लोगों का नैतिक आचार सुधरने लगा। साधारण लोग इन सन्तों के उपदेश सुनकर अपने जीवनों को सुधारने लगे। जाति में नया रक्त संचारित होने लगा। छोटी जाति के लोग भी सदाचारी और परमात्मा के भक्त बनकर राष्ट्र के अनेक विभागों में काम करने लगे। इनकी विकसित शक्तियों से राजा लोग लाभ उठाने लगे। उस समय के राजदरबारों में संतों के शिष्य ऊंची २ जगहों पर नियुक्त हुए। इस प्रकार १५ वां और १६ वीं सदी में इस संतमंडली का जोर रहा। इस सन्त मंडली ने तात्कालिक शासकों के साथ किसी प्रकार का मुकाविला न करते हुए अपनी शिक्षाओं का प्रचार किया था, इस लिए इनकी शिक्षाओं में राजनैतिक झलक दिखाई नहीं देती। सन्तों की शिक्षाओं से जागृत हिन्दुयों के लिए स्वराज्य स्थापना की कोशिश क-करना स्वभाविक था। राजनैतिक दशा ऐसी थी कि उस समय के शासक इन जागृत मराठों की सहायता के बिना अपना राज्य कार्य नहीं चला सकते थे। कम्बरसेन मुरारजगदेव मदनपत एकनाथपन्त तथा लख्खूजी

जाधवराव आदि मराठे उस समय के प्रभावशाली नेता थे। इन की राजनैतिक योग्यता को उस समय के शासक भी मानते थे। आवश्यकता थी कि कोई महाकल्पक उन्हे स्वतंत्र स्वराज्य स्थापित करने के लिए प्रेरित करे। जिस के नेतृत्व में वह विदेशी शासकों से सबन्ध तोड़ कर अपने पैरों पर खडे हों। समय अपनी आवश्यता स्वयं पूरा करता है।

१७वीं सदी के प्रभात काल में समर्थ गुरु रामदास ने शिवाजी को इस असहयोग महायज्ञ के लिए दीक्षित किया। महाराष्ट्र के इतिहास में यह सन्त मण्डली विशेष स्थान रखती है।

रामदास की सन्त मण्डली ने धार्मिक सुधारों के साथ २ राजनैतिक सुधारों के लिये भी लोगों को तैयार किया। महाराष्ट्र की स्वतन्त्रता का मर्म समझने के लिये इस सन्त मंडली की शिक्षाओं का विशेष अनुशीलन करना चाहिये। पाठक गण! इतिहास अपने आपको दोहराता है। १५वीं और १७ वीं सदी में जो लहरें भारत के एक भाग में चली थी, आज भी वही जोर पकड़ रही है। १९ वीं सदी के उत्तरार्ध में स्वामी दयानन्द राजा राममोहन राय स्वामी विवेकानन्द आदि सन्तों ने भारत में धार्मिक जागृति का सूत्र पात किया। व्यावहारिक भाषा में धार्मिक शिक्षाओं का प्रचार किया। लोगों में नया जीवन प्रकट होने लगा। योग्य भारतीयों ने विदेशियों पर अपनी राजनैतिक योग्यता की छाप बैठायी है। भारतीयों की सहायता के विना अंग्रेज़ों के लिए यहां शासन करना मुश्किल है। यह सचाई है जिसे प्रत्येक विचारशील अंग्रेज़ स्वीकृत करता है। माननीय दादाभाई नौरोजी श्री रमेशचन्द्रदत्त और माननीय गोखले की राजनैतिक योग्यता से कौन परिचित नहीं ! इस सचाई को समझकर ही आज महात्मा गांधी जी समर्थ रामदास की तरह लोगों को स्वतन्त्र स्वराज्य स्थापित कराने के लिए प्रेरित कर रहे हैं। यह ऐतिहासिक सचाई है कि रामदास अपने कार्य में सफल हुए। आज हम भी सफल होना चाहते। इस लिये आइए १७वी सदी के स्वाधीनता के उपासक के जीवन चरित का अनुशीलन करें और देखें कि सफलता प्राप्त करने के लिए हमें क्या करना चाहिए। वह कौनसा रहस्य था जिसके कारण शिवाजी विपरीत अवस्थाओं में भी, विशाल शक्तिशाली स्वराज्य स्थापित कर सका।

(४)

❋ सावधान ! ❋

१० वीं सदी में उत्तर गोदावरी के किनारे बीड़ प्रान्त के हिवरा गांव में कृष्ण पन्त नाम के देशस्थ ब्राह्मण रहते थे। उनके चार सन्तान थीं। ज्येष्ठ पुत्र दशरथ पन्त ने हिवरा गांव से कुछ दूर जांवगांव में ठिकाना किया। इन्हीं के वंश की उन्नीसवीं पीढ़ी में सूर्या जीपन्त नाम के पुरुष हुए। इनकी स्त्री का नाम राणुवाई था। सूर्या जी पन्त वाल्यकाल से ही भगवद्भक्त थे। पटवारी का सरकारी काम करते थे, शेष समय सूर्य भगवान की पूजा में व्यतीत करते थे। इनके दो सन्तान हुई। प्रथम का जन्म १६०५ ईस्वी में हुआ। इनका नाम पहिले गंगाधर था पीछे श्रेष्ठ नाम से प्रसिद्ध हुए। १६०८ में द्वितीय पुत्र का जन्म हुआ। इसका नाम नारायण रक्खा गया। यही आगे चल कर रामदास नाम से प्रसिद्ध हुए। यही शिवाजी के गुरू, महाराष्ट्र में स्वतंन्त्रता के प्रवर्तक थे। नारायण वाल्यकाल में ही अपने गुणों की विशेषता के कारण प्रसिद्ध होने लगे। वृक्षों पर चढ़ना, मकानों पर हनुमान की तरह कूद फांद मचाना-खेल कूद, गंगा में तैरना-आदि बातों के शौकीन थे। उनकी स्वाभाविक वीरतामयी चंचलता के कारण सब लोग उन्हें बहुत चाहते थे।

इस वाल सुलभ चपलता के साथ भक्ति भाव की गंभीरता भी उनके चेहरे पर झलकती थी। पैतृक संस्कारों के कारण वाल्यकाल से ही विरत थे; परन्तु पिता के देहान्त के बाद यह वैराग्य भाव और भी प्रवल हो गया। उन्हों ने अपने बड़े भाई ज्येष्ठ से मन्त्र दीक्षा लेनी चाही। बड़े भाई ने कहा तुम अभी छोटे हो। यह सुनकर समर्थ गांव के बाहर गोदावरी के किनारे हनुमान मन्दिर में प्रार्थना करने लगा। वहां उनके हृदय में निम्न लिखित भावना जागृत हुई--कोई उनसे कह रहा है और उन्हें राम मन्त्र का उपदेश दे रहा है। **"सारी पृथ्वी में यवन छाए हुए हैं अनीती का राज्य है दुष्ट लोग अधिकार मद से मत-**

वाले हो कर साधुओं को सता रहे हैं। धर्म का ह्रास हो रहा है, इसलिए आप वैराग्य वृत्ति से कृष्णा तीर पर रहकर उपासना और ज्ञान की वृद्धि करके लोकोद्धार करें।" जब घर वालों को मालूम हुआ कि बाल समर्थ के दिलमें ऐसे भाव पैदा हुए हैं उनके आनन्द का पारावार नहीं रहा। माता और बन्धु यह सुन कर आनन्द से गदगद् हो गए। कुछ समय वाद रामदास के विवाह की बात चली। माता राणुबाई नारायण को विवाह के लिए कहने लगी। विवाह का नाम सुनते ही रामदास चिढ़ते और विरक्ति प्रकट करते थे। कई बार तो इस आफत से बचने के लिये जंगल में चले जाते थे। एक बार उनकी माता ने एकान्त में नारायण से कहा-पुत्र तू मेरी बात मानता है कि नहीं? विवाह की बात छिड़ते ही तू पागलपन क्यों करता है तुझे मेरी शपथ है **"अन्तरपट"** पकड़ने तक तू विवाह के लिए इनकार मत करना।

नारायण ने कहा **अच्छा अन्तरपट पकड़ने तक** में इनकार न करूंगा। भोली भाली माता यह सुन कर प्रसन्न हुई। विवाह का निश्चित समय आया। विवाह आरम्भ हुआ। सीमान्त पूजन आदि लग्न विधि होती रही। नारायण भी मुसकराते रहे। अन्तरपट पकडने का समय आया मंगलाष्टक पढ़ा जाने लगा सब ब्राह्मण एक स्वर से बोले:—

"सावधान!"

यह शब्द सुनते ही नारायण सोचने लगे कि इस "सावधान" शब्द का क्या मतलब है? मैं तो पहले ही सावधान हूं, माता की आज्ञा थी कि मैं अन्तरपट पकड़ने तक इन्कार न करूं। यह आज्ञा भी मैंने शिरोधार्य की है। अब यहां खड़े रहने की क्या आवश्यकता? यह सोच कर वे एक दम विवाह मंडप से भाग निकले। लोगों ने उनका पीछा किया। कुछ पता नहीं लगा। रामदास जंगल में रहे। टाकली में भयंकर तपश्चर्या शुरू की। दो चार दिन गांव जांव में रहकर वे पैदल ही नासिक पंचवटी की ओर चले। १२ वर्ष का बालक अपनी लगन में मस्त सब प्रकार के दुखों को

झेलता हुआ १६२० ई० में नासिक पंचवटी से दो तीन मील पूर्व की ओर टाकली गांव के बाहर विस्तृत पुराने वृक्ष की छाया में कुटी बनाकर रहने लगा। वहीं रहकर तप करना शुरू किया। प्रातः गोदावरी स्नान करने जाते और दुपहर तक वही कटी तक पानी में खड़े होकर जप करते। इसके अनन्तर मधुकरी भिक्षा करते और भोजन भजन के बाद सायंकाल फिर ध्यान में लीन रहते। दृढ़ मौन व्रत धारण किया। पानी में खड़े रहने से उनका शरीर भी गलने लगा उन्होंने अध्यात्मिक आंनन्द की धुन में शारीरिक सुख दुःख की चिन्ता नहीं की। इस प्रकार निरन्तर बारह वर्ष तक तपस्या करके मनोजय सिद्ध किया। आत्मसन्तोष होने के बाद पैरों में पादुकां, हाथ में माला, कांख में कूवडी और तुम्बा, सिर पर टोपी, देह में कफनी पहर कर तीर्थ यात्रा के लिए निकले। तपस्या द्वारा मनोजयतो सिद्ध हो गया था। सचाइयां प्रत्यक्ष भासमान होने लगी। जीवन की सचाइयों की सार्वभोमिकता को अनुभव करने के लिए अकेले निकल पड़े। हमारा इष्टदेव **समर्थ** है। वह हर जगह है इस सचाई को ध्यान द्वारा देखकर भी अनुभव करने की आवश्य- कता होती है। इस लिए हम देखते हैं कि प्रत्येक धर्माचार्य ने अपने जीवन का बडा भाग तीर्थ यात्रा में लगाया है। तीर्थ यात्रा से दूसरा बड़ा लाभ यह है कि देश की, जनता की, असली स्थिति मालूम हो जाती है। जनता की स्थिति मालूम किए बिना असली काम नहीं हो सकता। जो लोग देशके लिए काम करना चाहते हैं उन्हें चाहिए कि वे रेलगाडियों की यात्रा में अपना समय गंवाने की अपेक्षा गावों की स्थिति जानने के लिए पैदल यात्रा करें। जातियों की जीवनी शक्ति के स्रोत गांव हैं; शहर नहीं। आज कल के हमारे कई एक मान्य नेता शहरों की शानदार सभाओं में व्याख्यान देकर समझते हैं कि उन्होंने अपना काम कर दिया। परन्तु महाराष्ट्र के उद्धारक हमें कह रहे हैं कि यदि देश में जागृति पैदा करनी है तो गावों में काम करो। समर्थ ने सारे भारत की यात्रा की और मधुकरी वृत्ति से निर्वाह किया। परन्तु समर्थ की भिक्षा में और **आज कल के साधुओं की भिक्षा में बड़ा**

फर्क है। आज कल के भिखारी अपाहिज निकम्मे केवल पेट भरने के लिए भिक्षा मांगते हैं; परन्तु समर्थ की भिक्षा का उद्देश्य उन्हीं के शब्दों में स्पष्ट है। वे कहते हैं:—

कुग्रामें अथवा नगरें। पहावीं घरांची घरें। भिक्षा मिसे लहान थोरे। परीसूनसोडावीं। ग्राम हो या नगर, सब जगह भिक्षा के निमित्त भ्रमण कर छोटों और बड़ों की स्थिति को जानने के लिए घर २ छान डालो। आज भारत के ५२ लाख साधुवों में से कितने हैं जो इस राजनैनिक या अन्य उच्च उद्देश्य से भिक्षा मांगते है। एक ही ऐसा सच्चा भिखारी है जिस ने चम्पारन के किसानों और दुःखितों की अवस्था जानने की कोशिश की। वही देश की बिमारी की असली दवा ढूंढ सका है। इस प्रकार १२ साल पैदल यात्रा करके अपने ज्ञान को अनुभव द्वारा परिपक्व किया। इस की झलक उनके दासबोध में पद २ पर दिखाई देती है। यात्रा से लौट कर पंचवटी पहुंचे। पंचवटी से चलकर गोदावरी की प्रदक्षिणा करते हुए अपनी जन्म भूमि में पहुंचे। वहां उन्हें अपने बन्धुओं का स्मरण हो आया। माता पुत्र वियोग से व्याकुल थी। इसी शोक में निरन्तर अश्रुधारा के कारण दीखना भी बन्द हो गया था। समर्थ स्नानादि करने के उपरान्त भिक्षा के लिए निकले। अपने घर के सामने जाकर भिक्षा की पुकार की। वृद्ध माता ने अपनी पुत्र वधू को वैरागी को भिक्षा देने के लिए कहा। भिक्षुक ने कहा। माता! आज का भिक्षुक भिक्षा लेकर ही जाने वाला नहीं है। पुत्र की आवाज सुनते ही माता का हृदय भर आया गद गद होकर कहने लगी। "तूनारायण" है। एक दम आलिंगन किया। यह अलौकिक आलिंगन ही संसार का सार है। माता और पुत्र का स्नेह ही स्नेह का सार है। माता के उद्धार के लिए विरक्तिव्रत धारी ने मोह और त्याग का अपूर्व सम्मेलन कराया। कहा करते हैं जो मोही हैं; वह त्यागी नहीं बन सकता, जो त्यागी है वह मोही नहीं बन सकता। परन्तु रामदास ने बतला दिया कि किस प्रकार त्याग और मोह का भी मेल हो सकता है। आज भारतमाता को भी ऐसे ही समर्थों की आवश्यकता है जो त्यागी होते हुए भी

इतने त्यागी न बने कि माता को भी भुला दें। श्रीमाता जी तथा बड़े भाई की आज्ञा प्राप्त कर समर्थ प्रचार कार्य के लिए स्थान २ पर भ्रमण कर लोगों को धर्म और कर्तव्य का उपदेश देने के लिए प्रस्थित हुए। उस समय के अत्याचारी राजा लोग प्रजाओं पर अनेक तरह के अत्याचार कर रहे थे। रामदास ने स्थान २ पर अपनी शिष्य मंडलियों द्वारा प्रजाओं को इन अत्याचारों से बचाने का प्राबन्ध किया। शिवाजी को अपना साधन बनाया। अत्याचारियों का दमन किया। इसी बीच में १६५५ में में माता का देहान्त हुआ। १६७७ में ज्येष्ठ बन्धु इस संसार को छोड गए। आखिर १६८० ई० को प्रिय शिष्य शिवजी अपना काम पूरा कर परलोक सिधारे।

इसके बाद १६८१ की रामनबमी के दिन समर्थ ने भी देह का संवरण किया। पाठकगण! समर्थ ने शिवाजी को जिस मन्त्र की दीक्षा दी थी उस का पाठ तो हम आप के सामने फिर करेंगे। आज तो हम आप के सामने समर्थ का सन्देश रखते हैं। समर्थ आज के भारतीयों को संदेश दे रहे हैं। **सावधान होकर काम करो**। हम में से जिस किसी ने जनोद्धार के लिये विरक्ति का व्रत धारण किया है उसे चाहिये कि वह समर्थ की तरह संसार में प्रवेश करते समय सावधान रहे। सन्देश यही है कि "जिस ने स्वयं स्वतन्त्र होना है तथा अन्यों को स्वतन्त्र कराना है, उसे विवाह बन्धन में फंसते समय सावधान होना चाहिए" जिसने स्वतन्त्रता की अर्चना का व्रत लिया है और इस व्रत को निभाने क लिए त्यागव्रत धारण किया है, 'उसे अपना प्रेम एकही ओर लगाना चाहिए'। माता के पराधीन होते, पुत्रों का कोई अधिकार नहीं कि वे विवाह समारोह करे। इस समय तो माता से प्रेम करने वाले त्यागी पुत्रों और त्यागिनी पुत्रियों की जरूरत है।

आज के भारतमाता के 'समर्थ पुत्र' की भी यही मांग है। स्वतन्त्रता के उपासकों की यह भिक्षा व्यर्थ न जायगी। जब हम चरित नायक की इस मांग को पूरा करने का संकल्प करेंगे तभी उस गीता मंत्र का:-

जिस का उपदेश समर्थ ने शिवाजी को किया था, जिसके प्रभाव से शिवाजी मातृभूमि की दुःखभरी उसासों को दूर कर सका था— मर्म समझ सकेंगे। और फिर से भारत में स्वतन्त्रता देवी के मंदिर की आधार शिला रख सकेंगे। शुभ मुहूर्त में शुभ कला में इस संकल्प को कार्यरूप में परिणत कीजिए। आशा है भारत के देशभक्त नवयुवक माता की इस पुकार को सावधान होकर सुनेंगे। "क्योंकि शत्रु प्रबल और मायावी हैं"।

(५)

❀ भगवां झण्डा ❀

शिवाजी ने तुकाराम से दीक्षा लेनी चाही। तुकाराम ने कहा रामदास से दीक्षा लो। शिवाजी ने सद्गुरु की ढूंढ में जंगल छान डाले। लाचार होकर दर्शन करने की अभिलाषा से रामदास को पत्र लिख भेजा और राजधानी में निमन्त्रित किया। रामदास शिवाजी की योग्यता को समझते थे। शिवाजी का मन सांसारिक कलहों से उद्विग्न हो उठा था, वह वैराग्य लेना चाहते थे। रामदास ने ऐसे समय में शिवाजी को जो उपदेश दिया, वह स्वर्णाक्षरों में लिखा जाना चाहिये।

"इस समय भूमंडल में ऐसा कोई नहीं जो धर्म की रक्षा करे। **महाराष्ट्र धर्म तुम्हारे ही कारण बचा है। जितने मराठे हैं उन्हें मिलाओ।** जो थोड़ी बहुत गो ब्राह्मण की रक्षा हो रही है वह तुम्हारी ही महिमा है। अनेक जन तुम्हारे सहारे रहते हैं। सबकी रक्षा करनी है। सचमुच राज्य का काम बड़े जोखिम का है। राजा मन्त्री को मिलकर काम करना चाहिये। **राजनीति और धर्मनीति एक ही बात है।** सब लोगों को राजी रखना भले बुरे की खूब जांच करना। नीति का त्याग न करना। लालच में कभी न फंसना, **सदा "सावधान" रहना।** ऐसा करोगे तो सफल होगे।"

यह पत्र पढ़कर शिवाजी की गुरु-दर्शन की इच्छा और भी प्रबल हो गई। आखिर चाकल के जंगल में खड़ीक बाग में रामदास के दर्शन किये। १५७१ शाके गुरुवार के दिन शिवाजी को रामदास ने उपदेश दिया और मन्त्र की दीक्षा दी। दासबोध के तेरहवें दशक अनुबन्ध में यही उपदेश है। इस मन्त्र दीक्षा के बाद रामदास ने अपने शिष्य को अद्वैतरस का साक्षात्कार करने के लिये घरबार छोड़ने की सलाह नहीं दी अपितु उन्होंने कहा:—

"तुम्हारा मुख्य धर्म, राजसम्पादन करके धर्म स्थापन करना है। देव और ब्राह्मणों की सेवा करना, प्रजा की पीड़ा को दूर कर, पालन तथा रक्षण करना है"।

गुरु आज्ञा पाकर, आशीर्वाद से उत्साहित होकर शिवाजी ने विदेशी और स्वदेशी सब प्रकार के अत्याचारियों का दमन किया। बीजापुर दरबार से लेकर दिल्ली की बादशाही तक सब ने शिवाजी का लोहा माना। युद्ध के मैदानों में, रणचण्डी की प्रचण्ड कोपानल में भवानी का सहारा लेकर, चिरतृषित स्वतन्त्रता देवी को रिझाने में शिवा जी ने कोई कमी नहीं की। शिवाजी ने यह सब काम जिस वीरता और चतुरता से किये इसकी सराहना उसके शत्रु भी करते हुए नहीं थकते। औरंगजेब को भी मानना पड़ा था:—

"शिवाजी बड़ा भारी लड़ाका था। मैंने भारत के प्राचीन राज्यों को नष्ट करने के लिये बड़ा यत्न किया। मेरे मुकाबले में सिवाय शिवाजी के और कोई राज्य स्थापना के कार्य में सफल नहीं हो सका। १९ वर्षों तक मेरी सेना उससे लड़ती ही रही परन्तु वह रुका नहीं। उसका राज्य निरन्तर बढ़ता ही गया"।

जिसके पिता ने बड़ी २ बादशाहियों को पलटने में अपने जीवन का बड़ा भाग लगाया—जिसने राज्यकर्ता का पद पाया-उसके पुत्र के लिये नई राज-स्थापना की बात कठिन न थी। शिवाजी ने जिस राज्य की

स्थापना की उसकी विशेषता-इस बात में नहीं कि उसने बड़ा भारी कोष एकत्रित किया या अभिमानी राजाओं के सिर झुका दिये। शिवाजी के स्वराज्य की विशेषता उसके शान्दार महलों के उच्च गगन स्पर्शी मीनारों पर फहराने वाले भगवे झंडे की थी। इस भगवे झंडे के नीचे ही महाराष्ट्र लोग एकत्रित हुए थे। इसकी कृपा से ही पुराने घरानों ने शिवाजी की अधीनता में काम करना स्वीकृत किया था। भगवे झंडे को हाथ में लेकर रामदास और उसकी शिष्य मण्डली ने भारत में एक ऐसा जाल विछाया था जिस में से किसी का बच निकलना मुश्किल था।

रामदास समझते थे कि जब तक प्रजा में जागृति नहीं होगी तब तक नई राज्यस्थापना नहीं हो सकती। इस लिये उन्हों ने निश्चय किया था कि अपनी शिष्य मण्डली द्वारा देश में **'नीति, धर्मनीति और राजनीति'** का प्रचार किया जाय। रामदास समझते थे कि नीति शिक्षा तथा धर्म प्रचार, तब तक अपना अच्छा फल नहीं ला सकते जब तक दोनों की रक्षा करने वाली शासक संस्था अपने हाथों में न हो। इस सचाई को समझ कर ही रामदास ने शिवाजी को अपनाकर राजशक्ति द्वारा लोगों के नैतिक तथा धार्मिक आचार की शुद्धि के लिये यत्न किया था। आज भारतवर्ष में कई समाजें "राज संस्था अच्छी है या बुरी है" "पाप को बढ़ाने वाली है या घटाने वाली"—आदि बातों की उपेक्षा करके, केवल मात्र शिक्षणालयों और धर्म मन्दिरों की सहायता से संसार का उद्धार करना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों को याद रखना चाहिए कि अरक्षित शिक्षणालय और धर्म मन्दिर तात्कालिक अत्याचारी शासकों के साधन बन जाते हैं। शासक लोग—अनेक उपायों से कइयों को अपने यहां नौकरी देकर-कइयों पर कृपा करके अपनी अस्वाभाविक स्थिति को स्थिर रखने के लिए भरपूर कोशिश करते हैं। बड़े २ महन्त आज राजाओं के सहायक बने हुए है। पुरानी राज शक्तियां नयी शक्तियों को उठने नहीं देती। रामदास

इस सचाई को समझते थे। उन्होंने जहां स्थान २ पर मठ खोले और वहां योग्य व्यक्तियों को नियुक्त किया। साथ ही इन की रक्षा के लिये शिवाजी की तलवार का सहारा लिया। १६ वी सदी में स्वामी दयानन्द ने भी जनता में जागृति पैदा करने के लिये 'जनोंद्धार' करने के लिपे स्थान २ पर 'आर्य समाज' नाम के मठ, शिक्षा और धर्म प्रचार के लिये स्थापित किये। इनकी सहायता से अथवा इनकी रक्षा के लिये—तात्कालिक उदयपुर के महाराणा की तलवार को भवानी का रूप देना चाहा। उन्हें आशा थी कि यदि मैं अपने काम में सफल न हो सका तो कोई बात नहीं; ये आर्य समाजें देश में फिर से नैतिक, धार्मिक और राजनतिक जागृति पैदाकर, सुधार करेंगी। परन्तु अयोग्य राजनीतिभीरु अनुयायियों ने गुरु के आदेश को नहीं समझा। परिणाम यह हुआ कि आर्यसमाज के शिक्षित भाग में "सरकारी नौकरों" सरकारी '**विलायती पुरोहित-वकीलों**' की अधिकता है। वे लोग समझते हैं कि कोर्ट में झूठ बोल कर भी धर्म कमाया जा सकता है। रामदास का आदेश है कि यदि लोक में जागृति पैदा करनी है तो जागृति सर्वतोमुखी होनी चाहिए। समर्थ रामदास ने भारत में अपने शिष्यों का जो जाल फैलाया था वह कितना था इसके विषय में समर्थ स्वयं 'दासबोध' में लिखते हैं:—"कितने लोग हैं सो मालूम नहीं, कितना समुदाय है—इस समुदाय की गणना नहीं हो सकती है"। रामदास ने समय २ पर अपनी इस शिष्य मण्डली द्वारा शिवाजी को जो सहायता पहुंचायी वह मध्यकालीन भारत के इतिहास में अपूर्व स्थान रखती है। इस शिष्य मण्डली ने ही मारुति मन्दिर के पुजारियों द्वारा शिवाजी को सूचना पहुंचायी थी कि अफजलखां आ रहा है। रामदास के शिष्य कई रूपों में भ्रमण करते थे और शत्रुपक्ष के रहस्य शिवाजी तक पहुंचाते थे। दिल्ली के कारागार से जब शिवाजी निकल आया था तब इन्हीं साधु फकीरों की सहायता से पूना तक पहुंच सका था। रामदास की शिष्य मंडली, शिवाजी की दूत मंडली थी। प्रश्न यह उपस्थित होता है कि शिवाजी ने जिस राज्य स्थापना के लिये यत्न

किया उसका असली उद्देश्य क्या था ? क्या शिवाजी स्वयं छत्रधारी राजा बनना चाहता था ? यदि ऐसा ही था तो शिवाजी में तथा अन्य तात्कालिक बादशाहों में फर्क ही क्या था ! इस बात को स्पष्ट करने के लिए हम शिवाजी के जीवन की एक घटना का उल्लेख करते हैं ।

एक बार समर्थ भिक्षा मांगते हुए सितारे में शिवाजी के महल पर पहुंचे । शिवाजी ने भिक्षुक की पुकार सुनकर एक दानपत्र पर सारा राज्य उनकी भेंट किया । रामदास ने कागज देखकर कहा, हम वैरागियों को राज्य की क्या जरूरत ? तू ही प्रधान बनकर राज सम्भाल । शिवाजी ने राम की पादुका को स्थापित कर प्रधान, बन कर राज करना शुरू किया। उसी समय से शिवाजी ने **भगवे रंग के झंडे को** अपनी राजपताका बनाया । यह झंडा इस बात को बता रहा है कि शिवाजी ने जो राज्य स्थापित किया था वह भोग या आनन्द के लिये नहीं; अपितु त्याग के लिये, साधु सन्तों की रक्षा तथा सेवा के लिये । रामदास कहा करते थे कि अपने लिये कुछ न करो । सब कुछ 'राम' के लिए करो । **यही 'राम' असली महाराष्ट्र धर्म है ।** यदि सच्चे राम की पूजा करनी है तो जनता के दु:खों को शान्त करो । उन्हें अत्याचारों से बचाओ । जनता में रमने वाला राम ही असली राष्ट्र है । रामदास का शिवाजी को उपदेश था कि "यह राज्य तुम्हारे लिये नहीं है, जनता के लिये है । तुम निष्काम काम करो । महाराष्ट्र की पूजा करो ।" यही भगवें झंडे का सन्देश था । शिवाजी के गुणों का मर्म इसी मन्त्र में था ।

(६)

❀ शिवनेरी किले में ❀

* शिवावतार *

दक्षिण के क्षत्रियो में भोसले क्षत्रियों का पराक्रम विशेष स्थान रखता है। राजपूताना के सूर्यवंशी क्षत्रियों में से—कुछ एक वीर दक्षिण में अपना राज्य विस्तार करने के लिये आए थे। दौलताबाद के नज़दीक धीरे २ इन लोगों ने स्थानीय शासन में अधिकार प्राप्त करना शुरू किया। इसी वंश में सम्भा जी भोसले ने अपने पराक्रम से विशेष गौरव प्राप्त किया था। इसी वंश के मालोजी और विठो जी ने निजामशाही के लखूजी जादव के यहां नौकरी की। यह सरदार वीरता और कुलीनता के कारण तात्कालिक मराठा वंश में विशेष प्रतिष्ठा रखता था। मुसलमान बादशाह भी इस वंश को अपनाने में गौरव समझते थे। मालोजी और बिठोजी ने निष्कलंक स्वामिभक्ति के कारण निजाम शाही के बादशाह के दिल में स्थान कर लिया। बादशाह इन सरदारों को विशेष रूप से चाहने लगा। राजकृपा होने के साथ २ इनके दिल में अपनी स्थिति को अधिकाधिक उन्नत करने का विचार दृढ़ होने लगा। सुना जाता है कि एक वार जंगल में अकेले जाते हुए मालोजी को देवी ने दर्शन देकर गुप्तकोश दिखाया और कहा कि तुम्हारे वंश में एक अवतारी पुरुष जन्म लेगा। राजकृपा तो प्राप्त थी ही—अब दैव कृपा भी होगई। साधारण जनता में इन कथाओं ने जादू का सा असर किया। अप्रसिद्ध भोसला वंश को साधारण लोग श्रद्धा और भक्ति की दृष्टि से देखने लगे। रंग पञ्चमी के उत्सव ने इस गुप्त भाव को नया रंग दे दिया। अपने परिश्रम से उन्नत स्थिति को प्राप्त हुए मालोजी ने प्रतिष्ठित वंश के मराठे सरदारों के साथ सम्बन्ध करने का संकल्प किया। पञ्चमी का उत्सव था, छोटे २ सरदार बड़े सरदार के यहां उत्सव मनाने के लिये एकत्रित होरहे थे। मालोजी भी अपने पुत्र शहाजी (जन्म सन् १५९४) के साथ जाधवराव के घर, रंग पंचमी का त्यौहार मनाने के लिए पहुंचे। शहा जी देखने में प्रतिभाशाली और होनहार था। आम-

नेता उसी जगह जन्म लेते हैं जहां उन्होंने अपना कार्यक्षेत्र बनाना होता है। शिवा जी के बड़े भाई सम्भा जी का जन्म १६२३ में हुआ। परिस्थिति भेद के कारण शिवा जी 'शिव' और महाराष्ट्र का उद्धारक बन गया। जीजाबाई—उन वीरांगनाओं में से थी जिन्होंने रणांगन की चित्रपटी पर नेपोलियन जैसे वीरों को जन्म दिया था। रामायण और महाभारत की वीररसमयी कथाएं सुनाकर बाल्यकाल से ही शिवाजी के दिल में वीरता और संगठन के भाव संचारित किये। वंश के प्राचीन गौरव की कहानियां सुना सुनाकर शिवाजी को वंशोद्धार के लिये उतावला कर दिया। माता के स्तन्य-पान के साथ वीर रस का पान करने वाले शिवाजी ने भी यदि स्वतंत्र राज्य स्थापना न की होती तो और कौन करता ?

आज की माताएं बच्चों को वीर कथाएं सुनाने की जगह भूतों की कहानियां सुनाकर बचपन से ही उनको डरपोक बना देती हैं। अशिक्षित माताएं सिखाएं भी क्या ? मातृशक्ति को शिक्षित किए विना वीर सन्तान नहीं पैदा हो सकती। शिक्षित होने का मतलब यह नहीं कि पुस्तकें पढ़ाई जांय। भारत को आज निरी पुस्तकों की पढ़ाई ने नपुंसक बना दिया है। शिवाजी ने अपने आचरण से बता दिया कि नैतिक और धार्मिक शिक्षा आदमी को क्या बना सकती है। आज के पिता लोग बच्चों को सरकारी नौकरी दिलाकर अपने आपको धन्य समझते हैं। शिवाजी के पिता शहाजी भी चाहते थे कि उनका लड़का बादशाही दरबार में कहीं सरदारी प्राप्त करले। परन्तु जीजाबाई के पास रहते हुए, दादा कोंडदेव की संरक्षा में, शिवाजी के अन्दर स्वाधीनता के भाव कूट २ कर समा गए थे।

पूना की जागीर में दादाजी कोंडदेव ने शिवाजी को प्रबन्ध आदि करने की शिक्षा दी। नियन्त्रण का रहस्य शिवाजी ने यहीं सीखा। दादा जी कोंडदेव ने आजन्म अपने चोले की बांह काट कर शिवाजी को वह बात सिखाई कि यदि तुम अन्य पर शासन करना चाहते हो तो स्वयं नियमों के अनुसार चलो। रोम वालों ने इसी गुण के कारण संसार में अपनी धाक बैठाई। आज भारत में इसी नियन्त्रण गुण की कमी है। भारतीय

जनता अपनी राष्ट्र सभाओं की आज्ञा को उस तत्परता से नहीं मानती जितनी की विदेशी सरकार की। कल की आंखों देखी बात है। अकालीवीरों ने अपनी इसी विशेषता के कारण सरकार को हैरान कर दिया हैं। शिवाजी दादा जी कोंडदेव के यहां स्वच्छन्दतापूर्वक मावलियों में खेलते कूदते, शिकार खेलते, काम सायंकाल मावलियों को इकट्ठा कर पहाड़ी घाटियों में सिंहगढ़ और तोरण दुर्ग की लड़ाइयों का अभ्यास करते थे। दादा जी कोंडदेव के साथ रहकर शिवाजी ने जहां प्रबन्ध करना सीखा वहां मावलियों की टोलियों में चन्द्रगुप्त की तरह अभिषेक करकर भावी में प्रकट होने वाले तेज को प्रकट किया। "होनहार बिरवान के होत चीकने पात"। शिवाजी ने जंगली मावलियों को नामी सैनिक बनाया। इसी बालवीरसेना की सहायता से बिजली की शाही सेना को स्तम्भित किया। शिवाजी की इन उच्छृंखलताओं से कहीं सरकार पर आपत्ति न आवे इस लिये दादा जी शिवाजी को इन बातों से रोकते थे। आखिर १६४७ में दादाजी ने अपना काम पूरा कर शिवाजी को उस की चाबी देते हुए कहा—बेटा! तुम अपने काम में लगे रहो, तुम्हें सफलता होगी। इन प्राचीन विश्वासी मावलियों को मत छोड़ना। शिवाजी की आंखें इस विदाई के समय डबडबा गईं। नत-मस्तक हो, दादा जी के अन्तिम आशीर्वाद को स्वीकार किया। इसी आशीर्वाद की कृपा से शिवाजी ने बड़े राज दरबारों के सुखमय सरल रास्तों को छोड़ कर स्वातन्त्र्यता के कांटों के रास्ते को चुना। इस रास्ते पर आराम तो नहीं मिलता परन्तु दिल सन्तुष्ट रहता है। सांसारिक प्रलो-भनों को टालकर इस रास्ते पर चलने वाले वीरों के जन्म देने वाले देश, कभी पराधीनता की बेड़ी में नहीं जकड़े जाते। प्राणों की बलि कर देंगे परन्तु स्वतन्त्रता के प्रण को न छोड़ेंगे। शिवाजी ने बादशाह दरबार की चमक दमक के बीच में, अपनी आंखों से इन बातों को ओझल नहीं होने दिया। शिवाजी को स्वतन्त्रता की भावना मिल गई थी। इस पर मस्त हुए वीरों को नजर में सारी चमक दमक फीकी दिखाई देती है। आज भी भारत की स्वतन्त्रता के मद से मस्ताने हो, अपना सब कुछ न्योछावर करने वाले वीरों की आवश्यकता है। तब हम ब्रिटिश शा-सन की चमक दमक से चकित हुए नवयुवकों को बचा सकेंगे।

(७)

❀ बीजापुर का दरबार ❀

बहामनी रियासत के अधःपात के बाद दक्षिण देश पांच रियासतों में बंट गया। इन पांच रियासतों में अहमदनगर, की निजामशाही और विजापुर की आदिलशाही विशेष शक्ति शाली रियासतें थीं। अकबर बादशाह ने अहमद नगर की निजामशाही को जीतने के लिए भरसक यत्न किया। सुलतान चांदबीबी ने गृह कलह और विद्रोह के होते हुए भी, स्वयं घोड़े पर सवार होकर किले की रखवाली की; और मुगल बादशाह को बता दिया कि दक्खिन की वीरांगनाओं का मुकाबला करना-लोहे के चने चबाना है। दिल्ली की साधन सम्पन्न सेना के सामने अकेली सुल्तान चांदबीबी का देर तक डटे रहना मुश्किल था। किसी द्रोही सरदार ने उसका खून कर दिया। मुगलों ने शहर पर कब्जा कर लिया। परन्तु वीरों ने अन्तिम दम तक निजामशाही को मुगलों से बचाने की कोशिश की। मलिक अम्बर की मृत्यु के बाद शहाजी ने निजामशाही की रक्षा के लिए कई युद्ध लड़े। आखिर यह भी शाहजहां के जाल में फंस गए। अहमदनगर दिल्ली के बादशाहों के आधीन होगया। इसके बाद बीजापुर के सुल्तान ने शहाजी की योग्यता और रणकुशलता को देख कर उन्हें अपने दरबार में बुला लिया। दिल्ली के बादशाह और बीजापुर दरबार में संधि हो गयी। शहाजी बीजापुर दरबार के इने गिने रत्नों में से एक होगया। दरबार में कठिन से कठिन युद्ध प्रसंगों के लिए यदि किसी ओर अंगुली उठती थी तो शहाजी की ओर। बादशाह शहाजी को बहुत मानता था। बीजापुर का यही सरदार शहाजी शिवाजी का पिता था। इन का पहिला विवाह जाधवराव की लड़की जीजा बाई के साथ हुआ था। शहा जी अपने परिश्रम और उत्साह से ही इस ऊंचे पद तक पहुंचा था। शिवाजी भी चाहता तो अपने पिता के साथ बादशाहों के दरबारों में जाकर प्रतिष्ठा लाभ करता; और बड़े २ सरदारों में गिनाजाता; मनसब दारियां और

पांच हजारियां हासिल कर आनन्द और मजे का जीवन व्यतीत करता। परन्तु हम देखते है कि शिवाजी दरबारों में जाता है पर सन्मान या प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए नहीं, अपितु-स्वदेश और धर्म की चिन्ता के लिए-

शहा जी अपने समय के प्रसिद्ध पुरुषों में से एक था। शहाजी ने अपनी चाणाक्षता और नीति कुशलता से उस समय के राजनीतिज्ञों के दिमागों को विस्मित कर दिया था। सुलतान महंमद आदिलशाह ने प्रसन्न होकर शहाजी को पूना और सूपे की जागीरदारी दी।

अपने पिता की इस बढ़ती को सुनकर शिवाजी अपनी माता जीजा बाई के साथ वीजापुर में आया। शहाजी की जीजा बाई से बनती न थी। उन्होंने दीपाबाई नाम की महिला से दूसरा विवाह कर लिया था। शहा जी ने जिजा बाई से कहा तुम यहां क्यों आई हो? यही पूना में रहो। शिवाजी की आयु इस समय १३, १४ वर्ष की थी। बादशाहों के दरबारों में आने जाने वाले पिता, की यह बात उसके दिल में गहरा असर कर गई। वह निरन्तर चिन्ता ग्रस्त रहने लगा।। इस समय वीजापुर में बादशाह के पुत्र का जन्मोत्सव मनाया जारहा था। मुसलमान लोग तथा बादशाह के अन्यकृपापात्र आनन्द पूर्वक मौजे उड़ा रहे थे। एक ओर दरबार की शान शौकत राज सजावट और रंगीली चहल पहल को देखकर, दूसरी ओर कोंकण के दीन दु:खित लोगों के कष्टों को याद कर शिवाजी का दिल क्षुब्ध हो गया। उनके दिल में अनेक तरह के क्रांतिकारी भाव पैदा होने लगे। उनकी माता उनको सान्त्वना देती थी; परन्तु उन्हें सन्तोष न होता था। आज भी भारत में एक ओर नई दिल्ली की शानदार इमारतों, और शहरों के धनियों के ऐश आरामों को; और दूसरी ओर उसी शहर की सड़ी गलियों में खुले बाजारों में भूखे नंगे भारतियों या गांवों के अपढ़ पीड़ित किसानों को देख कर कइयों के दिल में उद्विग्नता के भाव पैदा होते हैं। परन्तु हमारी इस खिन्नता में एक भेद है। शिवाजी के दिल में जो

चोट लगी थी वह पत्थर की लकीर होगई थी। दिन रात माता जीजा-बाई शिवाजी को मातृभूमि के मस्तक की इस कलक रेखा मिटाने के लिए तैयार करती थी। आज शिवाजी जैसे अबोध बालक तो हैं परन्तु जीजा बाई जैसी मातायें नहीं हैं; जो शिवाजी को तैयार करे। आजकल की मातायें बच्चों को सरकारी नौकरी में काम करता देकर खुश होती हैं और अपने को धन्य समझती है। दूसरी ओर जीजा बाई—बीजापुर के दरबार की चमक दमक को छोड़ कर पूना सूपा की उजाड़ जागीरदारी में अपने पुत्र के साथ रहने में ही भला समझती थी। मातृशक्ति के जागृत हुये बिना, मातृ भूमि का उद्धार नहीं हो सकता।

शहा जी ने जीजाबाई तथा शिवा जी को कुछ समय तक बीजापुर में रहने के लिए कहा। उनका इरादा था कि वे दरबार में जाकर पूना और सूपा की जागीर शिवाजी के नाम करा दें। इस विचार से प्रेरित होकर शहाजी शिवाजी को दरबार में ले गया। पिता और पुत्र के स्वभाव में जमीन आसमान का अन्तर था। शहा जी आजकल के 'सहयोगी' पिताओं की तरह आदिल शाही के सुल्तान महम्मद के भक्त थे। दूसरी ओर शिवा जी के दिल में अत्याचारी बादशाह के प्रति ग्लानि और घृणा के भाव जागृत होकर प्रबल हो रहे थे।

बीजापुर के अत्याचार तथा अन्याय शिवाजी को दरबारी प्रलोभनों और कृपाओं से सचेत कर रहे थे। शिवाजी राज दरबार में उपस्थित हुआ; परन्तु बादशाह के सामने "मुजरा" आदि कुछ नहीं किया। बादशाह को उसका यह व्यावहार बहुत बुरा लगा। शहाजी ने "लड़का नाबालिग है बीमार है" कहकर बादशाह के क्रोध को शान्त किया। शिवाजी ने मुजरा क्यों नहीं किया, यह बात किसी से छिपी नहीं थी। १३-१४ वर्ष का लड़का इतना नाबालिग न था कि वह आचारोंपचार करना भी न जाने:—न उसे कोई शारीरिक बीमारी थी। उसके दिल में तो आत्मग्लानि और क्रोध की ज्वाला धधक रही थी। वह तो यही सोच रहा था—कि किस प्रकार इस अत्याचारी का अन्त हो। शहाजी ने

अपने प्रभाव से पूना और सूपा की जागीर शिवाजी के नाम करादी। कुछ दिनों में राजधानी में जो समारोह हो रहा था—वह भी समाप्त हो गया। दूर २ देशों से निमन्त्रित लोग अपने अपने स्थानों पर जाने की तैयारियां करने लगे। शिवाजी भी अपना काम पूरा करके लौटा। लौटते हुए अन्य यात्री राज दरबार की चमक दमक के गीत गाते हुए मस्त होकर घरों की ओर जारहे थे। परन्तु शिवाजी लौटते समय गुप्त रास्तों तथा दुर्गों के निरीक्षण में मग्न था।

(८)

❀ 'बालसूर्य का तेज' ❀

बालसूर्य इन भयंकर चमक दमक वाली मेघमालाओं को छिन्न भिन्न करने के लिए अनेक उपायों का चिन्तन कर रहा था। रास्ते में ही कोंकण प्रान्त का बीजापुर का सरदार मुल्ल महम्मद मिला। यह सरदार बीजापुर दरबार में उपस्थित होने के लिए जारहा था। उसने शिवाजी का स्वागत किया, क्योंकि शिवाजी बीजापुर दरबार से पूना और सूपा की जागीरदारी लेकर आरहा था। मुल्लमहुम्मद ने शिवाजी से कहा—जब तक मैं लौट कर आता हूं; तब तक कोंकण का प्रबन्ध आप ही करें। शिवाजी ने इसे स्वीकार किया। मौके से पूरा २ लाभ उठाया। कोंकण के ४० किले सम्भाल कर रायगढ़ पर अपना अधिकार कर लिया। महत्वपूर्ण गुप्त स्थानों पर अपने आदमियों को नियुक्त कर कोंकण प्रान्त पर अपना अधिकार कर लिया। मुल्ल महम्मद नाममात्र का सूबेदार रह गया।

१६४८ में सुलतान महम्मद की मृत्यु होती है। बीजापुर दरबार के मुख्य वजीर खां महमद ने अलि आदिलशाह को गद्दी पर बैठाया। १६४९ में बीजापुर दरबार की अन्दरूनी गड़बड़ को देखकर औरंगजेब ने अपने सरदारों को भेजकर कल्याण देश के कई किले अपने हस्तगत कर

लिए । दिल्ली दरबार और बीजापुर दरबार में वैमनस्य का बीज बोया गया। औरंगजेब स्वयं सेना लेकर दक्षिण में आया। बीजापुर की ओर से खां महमद मुकाबला करने के लिए आगे बढ़ा। शिवाजी ने भी दूसरी ओर से बीजापुर वालों का साथ देकर औरंगजेब को घेरा। औरंगजेब हताश होकर सेनाओं के घेरे में से निकलने का उपाय सोचने लगा औरंगजेब ने शिवाजी को रास्ता देने को कहा। शिवाजी ने कहा यह वजीर खां मोहम्मद धर्मात्मा आदमी है। इस का नियम है कि परमात्मा की प्रार्थना के समय यदि कोई आदमी किसी प्रकार की याचना करे तो यह उसे दैवी प्रेरणा समझ कर पूरा करना अपना कर्तव्य समझता है—औरंगजेब ने ऐसा ही किया। उसकी प्रार्थना स्वीकृत हुई। औरंगजेब बच कर निकल गया। खां मोहम्मद के इस व्यवहार से बीजापुर दरबार सख्त नाराज़ हो गया। अफजल खां ने बादशाह को खां मोहम्मद के विरुद्ध भड़काया। जब खां मोहमद बीजापुर लौटा तब दरबार में प्रवेश करते समय किसी ने उसका घात कर दिया। इस प्रकार बीजापुर का अनुभवी वजीर १६५०ई० में मारा गया। बीजापुर दरबार की कमर टूट गई। शत्रु प्रबल होने लगे। अब्दुल मोहमद बीजापुर का वज़ीर बना। परन्तु उसमें वह ताकत और अकल न थी। शिवाजी ने औरंगजेब को बचाया था अतः औरंगजेब बाध्य था कि वह शिवाजी के रास्ते में रुकावट न डाले। इधर बीजापुर दर्बार में ज़ोर न था। दरबारियों के पारस्परिक झगड़ों के कारण किसी की न चलती थी। शहाजी कर्नाटक के प्रबन्ध के लिए गया हुआ था। उत्तर में शिवाजी ने मौका देखकर बीजापुर दर्बार के कई प्रदेश अपने आधीन कर लिए। बीजापुर के कई करद राजाओं को अपने प्रभाव में कर लिया। इतना ही नहीं १६४६ ई० के लगभग इस प्रकार अपनी जागीर के समीपस्थ प्रदेशों को अपने आधीन कर लिया। लगते हाथ शिवाजी ने आवाजी सोनदेव आदि सरदारों की सहायता से तोरण, चाकण, कोंडाणा, पुरन्दर, कल्याण और समुद्र तट के कई किले जीत लिये। रायगढ़ को अपनी राजधानी बनाया। राजापुर के बन्दरगाहों को भी जीता। तोरण और कल्याण के किलों को

जीतने से शिवाजी को अनन्त सम्पत्ति मिली । इसी की सहायता से शिवाजी ने बड़े २ किले बनवाये। राज्य विस्तार को स्थिर पाये पर खड़ा किया। उत्तर दिशा में कल्याण से लेकर दक्षिण में कोकण तक शिवाजी का नाम होगया । मराठे लोग सदा जीतने वाले शिवाजी के भगवे झंडे को अपना राष्ट्रीय झंडा समझ उस के नीचे एकत्रित होने लगे । विश्वासी सीधे साधे मावलियों की सेना के साथ शिवाजी को चालाक मराठे मिल गये । शत्रुओं में खलबली मच गयी। बीजापुर दरबार में शहाजी का प्रभाव बढ़ रहा था । कर्नाटक में उसे सफलता ही रही थी। शहाजी से अन्य सरदार ईर्षा करने लगे। मौका देखकर उन्होंने बादशाह के कान भरने शुरू किये कि शिवाजी के उत्पातों में शहाजी का छुपा हाथ है । उसकी बातों में आकर बादशाह ने बाजी घोरपड़े को कर्नाटक में शहाजी को पकड़ कर लाने के लिये भेजा । बाजी घोरपड़े ने शहाजी को भोजन के लिए निमन्त्रण देकर जबकि वह सर्वथा निःशस्त्र थे पकड़ कर बीजापुर में क़ैद कर लिया । शहाजी से कहा कि वह अपने पुत्र को उत्पात करने से रोके अन्यथा उसकी ख़ैर नहीं ।

शहाजी लाचार था, वह क्या करता ? शिवाजी को जब यह बात पता लगी उसने एक दम औरंगजेब के साथ संधि की और अपने आपको औरंगजेब के आधीन कर बीजापुर पर चढ़ाई करने के लिये तैयार किया। जब यह ख़बर बीजापुर दरबार में पहुंची तो उन्होंने एक दम औरंगजेब से संधि की बात चीत शुरू की । शिवाजी का मतलब पूरा होगया। १६५६ ई० में शहाजी छुट गया । योग्य पुत्र ने नीतिकुशलता से पिता को मुक्त कराने में कमाल कर दिया ।

इसके बाद शिवाजी ने बीजापुर के जागीरदार चन्द्रराव मौरे को छल-बल में जीतकर उसके छोटे भाई को अपने साथ मिलाकर जावली के प्रदेश को अपने अधीन कर लिया प्रबन्ध करने के लिये प्रतापगढ़ नाम का किला बनवाया । शिवाजी की इन चेष्टाओं को देखकर बीजापुर दरबार अधिकाधिक चिन्तातुर होने लगा। बादशाह ने एक दिन दरबार में कहा, है कोई

सरदार जो शिवाजी को पकड़ कर दरबार में लाए ? अनुभवी सरदार अफ़ज़ल खां ने अभिमान के साथ अपने आपको पेश किया और सेना लेकर प्रस्थित हुआ।

—:०:—

(६)

❀ कांटे से कांटा निकालो ❀

प्रत्यक्ष मुकाबला करने की हममें सामर्थ नहीं है। प्रत्यक्ष मुकाबले में पराजय निश्चित है। सब पर विचार करके फैसला किया गया कि संधि चक्र द्वारा ही शत्रु का दमन करना चाहिये। किसी भी प्रकार से शत्रु का दमन करना चाहिए। श ु मायावी है। प्रत्यक्ष बल से यदि काम नहीं चल सकता तो तो छल बल द्वारा उसको मारना अधर्म नहीं है। उद्देश्य, शत्रु विजय और पापियों का दमन करना है। राजा रामचन्द्र ने भी इसी धर्म रक्षा के भाव से प्रेरित होकर बालि को छल पूर्वक मारने में कुछ पाप नहीं समझा। कृष्ण भगवान ने भी इसी नीति का सहारा लेकर जरासंध का घात किया। जब दोनों पक्षों ने युद्ध घोषणा करदी है--दोनों एक दूसरे के प्राण लेने की घोषणा कर चुके हैं उस हालत में दोनों स्वतन्त्र हैं कि वे किसी प्रकार से शत्रु का दमन करें। हां युद्ध घोषणा किये बिना अचानक आक्रमण करना पाप है। हां प्रत्यक्षतः रक्षा का वचन देकर छुपे हाथ छुरी चलाना पाप है। भारतीयों को दिलासा देकर कि हम तुम्हारी मान-मर्यादा--धन सम्पत्ति की रक्षा करेंगे गुप्त उपायों से सम्पत्ति को लूट ले जाना पाप है। आज कल सभ्य डाकू अपनी डकैती को छिपाते हुए सुनहरी सिद्धान्तों की घोषणा करके छलबल का प्रयोग करने वाले की निन्दा करने में जरा भी संकोच नहीं करते। अभी कल ही संसार के सभ्य राष्ट्रों ने न्याय और आत्मनिर्णय के नाम पर जो लूट मार की है वह संसार में सदा याद रहेगी। युरुप के र जनैतिक क्रांतिकर्ता मेजनी का भी सिद्धांत था कि एक वार प्रत्यक्ष युद्ध घोषणा करके दोनों पक्ष किसी भी उपाय का

प्रयोग करने में स्वतंत्र हैं। समय और परिस्थिति से पूरा २ लाभ उठाना चाहिये। क्षत्रिय का परम धर्म शत्रु को जीतना है। इस सदी के सब से बड़े धर्मसुधारक ऋषि दयानन्द भी अपने राजधर्म में लिख गये हैं कि धोखे से भी शत्रु को मारना चाहिए। आदर्शवाद का उपदेश देना उस के अधार पर सम्मतियां बनाना सुगम काम है। उपस्थित दिक्कतों को हल करना टेढ़ी खीर है। धर्म और राजनीति का उद्देश्य—सचाई की रक्षा करना और अत्याचारियों को दबाना है। जो लोग धर्म के मर्म को न समझ कर बाहर की बातों में ही फंस जाते हैं वे देश और अपना दोनों का नुकसान करते हैं। जिस समय सोमनाथ के मन्दिर पर महमूदगजनवी ने आक्रमण किये थे उस समय के गो "रक्षक" ब्राह्मणों ने गोरक्षा करते हुए अपने देश को शत्रु के हाथ बेच दिया। राजपूतों ने भी इसी तरह अनेक बार हाथ आये हुए शत्रु को झूठी उदारता और धर्म भीरुताके नाम पर छोड़कर देश को पराधीन कराया। हमें दुनियां में रहना है। यह संसार स्वर्गलोक नहीं है। यहां राक्षस भी रहते हैं। सब बीमारियों की एक ही दवा नहीं होती। कई बार बीमारी को दूर करने के लिए विषप्रयोग भी करना पड़ता है। इसी प्रकार सामाजिक संशोधन के लिए, समाज व राष्ट्र की रक्षा के लिए पैंने औजारों का भी प्रयोग करना चाहिये। हां इन का प्रयोग करते हुए एक बात का ख्याल रखना चाहिए! वह यह कि स्वीकृत उपाय द्वारा बुराई का दमन करके, उससे निजू कमाई नहीं करनी चाहिए। उससे अपना स्वार्थ सिद्ध नहीं करना चाहिए। इस प्रकार सब दृष्टियों से विचार कर एकान्त में निष्काम प्रेम की मूर्ति-माता जीजा बाई के सामने ध्यानावस्थित होकर शिवाजी ने अन्तिम निश्चय किया। भावना यही हुई अन्तरात्मा ने यही प्रेरणा की कि इस मौके पर फौलादी तलवार की अपेक्षा दिमागी तलवार का उपयोग करो। भावना के होते ही दृढ संकल्प किया। दूत भेजकर अफजल खां को कहला भेजा कि मैं तो आपका ही नौकर हूं। आइये खुशी से अपना प्रदेश देखिये मैं तो सुलह करने के लिए तय्यार हूं। भेंट एकान्त में हो। प्रतापगढ़ के पास तम्बू तय्यार होगया। दूर २ तक पहाड़ी घाटियां साफ़ करदी गईं। अफ़जलखां तीन आदमियों के साथ निश्चित स्थान पर मिलने के लिए प्रस्थित हुआ। इधर शिवाजी भी तीन मराठे सरदारों के साथ सावधान होकर आया।

दोनों चालाक थे, अनुभवी लड़ाके थे। दोनों षड़यन्त्रों के दांवपेच को समझते थे। ऊपर से सफेद पोश, मुसकराते हुए दिल २ में बिजय की खुशी में, बे चूक दांव पेच की चमत्कारिता में मस्त, दोनों वीर आगे बढ़ते आए। मिलने के लिए आलिंगन करने लगे, यह क्या होने लगा संभलिये !!! क्या यह कभी होसकता है। एक स्थान में दो तलवार नहीं रह सकतीं। फौलाद फौलाद्से नहीं कट सकती। आलिंगन करनेके लिए दोनों बढ़े गलवाहियों की भूमिका थी। अफजल खां बीजापुर दर्बार में खुशी से शिवाजी का सिर लेजाने के लिए उद्यत हुआ। गला दबोचा। शिवाजी भी सावधान था। अंगरखे के नीचे जिरह बक्तर था। आस्तीन में बाघनख था। सिर पर लोहे की टोपी थी। अफजलखां ने गला पकड़ना चाहा शिवाजी ने ठीक मौके पर पेट में बाघनख झोंक दिए। छिपे हुए मराठे सरदार वाहर निकल आए। अफजलखां के शरीर रक्षकों को कतल कर दिया। प्रतापगढ़ दुर्ग पर बिजय सूचक अग्नि ज्वाला प्रदीप्त करदी गयी। इसे देखते ही दूर २ घाटियों में छिपे हुए मावले वीर अपनी टोलियां लेकर मैदान में उतर आए। सेनापति के बिना, अनाथ मुसलमान सेना चारों तरफ से घेरी गयी। कुछ बच बचाकर निकलसके। चारों ओर शिवाजी की बिजय का डंका बज गया। लोग उसे असाधारण अवतारी पुरुष समझने लगे। सब पर उसकी धाक बैठ गई। १६६० में दूसरे वर्ष अफजलखां के लड़के फजलखां ने शिवाजी को पन्हाले के किले में घेरा। शिवाजी रातों रात निकल गया। अपने पीछे सर्दार बाजीदेश पांडे को छोड़ गया। इस की कथा इस प्रकार है।

(१०)
❀ बाजीप्रभु का बलिदान ❀

अफजलखां की मृत्यु के बाद, वीजापुर दरबार में कोई वीर सेनापति नहीं रहा जो शिवाजी का मुकाबला करता। शिवाजी ने खुले हाथ बीजापुर के राज्य पर अधिकार करना शुरू किया। वीजापुर के बादशाह आदिल शाह ने जब यह समाचार सुना उसने कर्नाटक के विद्रोही सरदार, सीदी जौहर को दरबार में बुला भेजा और कहा कि यदि तुम शिवाजी पर

आक्रमण कर उसका मान मर्दन करोगे तो हम तुम्हारे सब अपराध माफ कर देंगे।

बादशाह ने सीदी जौहर को सलावत जंग की उपाधि देकर १० हजार घुड़ सवार और १४ हजार पैदल सेना के साथ विजय यात्रा के लिये विदा किया। साथ ही अफजलखां का बेटा फाजल महम्मद भी बाप के घात का बदला लेने के लिए साथ हो लिया।

बिजापुर दरबार की इस तय्यारी को देखकर, शिवाजी के अन्य शत्रु भी सिर उठाने लगे।

जजीरा के सीदियो, तथा वाड़ी के सावत सरदार भी अपनी २ सेनाओं को सजाने लगे। शिवाजी की साधनहीन बलशाली मराठी सेना को कुचल देने के लिये चारों ओर से आंधियों और तूफानों के चिन्ह दीखने लगे। इन सब चिन्हों को देखकर, वीर शिवाजी बिल्कुल नहीं घबराया; अपितु उत्साह तथा तत्परता से आत्मरक्षा की तय्यारी करने लगा। शिवाजी अपने तथा शत्रु के बलाबल को भली प्रकार जानता था। अपने विश्वसनीय सरदारों को शत्रु के आस पास के महत्व पूर्ण स्थानों पर प्रबन्ध करने के लिए नियुक्त किया। १६६० के जून मास में सीदी जौहर सीधा पन्हाला के किले की ओर बढ़ा। वर्षाकाल में ही चारों ओर मोर्चाबन्दी करके किले को घेर लिया। पन्हाला किला अन्य किलों की तरह मजबूत तथा अभेद्य नहीं था। सीदी जौहर दिन-दिन तय्यारियों के साथ मोर्चाबन्दी के काम पर लग गया। इस पेचीदी नाजुक परिस्थिति को देख कर, शिवाजी ने सीदी जौहर के पास कहला भेजा कि मैं स्वयं किला तुम्हारे आधीन करता हूं; तुम मुझे अभय वचन दो। मैं स्वयं तुम्हारे पास पहुंचूंगा। विश्वास हो जाने पर शिवाजी ने शत्रु के एक मोर्चे के पास सीदी जौहर से भेंट की; और तय हुआ कि दूसरे दिन शिवाजी किला खाली करदें।

शिवाजी किले में लौट गया। वीजापुर की सेनाएं यह समझ कर कि संधि होगई है उस रात बेसुध सो रही। इधर शिवाजी ने शत्रु को असावधान देखा और आधी रात होने के साथ मावला वीरों की एक टोली ले

कर शत्रु के पहरेदारों से आंख बचाकर किले से निकला और विशालगढ़ की ओर चल दिया।

जिस समय बीजापुर की सेनाओं को यह समाचार मिला। एक दम महम्मद फाजल और सीदी जौहर के बेटे सीदी अजीज को घुड़ सवार सेनाओं के साथ शिवाजी का पीछा करने के लिये रवाना किया। प्रातः काल बहुत देर तक शिवाजी शत्रु को दिखाई नहीं दिया। शिवाजी किले की घाटी पर चढ़ रहा था इसी समय शत्रु की उमडती हुई सेना पीछे दिखाई दी। शिवाजी ने एक दम अपने विश्वसनीय सेनापति बाजी प्रभु को कुछेक मावले वीरो के साथ खिड़ी स्थान पर तैनात होने के लिए हुक्म दिया और कहा कि जब तक मैं सुरक्षित दशा में विशालगढ़ न पहुच जाऊं तुम इस स्थान से आगे शत्रु को मत बढ़ने देना। मैं किले में "तोप की आवाज़" से वहां पहुंचने की सूचना दूंगा। बाजीप्रभु-प्रभु की आज्ञा को सिर माथे कर इने गिने वीरों के साथ वही डट गया। शिवाजी किले की ओर चल दिया। दृश्य दर्शनीय था। एक ओर समुद्र की लहरों की तरह दूर तक फैली हुई अनन्त शत्रु सेना उमड़ रही थी दूसरी ओर इने गिने वीर वाजी प्रभु के साथ समुद्र की प्रवल तरंगों को रोकने के लिये, प्राणों को हथेली पर रख कर, अपने प्रणको पूरा करने के लिए डटे हुए थे। भीरु तथा सांसारिक धन दौलत से प्रेम करने वाले साधारण लोग, इन मुठीभर वीरों को पागल कहते थे। दोनों का क्या मुकावला था। परन्तु ये वीर इने गिने वीर नहीं थे, एक २ वीर अपने आपको सैकड़ों के बराबर समझता था। यह समझ रहे थे कि जबतक उनके ऊपर शिवाजी की भवानी तलवार की साया है तबतक उन्हें मैदान से कोई नही हटा सकता। वाजी प्रभु दृढ चट्टान की तरह डटा रहा। शत्रु ने कई वार आक्रमण किए। परन्तु वीर मावलों ने आगे वढ २ कर ऐसे वार किए कि शत्रु को खिड़ी के मैदान में पीछे हटना पड़ा। शिलाओं से टकराई हुई लहरें जिस प्रकार लौट २ कर, आगे बढती हैं उसी प्रकार मुसलमानों की सेना ने पीछे हटकर कईवार किए। वाजीप्रभु ने वीजापुर की आई हुई नयी पैदल सेना को भी दो वार पीछे हटाया, मुट्ठी भर आदमियों ने मुसलमानी सेनाओं के छक्के छुड़ा दिये, वाजीप्रभु के कई वीर खेत रहे, परन्तु इससे उनके आ-

वेशतथा उत्साह में कमी नही आयी। वह अधिक जोर से लड़ने लगा, दुपहर तक इसी प्रकार की लड़ाई होती रही। बाजीप्रभु ने मैदान नही छोड़ा, उनके शरीर पर २५ घाव लगे परन्तु वह फिर भी डांवाडोल नहीं हुआ। वाजी प्रभु का ध्यान एक मात्र विशाल गढ़ किले की तोप की ओर था। आधी से ज्यादा सेना कटगयी। स्वयं भी गोली का शिकार हुआ-परन्तु प्राण विसर्जन करने से पूर्व उसे तोपकी आवाज सुनाई पड़ी। इस आवाज को सुनकर वाजीप्रभु ने शान्ति के साथ प्राण छोड़े और यह उद्गार कहे:—

"मैंने अपना काम पूरा कर लिया" शिवाजी ऐसे स्वामिभक्त सेनापतियों के सहारे ही विजय प्राप्त कर सका। एसे स्वामी तथा स्वामिभक्त सेवक धन्य हैं। यही लोग देश के भूषण तथा तिलक हैं:—

अपने स्वामी का जीवन बचा लिया, स्वयं अमर होगया। धन्य है ऐसे वीर जो अपने कृपालु स्वामी के लिए इस नश्वर देह को कुछ नहीं समझते। प्राणों पर न्योछावर होने वाले एसे वीरों की सहायता से ही शिवाजी-छत्र-पति बन सका। वह महाराष्ट्र भूमि धन्य है जिसने ऐसे निष्काम स्वामिभक्त देश पांडों को जन्म दिया है। निष्काम ? बाजी पांडे ? आज का भारत तेरे जैसे मातृभक्तों और स्वामिभक्तो को चाहता है। हम लोग यशोभिलाषा से प्रेरित होकर मातृ सेवा जैसे पवित्र काम को कलंकित कर रहे हैं। अपने प्रभाव से अपने तेज से हम लोगों में ऐसी भावना पैदा करो कि हम आज के समर्थरामदास की आज्ञानुसार चलते हुए, चुपचाप राष्ट्र की स्वाधीनता के पवित्र मंदिर की दीवार में कहीं छोटी सी ईंट बनजांय ? भारत जननि। तू बाजी देश पांडों को फिर से जन्म दे। तेरे आशीर्वाद कभी विफल नहीं जाते। इस भयंकर पराजय से बीजापुर दरबार का दम टूट गया।

-:०:-

(११)

❀ शिवाजी और दिल्ली दरबार ❀

इस प्रकार बीजापुर दरबार को कम्पित कर शिवाजी दिल्ली दरबारकी ओर बढ़ा। इस समय दिल्ली दरबार के बादशाही तख्तेताऊस पर अपने समय का चाणाक्ष बादशाह औरंगजेब था। औरंगजेब की कूटनीनि का पार पाना किसी २ का ही काम था। इसने शाहजहां जैसे चलते दिमाग को जाल में बांधकर किले में बन्द किया। दारा को गली गली में भटकाया। मुराद को काठ का उल्लू बनाया। शुजा को जगलों से मार भगया। मीर जुम्ला से काम निकाल कर उसे आसाम की ओर रवाना किया। यह मक्के का फकीर अपने समय के "मक्कारों का मक्कार" था। किसी ने इस को रोका तो श्रीकृष्ण और चाणाक्य के चेलों ने। राजपूताना में राजसिंह और दुर्गादास ने। उत्तर में गुरु गोविन्द के खालसों ने औरंगजेब की तेग को कुन्द किया। लाचार होकर सिर पर आई हुई दिक्कतों को टालने के लिए दक्षिण में बढ़ती हुई, उठती हुई, मराठा शक्ति का दमन करने के लिए इस ने अपनी सेनयों को दक्षिण की ओर मोड़ा। शिवाजी सब बातें समझता था। वह जानता था कि मुगल बादशाही में यदि कोई पानीदार आदमी है तो वह औरंगजेब है। शिवाजी को मालूम था कि इसका मुकाबला करने के लिए आवश्यक है कि राजपूतों को अपने साथ मिलाया जाय। इसी नीति को ख्याल में रखकर शिवाजी ने किसी भी राजपूत राजाके दिल को नहीं दुखाया। यशवन्तसिंह आदि को अपने साथ मिलाने में कमी नहीं की। परन्तु जयपुर के राजाओं पर उनकी कुछ नहीं चली। एक ऐतिहासिक कवि ने फार्सी में एक कविता की है। उनमें शिवाजी की ओर से जयसिंह के नाम एक चिट्ठी लिखी गयी है। उस में शिवाजी की इच्छा प्रकट हो जाती है। पाठकों के मनोरंजन के लिये उस चिट्ठी का हिन्दी अनुवाद परिशिष्ट में अविकल रूप से दिया गया है। यह चिट्ठी नागरी प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी है। शिवाजी और औरंगजेब दोनों एक दूसरे को समझते थे। दोनों अपना मतलब पूरा करने के लिए ही एक दूसरे की सहायता करते थे। प्रत्यक्ष मित्र होते हुए भी दोनों एक दूसरे पर घात लगाये बैठे थे। शिवाजी ने औरंगजेब की सहायता

से अपने पिता को बीजापुर दरबार से मुक्त कराया औरंगजेब ने शिवाजी की सहायता से दक्षिण, की मुसलमानी रियासतों का सिर कुचला। दोनों बराबर बल में तुले हुए थे। कभी न कभी दोनों का मुकाबला होना ही था। बीजापुर दरबार कमज़ोर हो गया था। उसने शिवाजी को दबाने के लिए कोशिश करनी छोड़ दी थी। इधर से निश्चिन्त होकर मराठे वीरों ने दिल्ली की ओर कदम बढ़ाया। नेता जी पालकर और मोरोपन्त पिंगले ने मुगल बादशाही के इलाकों पर आक्रमण करने और छापे डालने शुरू कर दिए। इस सिलसिले में मराठे लोग औरंगाबाद तक पहुंचे। शत्रु की इस उमड़ती बाढ़ को रोकने के लिए औरंगजेब ने अपने मामा शायस्ताखां को, यशवन्तसिंह के साथ बड़ी भारी सेना के साथ भेजा। शायस्ताखां ने चाकण नाम का किला सर किया और पूना के महल में रहने लगा। शायस्ताखां निश्चिन्त था। शिवाजी ने पूना शहर से आने वाली बरात में वीर मराठों के साथ बरातियों के वेश में रात को शहर में प्रवेश किया। मध्यरात को जब सब लोग निद्रादेवी की गोद में बेसुध पड़े थे, शिवाजी ने अपने चुने हुए सरदारों के साथ महलों में प्रवेश किया। इस अचानक आक्रमण से शत्रु चकरा गया। शत्रु सेना के पैर उखड़ गये। शायस्ताखां का पुत्र मारा गया। शयस्ताखां भी भागा जाता था, शिवाजी ने तलवार का वार कर उस को यमलोक पठाया। औरंगजेब इस पराजय को सुन कर खिन्न गया। १६६४ में नयी सेना के साथ अपने लड़के मुअज्जम को भेजा। शिवाजी इस सेना से जरा भी नहीं घबराया। उसने ठीक इसी समय मुगलों के समृद्ध शहर सूरत को लूटा। औरंगजेब ने शत्रु की गति को दिन प्रतिदिन बढ़ता देख कर यशवन्तसिंह को युद्धस्थलों से बुला भेजा; और जयसिंह और दिलेरखान को अन्तिम फैसला करने के लिए भेजा। दोनों सरदारों की शक्ति और अनुभव पर औरंगजेब को पूरा भरोसा था। इधर औरंगजेब की तलवार चल रही थी उधर बीजापुर दरबार ने मराठों के विद्रोह में एक बार फिर अपने भाग्य को अजमाना चाहा। बीजापुर के सेनापति ने कोंकण पर आक्रमण किया। शिवाजी ने उन्हें हराकर वारसिलोर के दक्षिणी किनारे की ओर से आक्रमण कर बीजापुर के इलाके में लूट मचादी। इसके बाद शिवाजी जल मार्ग से पूना की ओर लौटा। यह पहला मौका था जब कि शिवाजी ने

समुद्रयात्रा की। शिवाजी की इस सफलता को देख कर दक्षिण कर्नाटक में शाह जी के नीचे काम करने वाले मराठे सरदार शिवाजी के चारों ओर एकत्रित होने लगे। इन योग्य कार्यकर्ताओं की सहायता से शिवाजी ने विजित प्रदेशों का बड़ी सफलता से प्रबन्ध किया। इसी साल १६६४ में शाहजी घोड़े से गिर कर मर गया। अब शिवाजी ने अपने आपको स्वतन्त्र राजा घोषित किया। अपने सिक्के भी चालू किए। औरंगजेब शिवाजी की स्वच्छन्द गति को देखकर आपे से बाहर होगया। औरंगजेब ने वकील भेज कर बीजापुर वालों को शिवाजी की सेना पर आक्रमण करने के लिये प्रेरित किया। बीजापुर दरबार ने खवासखान सरदार को इस काम के लिए भेजा। दोनों ओर से मराठी सेना पर आक्रमण किए गए। बीजापुर और दिल्ली की सेनाओं से घिरी मराठी सेना पराजित हुई। शिवा जी स्वयं इस युद्ध में उपस्थित न था। इस पराजय से शिवाजी जरा भी नहीं डगमगाया, उसने एक दम मुसलमानों के मक्का जाने वाले जहाजों को लूटा। शिवाजी को भली प्रकार मालूम था कि दिल्ली दरबार और बीजापुर के दरबार एक नहीं हो सकते। दोनों दरबार एक दूसरे के जानी दुश्मन हैं। इस बात को समझते हुए, शिवाजी समय की नब्ज को पहिचानने में कच्चा न था। उसने सोचा कि इस समय जयसिंह और दिलेरखान की सेनाओं का मुकाबला करना कठिन है। साथ ही साथ बीजापुर की सेनाओं को रोकना तो और भी कठिन है। एक समय पर एक का मुकाबला करना चाहिए। इधर दिलेरखां ने पुरन्दर पर कब्जा कर लिया। जयसिंह सिंहगढ़ में ही रहे। पुरन्दर में शिवाजी का वीर सर्दार मुरारबाजी था।

इस सरदार ने किले की छोटी सेना के साथ दिलेरखान का दिल खोल कर मुकाबिला किया। आखिर दिलेरखां के तीर से मारा गया। कहते हैं कि इस वीर मुरारवाजी के, सिर कटने के पीछे, धढ़ ने ज़मीन पर गिरने से पूर्व तीन सौ मुसलमामों को यमलोक का यात्री बनाया।

इस वीर की मृत्यु का हाल सुनकर शिवाजी ने संधि करना ही उचित समझा। शिवाजी ने संधि करने के लिए रघुनाथ पंडित को जयसिंह के पास भेजा। संधि की शर्तें निश्चित की गईं। यही संधि पुरन्दर की संधि के नाम से प्रसिद्ध है।

संधि की शर्तें इस प्रकार तय हुईं।

१. मुगलई मुल्क के जो किले शिवाजी ने जीते है उनमें से पुरन्दर सिंहगढ़ आदि २० किलों तथा आस पास के टापुओं को शिवाजी लौटा दे।

२. शिवाजी १२ किले और १० लाख का मुल्क जागीर के तौर पर रखे।

३. संभाजी दिल्ली दरबार में ५ हजारी के पद पर रहे।

४. घाट माथा के वीजापुर के इलाके में शिवाजी को चौथ वसूल करने का हक दे दिया गया।

५. इसी समय शिवाजी ने सोनापन्त और रघुनाथ बल्लाल को भेजकर दिल्ली जाने की इच्छा प्रकट की। जयसिंह भी यही चाहता था। मित्र मंडली की सलाह लेकर माता जी की आज्ञा से ही शिवाजी ने यह सब बातें मान ली। शिवाजी केवल युद्ध लड़ना ही नहीं जानता था, संधि करने में शत्रु को फंसाने में भी उसका पार कोई २ ही पा सकता था। औरंगजेब ने यह सब कुछ इसलिए कराया था कि शिवाजी स्वतन्त्र राजा न बने। राजपूत राजाओं की तरह वह भी दिल्ली दरबार में नौकरी करे। पुरन्दर की संधि को स्वीकृत करने के बाद शिवाजी ने जयसिंह को इस बात के लिए प्रेरित किया कि वह अपनी सेनाओं का रुख बीजापुर की ओर मोड़ें। और कहा कि थोड़े दिन में ही हम बीजापुर को भी आधीन करके दिल्ली सम्राट् की सेवा में उपस्थित होंगे। बादशाह की भेंट में यही उपहार असली मूल्य का होगा। शिवाजी को अपना दोस्त बनाकर; निश्चिन्त होकर जयसिंह बीजापुर वालों के साथ जूझ पड़ा। शिवाजी इधर दिल्ली जाने के बहाने युद्ध में तटस्थ रहा। गुप्त रूप से बीजापुर वालों को सहायता देने में कमी भी नहीं की। कुछ दिन तक युद्ध में जयसिंह आगे बढ़ता गया परन्तु पीछे से सेना और रसद की कमी पड़ी।

नयी सेना और रसद भेजने के लिए दिल्ली लिखा गया। अभी तक

शिवाजी दिल्ली नहीं पहुंचा था। औरंगजेब इसके लिए उतावला था। उसने कहला भेजा कि तुम्हें तो शिवाजी को दिल्ली दरबार में लाने के लिए भेजा था तुमने यह नया झगड़ा क्या खड़ा कर दिया। इसे स्वयं सुलझाओ। यहां से किसी तरह की सहायता नहीं मिलेगी। जल्दी लौटो। दिल्ली दरबार से इस उत्तर के आने पर जयसिंह हैरान हुआ। तब उसे शिवा जी की चालाकी समझ में आई। आखिर उसने शिवा जी से एकान्त में भेंट कर मित्र के नाते कहा:—भाई! तुम दिल्ली ही जाओ! जीवन ख़तरे में है। वहां मेरा लड़का रामसिंह है। तुम्हें किसी प्राकार की तकलीफ नहीं होगी। यदि तुम वहां नहीं जाते तो मेरा खातमा है। दोस्ती के नाम पर तुम वहां जरूर जाओ। बहुत कहने सुनने पर जयसिंह की:—नहीं नहीं विश्वस्तमित्र—की रक्षा के लिए शिवाजी ने दिल्ली जाना स्वीकृत किया। बड़े आदमियों के दिलों की थाह कोई नहीं पा सकता। किसी कविने ठीक ही कहा है—

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि कोनु विज्ञातु मर्हति।

युद्ध के मैदानों की रक्त नदियां, जिन दिलों पर कुछ असर नहीं करती वही दिल विश्वस्त मित्र के सामने द्रवित हो जाते हैं। मित्र की रक्षा के लिए अपने जीवन को जोखिम में डालने वाले कोई २ ही माता के लाल होते हैं।। राजपूतों के साथ शिवाजी का व्यवहार कैसा था यह इसी घटना से स्पष्ट हो जाता है। बचन देकर उसे पूरा करने के इरादे से शिवाजी ने दिल्ली जाने की तैयारी की। रायगढ़ में सारे कार्य का निरीक्षण किया। अपने पीछे, प्रबंध में गड़बड़ न हो इस लिए स्थान २ पर विश्वस्त आदमियों को नियुक्त किया। मोरोपंत पिंगले को पेशवा नियत किया। अणाजीदत्तो तथा सोनदेव आदि सरदारों को कहा कि जीजीबाई के निरीक्षण में काम करो। मैं शीघ्र ही अपना बचन पूरा करके लौटूंगा। यदि किसी प्राकार की भयंकर आपत्ति आये तो राजाराम को मेरा प्रतिनिधि समझ कर उसके साथ मिल कर मराठा मण्डल की रक्षा करनी। शिवा जी

स्वयं अपने पुत्र के साथ बाल सखा तानाजी मालुसरे और प्रतापराव गुर्जर को साथ लेकर दिल्ली की ओर रवाना हुआ। शिवाजी के प्रबन्ध की विशेषता इसी से स्पष्ट हो जाती है कि उसकी अनुपस्थिति में मराठा मंडल में किसी प्रकार की अशांति नहीं हुई। किसी सरदार ने बगावत नहीं की। किसी ने विद्रोह नहीं किया। सबने अपने आप को मराठा मंडल का सेवक समझा। यही भाव था। जिसके कारण मराठे लोग थोड़ी संख्या में होते हुए भी औरंगजेब का मुकाबला कर सके। शिवाजी दिल्ली पहुंचा। आत्माभिमान के साथ दरबार में उपस्थित हुआ। औरंगजेब ने उपेक्षा करके उसका अपमान करना चाहा। क्षत्रिय सब कुछ सह सकता है, परन्तु अपमान नहीं सह सकता। आंखें लाल होगई, खून खौल उठा। औरंगजेब ने जाल में फंसे शेर को पिञ्जरे में कैद कर खुशी मनायी। समय की बात होती है। उस समय शिवाजी ने सब कुछ सहा। चुपचाप दरबार से बाहर आया। औरंगजेब ने कड़ा पहरा लगाया। परन्तु हवा को कौन पकड़ सकता है? आग को कपड़े में कौन छिपा सकता है? यही हुआ, आग ने अपना रास्ता बना लिया।

*　　*　　*　　*

बादशाही महलों की एक कोठी पर कड़ी निगरानी में पहरेदार दम साधे शस्त्र बांधे खड़े हैं। कोई भी सन्तरी निश्चित स्थान से इधर उधर नहीं हिल सकता। इस कड़े पहरे में हवा भी सन्तरियों की इजाजत के बिना नहीं निकल सकती। आदमी का तो कहना ही क्या?

यह सब क्यों? औरंगजेब की सालों की इच्छा आज पूरी हुई है। महाराष्ट्र का वीर शिवाजी आज उस के हाथ में आगया है। शायस्ताखां की स्त्री ने पति की ओर से बदला लेने के लिए औरंगजेब को इस बात के लिये तैयार किया कि वह शिवाजी का प्राणान्त करें। शिवाजी अपने पुत्र के साथ कैद में बेबस बैठा है। प्रश्न यह है कि इस कारावार से छुटकारा कैसे हो। कुछ दिनों में शिवाजी ने पहरेदारों को अपने मिलनसार स्वभाव से मोह लिया। शिवाजी की बीमारी की हालत में पहरियों ने हकीम को जेल में आने जाने से नहीं रोका।

ऊपर के हाकिमों ने भी इस में कुछ उज्र नहीं किया। शिवाजी वेष बदलने में बहुत चतुर था। ठीक अनुकूल मुहुर्त में हिरोजीफर्जन्द को अपने कपड़े पहिराकर उसे अपने विस्तर पर सुलाया और स्वयं शिवाजी पुत्र के साथ निकल गया।। यमुना पर पहुंचते ही उन्होंने बैरागी का वेष धारण किया। यमुना के किनारे साधु मंडलियों में मिलजुल कर शिवाजी निश्चित क्रम के अनुसार महाराष्ट्र में सुरक्षित पहुंच गए। पीछे से हिरोज फर्जन्द, हकीमके वेष में 'दवाई लेने जाता हूं' का बहाना कर बाहर निकल गगा। पहरेदार दोपहर को शिवाजी के स्थान पर पहुंचे तो क्या देखते हैं कि बिस्तर खाली पड़ा है। उसी समय बादशाह को यह बात मालूम हुई; सुन कर उसे बहुत क्रोध आया। एक दम खोज करने का सख्त हुक्म दिया गया। आदमी दौडाए गये। यमुना के मारुति मन्दिरों के साधुओं का पीछा किया गया। परन्तु अब कुछ नहीं हो सकता था। शत्रु हाथ-से निकल गया था।

—:•:—

(१२)

❀ कुपित औरङ्गजेब ❀

बन्दूक से निकली हुई गोली का फिर से लौटना मुश्किल होता है। जिस प्रकार एक वार शिकारी के जाल से निकला हुआ शेर फिर हाथ नहीं आ सकता; उसी प्रकार शत्रु के बन्धन से निकले हुए, शत्रु का गोल फोड़ कर बाहर आये हुए, शिवाजीका पता पाना मुश्किल ही नहीं असम्भव था। औरंगजेब देखता ही रह गया। लोहे की जंजीरें, पहरेदारों की संगीनें, दिल्ली के गुप्तचर, सब बेकार साबित हुए। बिना रक्तपात किए औरंगजेब जैसे चाणाक्ष की आंखों में धूल झोंक कर निकल आना शिवाजी का ही काम था। युद्ध के मैदान में यद्यपि शिवाजी की सेना कई वार पराजित हुई होगी परन्तु नीति के दाव पेच में शिवाजी बाजी मार ले गया। औरंगजेब अपने आपको अपने समय का एक राजनीति पण्डित समझता

था। शिवाजी ने उसे बता दिया कि महाराष्ट्र के वीरों के जागते हुये किसी की क्या मजाल जो आराम की नींद सो सके। औरंगजेब ने एक दम जयसिंह को बीजापुर की लड़ाई समाप्त कर लौट आने का हुक्म भेजा। रामसिंह का दरबार में प्रवेश बन्द कर दिया गया। उसे यह भ्रम होगया कि शिवाजी के निकल जाने में जयसिंह का हाथ था। अविश्वासी को और सूझता भी क्या। परमात्मा ने जयसिंह को औरंगजेब के कुटिल नीति चक्र से बचाना था। रास्ते में ही उस का देहान्त होगया। पापियों के अत्याचारों को सहने की अपेक्षा परमात्मा के कठोर दण्डका सहना अच्छा है। औरंगजेब दांत पीसता रह गया। शिवाजी और जयसिंह दोनों ही उस के हाथ से निकल गये। मराठा मंडल पर आया हुआ विकट संकट टल गया।

यदि इस समय शिवाजी दिल्ली दरबार से सुरक्षित लौटकर न आता तो स्वराज्य स्थापना का कार्य अधूरा ही रह जाता। परमात्मा को यह अभीष्ट न था। उठती हुई आर्य जाति पर परमात्मा का हाथ था। शिवाजी ने लौट कर नये नियम बनाये। जिन लोगों ने अनुपस्थिति में योग्यता से काम किया था उन्हें इनाम दिये गये। आश्चर्य की बात है कि इस समय में किसी भी मराठे सरदार ने मुग़लों के साथ मिलने की कोशिश नहीं की। इस का कारण यह था कि शिवाजी के सरदार मुग़ल सरदारों की तरह आर्थिक लाभ की दृष्टि से नौकरी नहीं कर रहे थे। उन्हों ने एक उच्च भाव के लिये आत्मनिर्णय तथा स्वराज्य के दिव्य सिद्धान्तों के लिये, अपने जीवनों को शिवाजी की सेवा में समर्पित किया था। सांसारिक प्रलोभन उन्हें इस उच्च आदर्श से डिगा न सके।

किसी भी देश के नवयुवक जब तक सिद्धान्तों के लिए मरने मारने को तैयार रहते हैं तब तक उन की गति को बड़ी २ सेनाएँ भी नहीं रोक सकतीं। ये आदर्शसिद्धान्त युवकों के जीवन में विजली का संचार कर देते हैं। संसार में भावों का ही राज्य है। गुरुगोविन्द ने इसी विजली को युवकों के जीवन में संचारित कर अपने वीरों में वो ताकत पैदा करदी थी जिसे बड़े से बड़े बादशाह भी नहीं रोक सके। अहमदशाह दुर्रानी

जैसे क्रांतिकारी आक्रान्ता देखते रेह गए। आज भारत में भी महात्मा गांधी ने नवयुवकों में वैसी ही बिजली का संचार किया है। लोग अब निर्भय होगये हैं। हंसते २ सिद्धान्तों के लिये मर मिटने वालों की संख्या बढ़ रही है। महाराष्ट्र में जब तक मराठा वीरों ने सांसारिक महत्वाकांक्षायों को दूर रख कर स्वराज्य और स्वराष्ट्र की सेवा करना अपना कर्तव्य समझा, तब तक देश में किसी प्रकार की अशांति और पारस्परिक ईर्षा नहीं पैदा हुई। जब तक राष्ट्रभक्ति की लगन युवकों के दिलों में जागृत रही तब तक किसी ने ऊंचे औहदों या बड़ी २ जगीरों की फिकर नहीं। शिवांजी की आत्मा सब पर अदृश्य असर डाल रही थी। आज भी यदि हम देश को आन्तरिक कलहों से बचा कर स्वराज्य स्थापना की ओर लेजाना चाहते हैं तो हमें चाहिये कि लोगों के दिलों को देशभक्ति के भावों से भरपूर करदें। सच्ची लगन वाले देशभक्तों को इतनी फुर्सत ही नहीं मिलेगी कि वे स्वार्थमय पारस्परिक कलहों में अपना समय लगा सकें। आशा है आज की भारत सन्तान वीरों के सन्देश को सुनेंगे; और स्वराज्य की वेदि पर, तुच्छ भेद भावों को तिलांजली देकर मराठे वीरों की तरह फिर से स्वराज्य स्थापित कर ही दम लेंगे। शिवाजी ने इस विजय को स्थिर रखने के लिए जो नया संगठन बनाया उस का वर्णन आगे किया जायेगा। औरंगजेब ने यशवन्तसिंह को भेज कर दक्षिण के झगड़े को निपटाया। निम्न लिखित शर्तें निश्चित हुईं।

(१) औरंगजेब ने शिवाजी को स्वतंत्र राजा स्वीकार किया।

(२) शिवाजी को औरंगाबाद में नई जागीर मिली। पुरंदर का किला लौटा दिया जाय। सम्भा जी दिल्ली दरबार में मनसबदार निश्चित हुआ। इस के बाद कुछ समय तक बीजापुर में छोटी मोटी लडाई होती रही। आखिर उन्हों ने भी १६६८ में शिवाजी से संधि की। बीजापुर तथा गोलकुंडा के दरबारों ने शिवाजी को ५ लाख रुपया देना स्वीकृत किया! इस प्रकार शत्रुओं से अपनी बात मनवा कर १६७९ में राज्य स्थापना का काम पूरा किया। औरंगजेब को जब यह मालूम हुआ तो उसने क्रुद्ध होकर मुअज्जम को फिर से युद्ध करने को लिखा। प्रताप राव गुर्जर मारवाड़

छोड़कर इधर आगया। न चाहते हुए भी मुअज्जम और यशवन्तसिंह ने बादशाह की इच्छा को पूरा करने के लिये १६७० में फिर से मराठों के साथ युद्ध घोषित किया। शिवाजी की मुग़ल बादशाह से यह अन्तिम लड़ाई थी। इस अन्तिम लडाई पर ही महाराष्ट्र का भाग्य निर्भर था। अन्य मुसलमान शक्तियों ने भी १५६४ की तलीकोट की लड़ाई की तरह मिलकर आर्य जाति को कुचलने का निश्चय किया। जिस प्रकार मुसलमान रियासतों ने १६ वीं सदी में बिजयनगर की हिन्दू रियासत पर चारों ओर से आक्रमण कर उस को नष्ट भ्रष्ट कर दिया था। उसी प्रकार १६७० में औरंगजेब के नेतृत्व में मुसलमानों ने मराठामंडल को कुचलने की कोशिश की। शिवाजी इस आपत्ति से बिल्कुल नहीं घबराया। वह एक समय में अनेक शत्रुओं से सफलता पूर्वक लड़ने में सिद्धहस्त था। यह अन्तिम युद्ध मराठा इतिहास में अपूर्व स्थान रखता है। यही युद्ध "सिंह गया पर गढ़ आया" के नाम से प्रसिद्ध है। अनेक कवियों ने इस वीर कथा का गान कर अपनी प्रतिभा को पवित्र किया। अनेक उपन्यास लेखकों ने इस पवित्र कथा के सम्पर्क से अपनी मन्द लेखन शक्ति में जादू का सा असर पैदा किया है। आइये हम भी इस पवित्र वीर कथा के पारायण से अपने को पवित्र करें।

(१३)
❋ वीरता की पराकाष्ठा ❋

औरंगजेब ने दक्षिण के सूबेदारों को फिर से लड़ाई जारी करने का हुक्म दिया। वह अपने जीते जी शिवाजी को अमन चैन से बैठने नहीं दे सकता था। मुगलों के इस आक्रमण का मुकाबला करने के लिये शिवाजी ने सब सरदारों को बुलाया। पुरन्दर की सन्धि के अनुसार पुरन्दर तथा कोंडाणा का किला मुगलों के हाथ चला गया था। रामदास ने अपने शिष्य से यही दक्षिणा मांगी कि कोंडाणा के किले पर भगवे झंडे को गाड़ो। गुरु आज्ञा पाने की देर थी शिष्य ने शिर झुकाया। सरदारों ने भी, सरदारों के सरदार, शिवाजी की हां में हां मिलाई, और निश्चय हुआ

कि मुगलों के मुकाबले में, शत्रुपक्ष के बढ़े हुए प्रभाव को कम करने के लिये, शत्रु पर अपनी शक्ति का दबदबा बैठाने, और अपनी धाक जमाने के लिये आवश्यक है कि पुरंदर की सन्धि के कारण हाथ से निकले हुए पुरन्दर और कोडाणा को हस्तगत किया जाय।

औरंगजेब की आज्ञा पाते ही मुग़ल सरदारों ने क्षणिक सन्धि की शर्तों की उपेक्षा कर प्रताप राव गुर्जर को औरंगाबाद की जागीर छोड़ने के लिये वाधित किया। और एकदम-अभी जब कि मराठे सावधान होरहे थे कोडाणा किले पर राजपूतों की सेना के साथ मिलकर मोर्चाबन्दी का उपक्रम किया। औरंगजेब की आज्ञा टालने का किसी में दम न था—सर पर लटकती तलवार के नीचे आदमी निश्चिन्त सो सकता था परन्तु क्रुद्ध औरंगजेब के हुक्म रूपी तेग के सामने कोई नहीं खड़ा हो सकता। जी जान से सब सरदारों ने बादशाह को प्रसन्न करने के लिये कोडाणा किले में जोर शोर से तय्यारियां शुरू करदी। नई सेनाएं और रसद जमाकर, किले को अधिकाधिक दृढ़ किया गया। उदयभान राजपूत ने किले की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया।

राजपूतों ने मराठा लोगों को दबाने के लिये, अपने वल को और राणा प्रताप की तलवार को कलंकित करने का ठेका लिया। औरंगजेब जानता था:—औरंगजेब ही क्या प्रत्येक अत्याचारी भेद नीति का आश्रय लेकर ही अपनी स्थिति को कायम रखता है। उस समय औरंगजेब की भी यही नीति थी। औरंगजेब अपनी प्रजा को, अपने सरदारों को, अपने मुकाबले की शक्तियों को इसी भेदनीति के सहारे निर्बल करना चाहता था। अपनी सत्ता को सुरक्षित रखने में उसने हिन्दू, मुसलमान का फर्क नहीं किया। **स्वेच्छाचारी अत्याचारी शासकों का कोई धर्म नहीं होता।** यदि उन्हें वास्तव में किसी धर्म की सच्ची लगन होती वे कभी अत्याचार ही न करें। उनके नीचे रहने में किसी को उजर भी न हो। औरंगजेब का उद्देश्य केवल हिन्दुओं को ही दबाना नहीं था। उसका

उद्देश्य, उठती शक्तियों को चाहे वह मुसलमान हो या हिन्दू:—कुचलना था। बीजापुर निजामशाही और कुतुबशाही के मुसलमान बादशाहों को हैरान करने में, उन्हें परस्पर लड़ाने और दबाने में औरंगजेब ने कमी तो क्या करनी थी, उनको दमन करने के लिए शिवाजी तक से सहायता लेने में संकोच नहीं किया। इतना ही क्यों ! मीरजुम्ला, और अकबर की नीति को मानने वाले मुसलमानों को भी नहीं छोड़ा। इसी प्रसंग में राजपूत और मराठों को परस्पर लड़ाने में औरंगजेब सदा सावधान रहता था। इसीलिए मराठों के मुकाबले में कोडाणा के किले पर उदयभान को नियुक्त किया गया। आज हमें बताया जा रहा है कि औरंगजेब के समय से हिन्दु मुसलमान झगड़ते आरहे हैं। औरंगजेब ने हिन्दुओं को ही लूटा, उन्हें ही तंग किया। पाठकगण जानते हैं कि इतिहास की यह सम्मति नहीं है। इतिहास बताता है कि स्वेच्छाचारी महात्वाकांक्षी औरंगजेब ने राजनीति के क्षेत्र में हिन्दु या मुसलमान सब को एक दृष्टि से, अपनी शक्ति की रक्षा के लिए परस्पर लड़ाने में कभी कमी नहीं की। हमारे "हिमायती" सरकारी दोस्तों की यह दुहाई उनकी "भेद नीति" का एक पैंतरा है। आज के भारतीय शासक भी औरंगजेव की तरह मुकाबले की शक्तियों को परस्पर लड़ाकर साधारण जनता में फूट के बीज वोकर अपनी शक्ति को स्थिर करने की फिकर में हैं। शिक्षणालयो में 'इतिहास' की कथाओं में, यही पढ़ाया जाता है कि हिन्दु मुसलमान कभी एक नहीं हुए। देशी नरेश परस्पर मिल नहीं सकते; मिलना भी हो तो वायसराय या रैजिडेन्ट के निरीक्षण में। अत्याचारियों के ढंग ऐसे ही होते हैं। औरंगजेब ने जिन उपायों का अवलम्बन किया था उन्हीं का आज के हमारे "कृपालु,, शासक उसी [भेदनीति] की नीति का अवलम्बन कर कभी हिन्दु-बीबी को रिझाने कोशिश करते हैं कभी मुसलमान बीबी को। परन्तु यह चालें देर तक नहीं चल सकती। कोई भी व्यक्ति किसी को सदा के लिए ओझल में नहीं रख सकता। आज भारतीय जनता अपने हितको समझ रही हैं। पारस्परिक एकता के महत्व को समझ कर जाग उठी है। परन्तु अफ़सोस ! मुकुटधारी राजा आज भी अपने अ-

असली रूप को नहीं समझ सके। जिस प्रकार मुगल शासन काल में राजा के पवित्र नाम को कलंकित करने वाले नामधारी राजपूत राजाओं ने उस समयके अत्याचारियों, स्वेच्छाचारी प्रजा के अधिकारों की उपेक्षा करने वालों के साथ हाथ बटाकर कलंक का टीका अपने माथे पर लगाया था; उसी प्रकार आज के देशी नरेश शानदार गुलामों के रूप में भारत माता को कलंकित कर रहे हैं। शिवाजी ने अकलमन्दी से इन शक्तियों को अपनाने की कोशिश की थी। कुछ सफलता भी प्राप्त हुई थी। रास्ते में अटकने वालों को उखाड़ने में संकोच नहीं किया था। उसी प्रकार आज के भारतीय राष्ट्र के कर्णधारों को चाहिए कि यथा सम्भव देशी नरेशों को अपनाने कीकोशिश करें। देशी रियासतों की प्रजाओं को प्रेरित करना चाहिए कि वे आन्दोलन कर अपने अधिकारोंको प्राप्त करें। वह भी ख्याल रखना चाहिए कि भयंकर कंटक को उखाड़ फेंकने में संकोच नहीं करना चाहिए। अस्तु। शिवाजी ने अवस्थाएँ देख कर निश्चय किया कि किले का रक्षक कोई भी हो:—अब तो कोडाणा को सर किए विना दम नहीं लेना। अव प्रश्न यह था कि इस काम के लिए कौन सरदार आगे बढ़े। कोडाणा किले की भयंकर स्थिति को देखते हुए किसी सरेदार ने आगे बढ़ने का साहस न किया। शिवाजी की मांग का कोई उत्तर न मिला। इस संदिग्ध विकट विजय यात्रा के लिये किसी सरदार को उठता न देखकर महाराष्ट्र मंडल की आराध्यदेवी जीजावाई ने कहा अच्छा? यदि कोई वीर मैदान में नहीं निकलता तो कोई बात नहीं:—मेरा पुत्र मेरी बात को नहीं टाल सकता।

जीजा बाई ने पत्रवाहक के हाथ तानाजी मालसरे के यहां चिट्ठी भेजी। चिट्ठी क्या थी भवानी देवी ने अपने भक्त से प्राणों की दक्षिणा मांगी थी। साधारण अवस्थाओं में भक्त लोग देवता को प्रसन्न करने में सफल हो जाते हैं। परन्तु आज ताना जी के सामने विकट परीक्षा का समय था। एक ओर माघ वदी ९ को जीजाबाई के पास पहुंचना था। दूसरी ओर उसी दिन ताना जी के लड़के **रायबास** का विवाह होना था। घर में विवाह समारोह की तैयारियां थीं। मातायें, परिवार की स्त्रियें मंगल

गीत गारहीं थीं—बंदनवार सजा रही थीं । कोई छोटा विवाह नहीं था। शिवाजी महाराज के बाल सखा सरदारों के सिरमौर ताना जी के लड़के का विवाह संस्कार था । एक ओर पुत्र मोह था; दूसरी ओर माता भवानी की मांग। साधारण लोग ऐसे समयों में घबरा कर विचार सागर में डूबने लगते हैं। परन्तु वीर लोग ? संकोच करना या फिकर करना जानते ही नहीं। जो भावना दिल में आयी उसे एक दम कार्य रूप में परिणत कर देते हैं। इन लोगों के दिलों में पहेलियों की बूझ एक दम सूझती है।

ताना जी ने देर नहीं लगाई । राष्ट्र के कार्य के सामने वैयक्तिक काम को तुच्छ समझ कर अपने पुत्र को शिवाजी की रक्षा में सौंप कर स्वयं, रायगढ़ की ओर प्रस्थान किया। बड़ों का आशीर्वाद लेकर ताना जी मालसरे अपने छोटे भाई सूर्या जी के साथ १००० निर्भय मावले सरदारों को लेकर माघ वदी ६ को रायगढ़ से निकल पड़ा। ताना जी मालसरे की टुकड़ी संख्या में थोड़ी थी। परन्तु उनमें एक २ सरदार शत्रुओं के २०० सरदारों का मुकाबला करने का संकल्प करके मैदान में उतरा था। कौडाणा के इस बड़े किले को इस छोटी सी सेना के सहारे सर करना मुश्किल ही नहीं अपितु असम्भव था। परन्तु वीर पुरुषों के शब्द कोष में असम्भव शब्द ही नहीं। वह तो यह समझते हैं कि जब तक उनके हाथ में तलवार है तब तक उनके लिये दुनिया में कोई बात असम्भव नहीं है।

किलों को सर करना तो क्या ? वे अपनी तलवार के ज़ोर पर आकाश में भी लड़ाई करने को तय्यार रहते हैं। बड़े २ समुद्र उनकी गति को नहीं रोक सकते । ताना जी मालसरे ने अपनी सेना को दो भागों में विभक्त किया। ५०० सेनानियों को अपने भाई सूर्या जी के साथ छोड़कर स्वयं गुप्त मार्ग से किले की तलैटी में पहुंचा। किसी न किसी प्रकार किले में प्रवेश करना था। एक मावला सरदार घोरपड़ी [पालतू गोह] की सहायता से किले की दीवार पर चढ़ गया। किलेदार बेसुध सोरहे थे। उन्हें स्वप्न में भी ख्याल न था कि मराठे रात को किले में पहुंचेंगे । वीर मावले ने रस्सी की सहायता से ३०० मराठे को किले की दीवार पर चढ़ा लिया।

ताना जी मालसरे भी किले में पहुंचा । राजपूत चौकन्ने हो शस्त्र संम्भाल कर लड़ने लगे । दोनों में घमासान युद्ध हुआ । ३०० मराठे शत्रु की प्रबल सेना का देर तक मुकाबला न कर सकते थे । शेर शेर से भिड़ गया । उदयभान और ताना जी मालसरे में आमने सामने लड़ाई हुई । दोनों में भयंकर युद्ध हुआ । दोनों को अपनी तलवार का अभिमान था । कोई हार नहीं मानता था । जीते जी दोनों ने हारना सीखा ही नहीं था । ताना जी की एक ढाल टूट गयी । क्या हुआ ! दूसरी ढाल संभाली और राजपूती तलवार को बताया कि मराठे भी किसी दूसरे से कम नहीं है । लड़ते २ दोनों थक गए। दोनों ने एक दूसरे की वीरता सराही और तलवार से तलवार लड़ाकर एक दूसरे को यमलोक में, ताजे होकर फिर से युद्ध के लिये निमन्त्रण दिया । वीर को निमन्त्रित करना वीर ही जानता है । उदयभान और ताना जी दोनों एक मैदान में धराशायी हुए । वीर सेनापति के गिरते ही बची हुई मराठा सेना विचलित हो, मैदान छोड़ने लगी । इतने में ताना जी का भाई सूर्या जी भी भी नयी टुकड़ी के साथ किले में घुस गया । लौटते हुए वीरों को कहा ! शत्रु का झण्डा गिरा कर वीर ताना जी ने तुम्हारे लिए रास्ता साफ कर दिया है । अब पीछे हटने का क्या काम ? या तो ताना जी के पास पहुंचो या, किले पर भगवा झण्डा फहरावो ।

"बढ़ो बढ़ो बढ़ा" की ध्वनि की ।

भवानी माता तृप्त हो गयी है । ताना जी की बलि हो चुकी है । छोटे ताना जी के वीर श्रीयुक्त भाषण ने सेना में नया जोश सञ्चारित कर दिया। फिर रण क्रन्दन मचा। तलवारें चली । राजपूत पराजित हुए । शत्रु कैद हुए, कुछ भाग निकले । किले पर झोंपड़ी में अग्नि ज्वाला जला कर शिवाजी को विजय की सूचना दी । ताना जी का बलिदान सफल हुआ— भवानी के भक्त को स्वर्गलोक मिला । मराठा मंडल में विजय की खुशियां मनायी गयी । परन्तु जब शिवाजी ने सुना कि विजयी सेना, ताना जी के बिना ही लौट रही है तो बाल सखा के बिछोह में उन्होंने कहा ! धन्य हो ताना जी !! धन्य ! धन्य ! **गढ़ आया पर सिंह गया** अच्छा यह किला तुझे समर्पित हो इसका नाम **सिंहगढ़** होगा ।

(१४)

❀ शिवाजी का अभिषेक ❀

१६७४ के पावस काल का प्रारम्भ है। विजयी महत्वाकांक्षी सेनापति अपनी सेनायों को आगामी युद्धों के लिए तय्यार करने के लिए, सरदी और गरमी की प्रचण्ड विजय यात्रायों से थके हुए वीरों को आराम देने के लिए—पावस काल की प्राकृतिक शोभा को निहार कर प्रसन्न हो रहे हैं। पूर्व युद्धों में पराजित वीर सचिन्त हैं। प्राकृतिक शोभा उनके लिये दुःख दायिनी हो रही है। वर्षा के जलकण उनके लिय विषकण बन रहे हैं। बिजली की चमक दमकको देखकर पराजित व्यक्तियों को विजेता शत्रु की तेज़ तलवार दिखाई देती है। बादलों की गर्जना सुनकर विपक्षी के तोपखाने उसे चिन्तित करने लगते हैं। उमड़ते हुये नदी प्रवाह, उसके सामने अलंघनीय समुद्र बन रहे हैं। बर्षा ऋतु में बन देवी ने अनूठा शृंगार सजाया है। कुञ्ज और उपवनों की शोभा ; पर्वत मालाओं के पेचीदे चक्करदार मार्गों पर हरी चादर बिछ रही है। पराजित शत्रु, इन कुञ्ज और सघन उपवनों को शत्रुके गुप्त स्थान समझ रहा है।

आज बीजापुर के रसिक दरबारियों की यही हालत है। शिवाजी की घुड़ सवार सेना की टापों और मुगलाई सेना के प्रचण्ड तोपखानों से कम्पित बीजापुर दरबार को, पावस की शोभा के रमणीय दृश्य चिन्तित कर रहे हैं। चारों ओर उन्हे चिन्ता पराजय और भयके भूत दिखाई दे रहे हैं। परन्तु आइये ज़रा रायगड़ की रौनक देखें। वहां निराला ही रंग हैं। बड़े २ शास्त्री, ब्राह्मण, राजदूत, वकील अपने शान्दार पहरावों में उत्सुकता और आशाभरी नज़रों के साथ आगे बड़े आरहे हैं। पहाड़ी लोग निश्चिन्त हो कर, घाटियोंके कुञ्जों में आंख मिचौनी की खेलखेल कर आनन्द और निश्चिन्तता के गीत गा रहे हैं। रात दिन आठों पहर घोड़ों की नंगी पीठ पर सवार रहने वाले मावलिये भी आज आनन्द मना रहे है।

ओह !!! यह आनन्द की तैयारियां कैसी, आइये ज़रा देखें शिव के गणों

की विजय दुन्दुभी कहां बज रही है। काशी के प्रसिद्ध पंडित गागाभट्ट अपनी शिष्य मण्डली के साथ रायगढ़ पहुंच गये। उत्तर और दक्षिण सब ओर गागाभट्ट की विद्वता की धाक जमी हुई है। विजय नगर के प्रसिद्ध पंडित विद्यारण्य ने आर्य-साहित्य का पुनरुज्जीवन कर आर्य धर्म में क्षत्र तेज का संचार किया था। आज भी गागाभट्ट ने चिरकाल से मन्द तेज, प्रभा हीन, क्षत्रतेज को दक्षिण में फिर चमकाने के लिए अभिषेक यज्ञ द्वारा तीर्थ जलों के सिंचन से शिवाजी को स्नान कराने का शुभ संकल्प किया है। एक ओर प्रकृति देवी वीर पुत्र का अभिषेक कर रही है, दूसरी ओर रायगढ़ के ऊँचे मंच पर ब्रह्म तेज के प्रतिनिधि गागाभट्ट तीर्थों दकों तथा पवित्र चरुओं से शिवाजी को स्नान कराने के लिये दीक्षित हुये हैं। आर्य राजा का अभिषेक आर्य पद्धति के अनुसार ही होना चाहिये। गागाभट्ट ने प्राचीन साहित्य का पठन कर अभिषेक पद्धति का निर्माण किया। यह राज्याभिषेकोत्सव किसी महत्वाकांक्षी की इच्छा को पूरा करने के लिये नही सजाया गया था—अपितु इस राज्याभिषेक द्वारा आर्य जाति के क्षत्र तेज को प्रकाशित करना अभीष्ट था। शिवाजी तो निमित्त मात्र था। उस समय के रामदास आदि धार्मिक गुरुओं ने शिवाजी को इस शुभ कार्य के लिये योग्य उत्तम साधन समझा था। यद्यपि प्रत्यक्षतः शिवा जी का किसी पुराने राज घराने से सम्बन्ध न था—नाही उनका व्रत बंध संस्कार हुआ था—परन्तु ये बाहर की बाधायें उसके रास्ते में बाधक नहीं हुई। गागाभट्ट कर्म सिद्धान्त को मानने वाले थे। शिवाजी ने सच्चे क्षत्रिय के धर्म का पालन किया था। अतः आवश्यक व्रत बंध आदि कराकर उन्हें अभिषिक्त राजा बनाने में संकोच नहीं किया गया। आज भी हम देखते हैं कि बड़े २ ब्राह्मण, ब्रह्मतेज के ज्वलन्त स्वरूप के सामने सिर झुकाने में अहोभाग्य समझते हैं। अवतारी पुरुषों की यही विशेषता होती है। जन्म तथा लौकिक बाधाएं इनकी गति तथा तेज को नहीं रोक सकती। कृष्ण भगवान् के सामने द्रोण जैसे ब्राह्मण भी सिर झुकाते थे। नैपोलियन यद्यपि राज घराने का नहीं था परन्तु उसके तेजस्वी चेहरे के सामने मुकुटधारी युरोपीय

राजाओं ने अपने सिर नमाये। शक्तिशाली तेजस्वी व्यक्ति ही असली राजा है। आज स्वदेश में कितने ही पुराने राज घरानों के नाम पर अभिमान करने वाले देशी राजे महाराजे, ब्रिटिश पार्लियामेंट के प्रतिनिधि वायसराय के सामने सिर झुका रहे हैं। शक्ति और तेज चाहिए। **जिसका तेज उसी का राज**। शिवाजी का तेज चारों ओर फैल गया था अतः उनके सिवाय दूसरा कोई व्यक्ति नहीं था जो राज तेज के चिन्ह रूप अभिषेक तिलक को धारण कर सके।

निश्चित तिथि से दस दिन पूर्व व्रतबंध पुण्याह वाचन आदि चूत परायण होते रहे। आखिर ज्येष्ठ शुक्ल १३ अथवा १६७४ सन् ६ जून का मंगल दिन आ पहुंचा। यह दिन महाराष्ट्र के भाग्योदय का दिन था। इस समारोह के दिन महाराष्ट्र के कोने २ में कैसी चहल पहल होगी-- इसका अनुमान ही लगाया जा सकता है। भारतीयों ने विदेशी सम्राट् पञ्चम जार्ज के स्वागत के लिये कितना समारोह किया था !!!

उस समय तो स्वदेशी राज्य था; उस के अभिषेकोत्सव में स्वतंत्र राष्ट्र ने जो खुशियां मनायी होंगी उसका प्रत्यक्ष दृश्य देखना हो तो युरोप के किसी स्वतंत्र राष्ठ्र में राज्याभिषेक दिन की तैयारियों को देखिए। पराधीन गुलाम भारत निवासी तो निरन्तर पराधीन रहनेके कारण इस अलौकिकसुख की कल्पना करने के अधिकारी भी न रहे।

हम पाठकों के सामने तात्कालिक ऐतिहासिक लेख के आधार पर उस दिन के समारोह का अविकल वर्णन उपस्थित करते हैं।

"सब लोग मंगल स्नान कर वहु मूल्य वस्त्र भूषण आदि धारण कर सभा मंडप में उपस्थित हुए। शिवाजी भी मंगलस्नान कर अलंकार धारण कर, कुलगुरु वालंभट्ट भावनी और मातृदेवी श्री जीजा वाईकी चरण वन्दना करके स्त्री, पुत्र के साथ ठीक मुहूर्त्त में सिंहासन पर विराजमान हुए। राज्यअधिकारी वर्ग, प्रधान, सेनापति सचिव भी राजसी ठाठ बाट के साथ मंडप में पहुंचे। सवा हाथ ऊंचा सिंहासन बनाया गया। इस

सुवर्ण मंडित आसन पर शिवाजी महाराज बैठे। साथ ही श्रीमती सोरायवाई युवराज सम्भाजीके साथ बैठीं। सिंहासन के चारों ओर चारों दिशाओं में यथा स्थान अष्ठ प्रधान, हाथ में सुवर्ण कलस लिये हुए, दिग्पालों की तरह खड़े हुए।

अष्ठ प्रधान के चारों ओर राज कोष और शालओं के अध्यक्ष खड़े हुए। मित्र मण्डली और माण्डलिक राजा भी यथा स्थान खड़े हुए। मंगल मुहूर्त की प्रातीक्षा करने लगे। ठीक मुहूर्त में ब्राह्मण वर्ग ने मंत्रोच्चारण पूर्वक मंगलाक्षतकी वृष्टि द्वारा शिवाजी महाराजको पवित्र किया। आम्र पल्लवों द्वारा शिवाजीको अभिषिक्त किया।" इस अभिषेकके बाद शिवाजी सुसज्जित सिंहासन पर आसीन हुए। वहां पर बैठते ही ब्राह्मणों तथा एकत्रित जन समाज ने शिवाजी पर सोना चांदी के फूलों की वर्षा की। ब्राह्मणों ने आशीर्वाद दिया। सारा राष्ट्र १०८ तोपों की गर्जन से गूंज उठा।

इस गर्जन को सुन कर शत्रुओं के दिल दहल गये। भक्तों के दिल आनन्द सागर की तरंगों में उछालियां लेने लगे। जीजा वाई ने इस दृश्य को देख कर दिल ही दिल में अपने को धन्य माना। अभिषेक संस्कार निर्विघ्न समाप्त हुआ। शिवाजी की सुवर्ण तुला हुई। शिवाजी का वजन १६००० होन हुआ या ४० तोला अर्थात् १ मन तीस सेर। विद्वान् ब्राह्मणों को दक्षिणा दीगई। गागा भट्ट को एक लाख रुपये और बहु मूल्य वस्त्र भूषण दक्षिणा में दिये गए। प्रत्येक ऋत्विज को २४ हज़ार रुपये की भेंट दी गई। योग्यतानुसार उपस्थित अभ्यागतों की पूजा हुई। ब्राह्मण पूजाके बाद अष्ट प्रधानों को उन के पदों के अनुसार राज चिह्न से अंकित पदचिह्न देकर राष्ट्र में नयी व्यवस्था चलाई।

इस समारम्भ के बाद महाराज हाथी पर, सोने की अम्बारी में बैठकर देव दर्शन करने के लिये प्रास्थित हुए। सवारी के साथ सब प्रसिद्ध राज-पुरुष थे। नागरिकों ने पुष्प वृष्टि से महाराज का स्वागत किया। देव दर्शन के बाद अपने स्थान को लौट आये।

इस प्रकार त्रयोदशी का शुभ समारम्भ समाप्त हुआ। इस समारम्भ में चार कोटि रुपया खर्च हुआ।

इस राज्याभिषेक के समय शीतलपुरी नामक परमानन्द गोसाईं आदि सन्यासी भी आये थे। उन का सत्कार किया गया। उन के उपदेशामृत से जनता ने पुण्य लाभ किया।

इस समारम्भ तथा नयी राज व्यवस्था को चिरस्मरणीय बनाने के लिये निम्न लिखित बातें प्रचलित की गयीं:—

१—राजचिह्न धारण कर रामदास स्वामी के स्मरण के लिए "भगवा झण्डा" को मराठी सेना का चिह्न बनाया।

२—शक सम्बत् बन्द कर, राज्याभिषेक शक प्रचलित किया। शिवाजी ने जान बूझ कर युधिष्ठिर शक, विक्रम शक की तरह शिव शक प्रचलित नहीं किया। इस संस्कार को राष्ट्रीय रूप देने के लिए अभिषेक शक का ही प्रारम्भ किया गया।

शिवाजी ने "क्षत्रियकुलावतंस शिवछत्रपतिमहाराज सिंहासनाधीश्वर' का पद धारण किया।

३—रायगढ़ किले को राजधानी बनाया। इस गढ़ पर स्थित होकर जल तथा थल दोनों क्षेत्रों में शत्रु का दमन हो सकता है।

४—राज्य के सब विभागों का स्थिर प्रबन्ध किया।

इस अभिषेक समारोह के समय विदेशी राजाओं के दूतों ने पहुंच कर स्वतंत्र रूप से सन्धियां की। महाराष्ट्र के पुराने राजघरानों ने शिवाजी की श्रेष्ठता को माना। यह अभिषेक-संस्कार इस बात का साक्षी था कि शिवाजी ने जो विजय यात्रायें की हैं वह स्वार्थ के लिये नहीं की, अपितु राष्ट्र के लिये ही की थी। इस महाभिषेकोत्सव की साज सजावट को देख कर साधारण जनता भी शिवाजी को अपना रक्षक और त्राता

समझने लगी। दिल्ली और बीजापुर के बादशाहों को भी इस की स्वतंत्रता स्वीकार करनी पड़ी। इस प्रकार चारों ओर अपना प्रभाव जमा कर शिवाजी ने इस नवराष्ट्र को स्थिर पाए पर खड़ा करने के लिये नये उपायों को सोचा। शिवाजी की ही दूरदर्शिता का परिणाम था कि भविष्य में मराठा मंडल पर भयंकर संकट आने पर भी शत्रु उसे छिन्न भिन्न नहीं कर सके। इस अभिषेक संस्कार की विशेषता इस बात में है कि शिवाजी ने राज्यपदों को पैतृक जायदाद नहीं बनाया। योग्य व्यक्ति ही योग्य व्यक्ति को पहचान सकता है। वह योग्य व्यक्ति चाहे कोई हो। शिवाजी ने अपने जीवनकाल में जन्म जनित योग्यता की अपेक्षा, कर्म जनित योग्यता को ही महत्व दिया था। यही कारण था कि योग्य व्यक्ति बिना बुलाए अपने परखैया की ओर खिंचे आते थे। अस्तु; रामदास का शुभ संकल्प पूरा हुआ। शिवाजी ने विजय में प्राप्त किए धन को दान दक्षिणा और प्रजा रक्षण में लगाकर स्वयं त्यागमय जीवन व्यतीत किया है। किसी कवि ने ऐसे आदर्श राजाओं के विषय में ठीक ही कहा है—

आदानं हि विसर्गाय
महतां वारिमुचामिव। रघुवंश

प्रतापशाली लोग जो कुछ लेते हैं, वह दूसरों को देने के लिए ही; अपने लिये नहीं। सूर्य जल पान करता है परन्तु मेघ द्वारा वह उसे दूसरे को दे देता है। ब्राह्मण ज्ञानार्जन करता है दूसरों को देने के लिये। सच्चा क्षत्रिय विजय लक्ष्मी को प्राप्त करेगा, दूसरों के लिये। सच्चा वैश्य दान देने के लिए ही कमाता है।

बड़े पुरुषों की यही विशेषता है—जिनमें यह निष्काम परोपकार भाव समाए हुए हैं; वही महात्मा हैं; योगी हैं, अवतारी हैं। सब का द्रष्टा परमात्मा भी बिना किसी कामना के संसार को शीतलजल तथा पवित्र पवन से अनुकम्पित कर रहा है। हमारे नायक ने भी अपने आपको दूसरों के लिये न्योछावर कर दिया। ऐसे अलौकिक पुरुष के सामने किसका

सिर नहीं झुकेगा। ऐसे पुरुषरत्न को जन्म देने वाली जीजाबाई धन्य है। दोनों को नमस्कार हो। आज के दिन बड़े २ दिक्पाल क्षत्रिय राजे महा-राजे कृपा कटाक्ष की प्रतीक्षा में सिंहासनासीन शिव के सामने सिर झुका रहे हैं—परन्तु यह भी देखिए:—**वह शिव भी नतमस्तक हो किसी की ओर टकटकी लगाए देख रहा है**—इस शिववन्दित-शिव पूजित जीजाबाई क्षमा मूर्तिमती:—भारत माता भी सच्चे पुत्र के नमस्कार को **गद्गद हो** स्वीकृत कर रही है। आइए, हम भी दु:खित भारत माता को प्रसन्न करने के लिए वीर शिवाजी के पग चिह्नों पर चले। **बोलो शिवाजी महाराज की जय। जीजाबाई की जय। भारतमाता की जय।**

-:०:-

(१५)

❀ संविधान ❀

बड़े २ युद्धों में शत्रुओं को पराजित करके नए-साम्राज्य को खड़ा करना कोई असाधारण बात नहीं। सिकन्दर नैपोलियन; मुहम्मदगौरी और तैमूरलंग की विजय यात्राएं इतिहास में अपनी प्रचण्डता और तीव्रता के लिये प्रसिद्ध हैं। दूसरी ओर चाणक्य और डूप्ले जैसे नीतिचाणाक्ष भी इतिहास में अपूर्व स्थान रखते हैं। इन वीरों ने तलवार को हिलाए बिना संधि-सभाओं में लेखिनी के जोरपर साम्राज्यों को पलट दिया। परन्तु इन वीरों में इतना साहस या पराक्रम न था कि युद्ध के मैदान में रणचंडी की पूजा कर सकें। इनके कारनामे मनोरञ्जक ऐतिहासिक उपन्यासों तथा नाटकों के संविधान बन चुके हैं। तीसरी तरह के व्यक्ति हमें दिखाई देते हैं जिन्होंने न तो रण में कभी पराक्रम दिखाया नाहीं सधिचक्रों में अपनी तीक्ष्ण बुद्धि का परिचय दिया। परन्तु इन दिमागों ने युद्ध समाप्ति के बाद विजित प्रदेशों का शासन किस ढंग से हो, किस मेशीनरी का प्रयोग किया

जाय—इन स्कीमों को बनाने में अपनी योग्यता प्रकट की है। आज कल के सभ्य देशों में अग्रगण्य अमेरिका की राजव्यवस्था बनाने वाले दिमाग इसी ढंग के थे।

शिवाजी की तलवार और लेखनी के कारनामे प्रतापगढ़ की लड़ाइयों और पुरन्दर की संधियों में देख चुके हैं। बीजापुर और दिल्ली दरबार ने कईबार कोशिशें की कि शिवाजी को किसी भी तरह नीचा दिखायें, परन्तु इतिहास इस बात का साक्षी है कि शत्रुराज्यों के सेनापति और राजदूत शिवाजी के सेनापतियों और राजदूतों को नहीं हरा सके। इन सब विजयों का श्रेय शिवाजी तथा उनकी मित्र मंडली को है। शिवाजी के सामने अभी एक प्रबल शत्रु और था। यह शत्रु था आत्माभिमान। सिकन्दर जैसे विजेता, नैपोलियन जैसे रणधीर, इस आत्माभिमान और महत्वाकांक्षारूपी शत्रु को न जीत सके। साम्राज्य स्थापित किए, सेनाओं का संगठन किया, परन्तु ऐसे किसी उपाय का अवलम्बन नहीं किया जिससे आत्माभिमान और महत्वाकांक्षा का दमन होसके। शिवाजी नीचे से ऊपर उठा था। गद्दी पर बैठकर भी उसने रामदास के चरणों में सिर झुकाया था। इसलिये शिवाजी इस महत्वाकांक्षारूपिणी राक्षसी का दमन करने में सफल होसका। इस उद्योग में शिवाजी ने जिस मन्त्र प्रयोग किया उसका नाम अष्ट प्रधान मंडल है। मराठा इतिहास में अष्ट प्रधान नाम की संस्था का वही महत्व है जो इस समय अमेरिका के मन्त्रिमंडल का है। भारत के उत्तरकालीन इतिहास में यह संस्था अपने ढंग की एक है। कौटिल्य अर्थशास्त्र शुक्र-नीति, कामन्दकी, नीतिवाक्यामृत आदि काव्यग्रन्थों में जिन प्रमाणों का वर्णन मिलता है, उनका जीवितजागृत चित्र मराठा इतिहास में दिखायी देता है।*

---

* कोई भी आदमी अकेला अपने सब कामों को नहीं करता, उसे अन्यों की सहायता की आवश्यकता होती है। फिर राज्य जैसे बड़े काम के विषय में तो कहना ही क्या। भारतीय राजनीति शास्त्र में इसी सिद्धान्त के आधार पर राजाओं के मंत्रिमण्डल का निर्माण किया जाता है।

राज्य को स्थिर बनाने के लिए आवश्यक है कि सेना निरीक्षण तथा प्रजा पालन के काम के लिए देश के योग्य २ व्यक्तियों को एकत्रित किया जाय। उनके निरीक्षण में काम किया जाय। शिवाजी ने यही किया। माता जीजाबाई और कोंडदेव से महाभारत में जो बातें सुनी थीं, उन्हें ही कार्य रूप में परिणत किया। मराठा मंडल को स्थिर पाये खड़ा करने के लिए शिवाजी ने अष्ट प्रधान मंडल का निर्माण किया। इस प्रकरण में हम इसी बात का दिग्दर्शन कराएंगे कि शिवाजी ने स्वराज्य संरक्षण करने के लिए क्या प्रबन्ध किया था।

इस प्रबन्ध के तीन मुख्य भाग हैं:—

प्रथम—शासन संचालन

द्वितीय—फौज़दारी प्रबन्ध

तृतीय—दिवानी प्रबन्ध

शासन संचालन—स्वराज्य में परराष्ट्रों के कारण होनेवाली आपत्तियों पर साधारण निरीक्षण करने के लिए अष्ठ प्रधान बनाया गया। यह संस्था एक दम राज्याभिषेकोत्सव के समय नहीं बनी। क्रमशः आवश्यकतानुसार इसका विकास हुआ। जबतक शिवाजी की जागीर का मुख्य प्रबन्धकर्ता कोंडदेव थे तबतक इस अष्टप्रधान सभा के ४ ही सभ्य थे। १६४७ में जब शिवाजी ने सारा काम अपने हाथों में ले लिया तब सेनापति का नया पद बढ़ाया गया। कोंडदेव के समय तक इस पद की आवश्यकता न थी। शिवाजी ने इधर उधर आक्रमण करने शुरु किए अतः सेनापति की आवश्यकता हुई। १६६७ में न्याय विभाग का मन्त्री नियुक्त किया गया। इस समय स्वाधीन प्रदेशों में लोगों के पारस्परिक झगड़ों को निपटाने के लिए इसकी आवश्यकता थी।

१६७४ में राज्याभिषेक के समय मन्त्रियों की संख्या ८ होगई है। इसी समय इन मन्त्रियों के नाम—जो उस समय दफ्तरों में फारसी भाषा में प्रयुक्त किये जाते थे पंडितों के परामर्श से संस्कृत भाषा में कर दिए गए। शिवाजी के समय अष्ट प्रधान का संगठन इस प्रकार से था:—

१. पेशवा—प्रधान मन्त्री। मोरोपन्त शिवाजी का दायां हाथ था। दान पत्रों पर मुहर आदि यही लगाता था। जब शिवाजी दिल्ली गया था तब मोरोपन्त ने ही सारा काम सेना संचालन तथा राज्य संचालनादि का किया था।

२. मजुमदार पंत अमात्य-राज्य का जमा खर्च का सारा लेखा इसके निरीक्षण में होता था। इस पद पर पहले बालकृष्ण पन्त था। १६४७ से निलोसोन देव को यह काम दिया गया।

३. सुरनीस अथवा सचिव-सरकारी दफ्तर का निरीक्षण, लेखा ठीक छाप तथा दस्तखतादि का प्रबन्ध।

४. चौथा प्रधान वांकनीस व मन्त्री। इसका काम सरकारी कारखानों राजा के महल में तथा राजा के अभ्यागत आदि के लिए ठीक भोजनादि का प्रबन्ध करना था। १६४७ में मंगूमलजी इस पद पर था। १६६४ में दत्ता जी त्रिमल को यह पद दिया।

५. सेनापति व सरनोबत:—पैदल सेना और अश्वरोहियों की सेना के ऊपर सरनोबत व सेनापति नाम के अधिकारी थे। इनमें से अश्वारोहियों के सेनापति नाम के अधिकारी थे। इनमें से अश्वारोहियों के सेनापति को ही मुख्य सेनापति के काम पर नियुक्त किया जाता था। शिवाजी के सामने इस पद पर क्रमशः चार व्यक्ति नियुक्त किये गए। १६४१ में मालकोजी दत्त तोडे को बनाया। ५६ साल में उसका देहान्त होने पर नेता जी पालकर को सेनापति बनाया। १६६२ में नेता जी पालकर को राजगढ़ भेजकर प्रतापराव गुजर को इस पद पर नियुक्त किया। १६७२ में

बीजापुर वालों के साथ लड़ाई में प्रतापराव गुर्जर मारा गया। इसके बाद वीरराव मोहिते को इस पद पर नियुक्त किया।

६. उवीर—सुमन्त=परराष्ट्र सचिव। १६४१ तक सोनोपन्त इस पद पर रहा। इसके मरने पर सोमनाथ पन्त और उसके पुत्र रावजी सोमनाथ के पास यह पद पर रहा। परन्तु राज्याभिषेक के समय जनार्दन नरायण-दत्त मन्त्री को सुमन्त बनाया गया

७. न्यायाधीश, यह न्यायाधीश मुहर द्वारा पत्रों को अंकित करता था। प्रथम निराजीराव जी इस पद पर रहा। अभिषेक के समय वालाजी पंडित को इस पद पर स्थिर किया।

८. पंडित राव-इसे पहिले न्याय शास्त्री कहते थे। इसका काम देव-स्थान, तीर्थ स्थान तथा दान धर्म आदि का निरीक्षण करना था। राज्याभि-षेक के समय से इसका नाम पंडितराव होगया। १६६१ में रघुनाथ भई चंदावर को दानाध्यक्ष बनाया। राज्याभिषेक के समय इसी को पंडित राव का पद दिया। इसी रघुनाथ पंत की सहायता से मराठा दरबार में फ़ारसी भाषा का वहिष्कार कर, संस्कृत भाषा का काम चालू किया। राज व्यवहार कोश का निर्माण इसी पडित ने किया। इसी के पुत्र ईश्वर ने सम्भाजी के समय इस पद पर रहकर कई सुधार किये।

इन आठ मंत्रियों की सहायता से सारे मराठा मंडल का शासन होता था। शिवाजी के निरीक्षण में ये मन्त्री अपने २ विभागों का काम करते थे। शिवाजी इन आठ रत्नों को एक महाराष्ट्र धर्म सूत्र में पिरोने वाला मुख्य नायक था। शिवाजी ने यह पद्धति कहां से ली? कइयों का कहना है कि यह दिल्ली दरबार की नकल है, कइयों का कहना है कि महाभारत के आधार पर बनाई गई थी।

ऊपर हमने जिस ऐतिहासिक विकास का उल्लेख किया है उससे पता लगता है कि सचाई बीच में है। समय की आवश्यकता के अ-

नुसार शिवाजी अपने सहायकों को बढ़ाता गया। शुरू २ में इन के नाम वही थे जो दिल्ली दरबार में प्रचलित थे। परन्तु राज्याभिषेक के समय सब नामों को शास्त्रोक्त कर दिया गया। यह ठीक है कि ये प्रधान आज कल के प्रजासत्तावाद के सिद्धान्त के अनुसार प्रजा के प्रतिनिधि नहीं थे।

परन्तु इसमें भी सन्देह नहीं कि यह मंडल किसी श्रेणी विशेष का जायदादी हक न था। शिवाजी का मुख्य उद्देश्य प्रजा रक्षण था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने इस मंडल का संगठन किया था। जिन लोगों ने युद्धों में, आपत्तियों में भी शिवाजी का साथ नहीं छोड़ा था, जिनके विषय में शिवाजी को विश्वास था कि ये लोग रामदास के पूरे शिष्य हैं और महाराष्ट्र धर्म पर सब कुछ त्यागने को तैयार हैं। उन्हें ही इन पदों पर नियुक्त किया जाता था। महाराष्ट्र मंडल पर कई वार संकट आए उन संकटों में इस प्रधान मंडल ने ही महाराष्ट्र देश में शान्ति स्थापित की।

शिवाजी जब दिल्ली गया था तब इसी मंडल ने राज्यकार्य चलाया था। इसी प्रकार अगले इतिहास में छत्रपतियों के कैद हो जाने पर या अबोध दशा में--इस मराठा मंडल ने ही--देश को शत्रुओं से बचाया था। अष्ट प्रधान मंडल का इतिहास बताता है कि यह मंडल अपने समय में मराठा मंडल की रक्षा का एक मात्र साधन था। इस प्रकार शासन संचालन के लिये उपरिलिखित राजसंस्था का संगठन कर शिवाजी ने स्वराष्ट्र संरक्षण के लिए सेना संगठन का जो कार्य किया है उसका संक्षिप्त परिचय भी हम पाठकों के सामने रखते हैं।

देश में सुशासन प्रचलित करने के लिए अपने राष्ट्र को दो भागों में बांटा हुआ था। एक का नाम स्वराज्य और दूसरे का मुगलाई। शासन की इकाई किले थी। आज कल जिस प्रकार भारतीय शासन की इकाई जिले हैं। उसी प्रकार उस समय सारे स्वराज्य राष्ट्र को किलों में बांटा हुआ था। ये किले तीन प्रकार के होते थे।

१. जलदुर्ग—समुद्रतट या समुद्र के बीच में इन्हें जंजीग कहते थे। २. पहाड़ी किलों को गढ़ और ३. समतल भूमि के किलों को भूमि कोट याकोट कहते थे।

रायगढ़ प्रतापगढ़ और पन्हाला पहाड़ी किले थे।

सिंधु दुर्ग सुवर्ण दुर्ग आदि जल दुर्ग थे। विजापुर निलपुर वदामी आदि भूमि कोट थे। शिवाजी के किलों की संख्या ३०० थी। प्रत्येक किले पर हवलदार नाम का मुख्य अधिकारी रहता था। इसका काम अपने क्षेत्र में शान्ति रखना तथा किले में युद्ध सामग्री आदि का संग्रह करना था। इन किलों द्वारा अन्तर्रीय शासन होता था। इन्हीं किलों को केन्द्र या आधार मानकर जल सेना और स्थल सेना द्वारा विदेशी शत्रुओं का मुकाबला किया जाता था। स्थल सेना के दो विभाग थे पैदल सेना और घुड़सवार सेना।

प्रारम्भ में शिवाजी का सैन्य वल १२०० था। अन्त में यह ६०००० तक पहुंच गया था। ३०, ४० हजार सेना स्थिर सेना के रूप में थी। परन्तु अस्थिर सेना भी आवश्यकता होने पर युद्धों में आजाती थी। शेष समय अपने कामों पर रहती थीं। शिवाजी की जल सेना के विषय में संक्षिप्त विवेचन कर्नाटक की चढ़ाई के प्रकरण में किया जा चुका है। शिवाजी ने धीरे २ अपना जहाजी बेड़ा तय्यार करने के लिये सिंधुदुर्ग आदि स्थान अपने आधीन करके वहां अपनी जलसेना का मुख्य अड्डा बनाया था। १६७५ में विजय दुर्ग बनाया। पोर्तुगीज लोगों ने अनेक वार शिवाजी के पास अपने दूत भेज कर पश्चिमी किनारे पर व्यापार करने की आज्ञा मांगी। १६६५ में शिवाजी ने पश्चिमी किनारे पर दौरा लगाकर अंग्रेजों को दण्ड देकर उनकी कोठी बन्द की। १६७० में शिवाजी की जल सेना में १६० जहाज थे। पोर्तुगीजों से शिवाजी का मुकाबला था। शिवाजी ने उनका दमन करनेके लिए अपनी सेना को बढ़ाया। लड़ाकू जहाजों की संख्या ६० थी इस विभाग में ५ हजार आदमी थे। दर्यासागर इब्राहीम खान

मायनायक भंडारी आदि शिवाजी की जल सेना के मुख्य कार्यकर्ता थे। इसी समय कान्हो जी आगरे शिवाजी की जल सेना में नौकरी करता था। यह सरदार आगले इतिहास में मराठा जल सेना का मुख्य सेनापति बना।

राज्य का संचालन राज्य की आय पर निर्भर होता है। जहां की प्रजा सुखी निश्चिन्त होगी वहां लोग व्यापार तथा धन्धों द्वारा देश की सम्पत्ति को बढ़ायंगे। शासक वर्ग भी इसी बढ़ी हुई सम्पत्ति के सहारे राज्य संचालन और राज्य रक्षा का काम कर सकता है। शिवाजी ने राष्ट्र की सम्पत्ति को बढ़ाने के लिये दो उपायों का प्रयोग किया।

१. जागीरदारी तथा जमींदारी सिष्टम को बन्द कर दिया।

२. राज्य-कर वसूल करने के लिये ठेकेदारों और जमींदारों की जगह सरकारी नौकरों को नियुक्त किया। इन कमाविसदार महालकारी और सूबेदारों को नियत तनख्वाह मिलती थी। यह अधिकारी राजा की ओर से प्रजा से कर वसूल करते थे। इन अफसरों को हुक्म था कि ये उपज के $\frac{1}{5}$ से अधिक कर न लें। पहिले ठेकेदार राजा के नाम से प्रजा को लूटते थे। शिवाजी ने इस पद्धति को दूर कर दिया। भविष्य में यह आपत्ति पैदा हो न हो इसलिए सरकारी नौकरों को सिक्के के रूप में तनख्वाह देने का क्रम चलाया। पहिले राजा सरदारों को जागीरें देते थे। समयान्तर में यही जागीरदार विद्रोही सरदार बनकर उत्पात मचाते थे।

जितने भी साम्राज्य प्रवर्तक या सुधारक बादशाह हुए हैं—केवल इसी देश के नहीं अन्य देशों के भी—सबने इसी उपाय का प्रयोग किया है। शेर शाह और अकबर ने भी रैयत से सीधा सम्बन्ध रखने के लिये जमींदारी पद्धति को तोड़कर रैयतवारी पद्धति को स्वीकृत किया। शिवाजी ने भी यही किया। प्रजा जनों के पारस्परिक झगड़ों को निपटाने के लिए पंचायतों को पुनः प्रचलित किया। कर वसूल करने वाले अधिकारी यथा स्थान इन्हीं पंचायतों की सहायता से लोगों के झगड़ों को निपटाते थे।

अष्ट प्रधान का न्यायाधीश इसी विभाग का निरीक्षक था। अन्य प्रधान मन्त्री (पंडित राव को छोड़कर) युद्धों पर भी जाते थे; परन्तु न्याय-शास्त्री न्याय-सम्बन्धी मामलों को निपटाने के लिए राजधानी में ही रहता था। इस प्रकार शिवाजी ने प्रजाओं को सस्ता और सीधा न्याय पहुंचाने का प्रबन्ध किया।

पाठक गण! हमने आपके सामने शिवाजी के शासन चक्र का संक्षिप्त विवरण रखा है। इस प्रबन्ध की विशेषता यह है कि वह प्रबन्ध सरल और स्पष्ट है। अनुभवी दिमाग ने देश की रक्षा के लिए जो आवश्यक समझा उसे कायदे कानून में बांध दिया। इस अष्ट प्रधान मंडल को बना कर शिवाजी ने अपने अधिकारों को नियन्त्रित किया।

सारा काम प्रधान मन्त्री करते थे शिवाजी स्वयं साक्षी मात्र रहते थे। शिवाजी ने स्वयं अपने अधिकार भी मन्त्रियों के हाथ में दे दिए। परिणाम यह था कि किसी भी सरदार ने दीर्घ शासन काल में शिवाजी के विरुद्ध विद्रोह करने का संकल्प नहीं किया। अन्य विजेताओं को अपने सरदारों से भय रहता है कि कहीं वे उसे गद्दी से न उतार दें—परन्तु शिवाजी को यह भय न था। शिवाजी चाहता था कि उसके सरदार उससे अधिक बलशाली हों। यही भाव था जिसने विद्रोह के भावों को पैदा नहीं होने दिया।

शिवाजी का अष्ट प्रधान शिवाजी का स्मारक है। प्राचीन काव्यों में वर्णित अष्ट प्रधान सम्बन्धी संस्थाओं को जीवित जागृत करने का श्रेय शिवाजी को है। इस प्रकार जहां शिवाजी बड़ा भारी योद्धा राजनीति-पंडित था वहां शासनकर्ता की दृष्टि से भी वह किसी से कम न था। शिवाजी के इन सर्वतो-मुखी गुणों को देखकर—किस का हृदय श्रद्धा और सन्मान के भाव से परि-पूर्ण नहीं होता! आइए ऐसे महापुरुष के चरणों में श्रद्धांजलि समर्पित करें। उस समय की स्वतन्त्र महाराष्ट्र जनता ने राजसिंहासन पर शिवाजी को निमन्त्रित कर राजतिलक की आरती उतारी थी। आज की पराधीन प्रजा भी

यदि और कुछ नहीं कर सकती तो आइए—इस आत्मा के गुण कीर्तन से तो अपने आत्मा पवित्र करें।

—:o:—

(१६)

❋ बीजापुर का अन्त ❋

शिवाजी को चारों ओर विजयी होता देखकर कुतुबशाही तथा आदिलशाही के मुसलमान बादशाह आत्मरक्षा की फ़िकर में परस्पर गुट बनाने की सोचने लगे। इसी चहल पहल में १६७२ में बीजापुर का बादशाह अली मर गया। यह बादशाह ऐशआरामपसन्द, दिनरात अन्तःपुर में ही रहता था। इसके दर्बार में बड़े २ रसिक कवियों ने श्रृंगारमयी कविताओं का निर्माण कर जनता की रुचि को भी उसी प्रकार का बना दिया था। परिणाम यह था कि दरबारी वज़ीर और सरदार मुख्यता प्राप्त करने के लिए एक दूसरे के विरुद्ध दलबन्दियां बनाते थे। ये सरदार रियासत के हितों की परवाह न करते थे। अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने के लिए, दरबार में ऊंचे पदों तक पहुंचने के लिए षड्यन्त्र रचे जाते थे। इस समय दरबार में दो पक्ष थे। एक पक्ष का मुखिया बहलोल खां पठान था। दूसरे का मुखिया मसऊद खां नाम का सीदी सरदार था। इस घरेलू लड़ाई के कारण शिवाजी की गति को रोकनेवाला कोई न रहा। शिवाजी निरन्तर आगे बढ़ता गया। कुतुबशाही के बादशाह कुतुबशाह हसन ने दोनों पक्षों को समझाकर शिवाजी के साथ लड़ाई करने को तय्यार किया। कुतुबशाह ने अपने दूत भेजकर दिल्ली के बादशाह औरंगजेब की भी सहायता मांगी। जिस प्रकार १५६४ में तालीकोट की लड़ाई में मुसलमान रियासतों ने मिलकर विजयनगर की हिन्दु रियासत को तहसनहस किया था; उसी प्रकार इन सहधर्मियों ने मिलकर उठती हुई विरोधिनी शक्ति का मुकाबला करने का निश्चय किया। इस समय तक के अनुभव ने उन्हें बता दिया

था कि यदि वे राजनैतिक स्वार्थों से प्रेरित होकर शिवाजी का मुकावला करना चाहते हैं तो उन्हें सफलता नहीं होसकती। लाचार होकर किसी धार्मिकभाव से प्रेरित होकर नहीं, अपितु राजनैतिक स्वार्थों की रक्षा करने के लिए धर्म के नाम पर रियासतों ने गुट बनाया। महत्वाकांक्षी लोग किस प्रकार युद्ध करते हैं इसका यह ज्वलन्त उदाहरण है।

दिनरात शराब की बोतलों में लीन बादशाह भी धर्म की फिकर करे, यह आश्चर्य की बात है। आज भी इस देश में, तथा संसार के अन्य भागों में, महत्वाकांक्षी लोग स्वार्थों को पूरा करने के लिए अबोध जनता को बहकाकर खून खराबियां कराते हैं। युरोप के ११वीं तथा १२वीं सदी के धर्मयुद्ध भी राजनैतिक स्वार्थों के कारण पैदा हुए थे। खैर! जबतक इस भूमितल पर स्वार्थ की सत्ता है; लोग धर्म जैसे पवित्र आकर्षक नामों द्वारा रक्तपात कराने से नहीं रुकेंगे। शिवाजी भी सब कुछ समझता था। अभी संधियों तथा सुलह नामों के पैगाम रियासतों में एक दूसरे के पास आरहे थे, शिवाजी ने एक दम कुतुबशाही पर आक्रमण कर दिया। कुतुबशाही की सेना आत्मरक्षा में व्यग्र होगयी। दूसरी तरफ़ शिवाजी ने झटपट विजापुर के दृढ प्रसिद्ध दुर्ग पन्हाला पर धावा बोल दिया। मिल बादशाह देखते ही रह गए। दोनों की सेनाएं एक दूसरे से न मिल सकी।

शिवाजी ने अन्ना जी पंडित को पन्हाला किले पर आक्रमण करने के लिये भेजा। साथ में कोन्डा जी गोन्डाजी और पोतियोजी को चुने सरदारों के साथ सहायता के लिए रवाना किया। राजपुर में अन्ना जी ने गुप्त चर द्वारा समाचार जान लिए। सिपाहियों ने रातको पन्हाला पर आक्रमण किया। अन्ना जी रक्षक सेना के साथ जंगल में छिपा रहा। अन्ना जी रात को अंधेरे में बड़े परिश्रम के साथ पन्हाला की तराई में पहुंचे। निराश और बेवस हो, सिर पर खड़ी पहाड़ी की ओर देखने लगे। रस्सियों की सीडी बना कर चुप चाप एक दूसरे के हाथ का सहारा लेकर ऊपर के चौपटतल पर पहुंच गए। चारों ओर से एक दम नरसिंहे बजने लगे।

किले का रक्षक आवाजों को सुनकर चिल्ला उठा- "यह शोर कैसा है"। प्रहरी नींद से उठकर हाथ में शस्त्र लेकर चबूतरे में इधर उधर दौड़ने लगे। पैदल सवारों तथा सवारियों को इधर उधर भागता देख कर नागरिक भयभीत होगए, किले का रक्षक हाथ में तलवार लेकर रक्षक सेना की टुकड़ी के साथ मुकाबला करने को बढ़ा। कोंडाजी भी अपनी तलवार हाथ में लिए आगे बढ़ा। घमासान युद्ध शुरू हुआ। किलेदार ने कुछेक सिपाहियों पर प्रहार किया परन्तु कोंडाजी ने मौका देखकर उसका सिर धड से अलग कर दिया। इसी अरसे में पूर्व दिशा में प्रभात काल की रंगीन छटा दिखाई दी।

इसी प्रकार मानोजी पंडित ने भी घबड़ा कर द्वारपाल से पूछा यह शोर कैसा है? इतने में पैदल सिपाहियों ने हांपते हुए कहा कि ब्राह्मण! ब्राह्मण!! रक्षा करो। किलेदार मारा गया है। शत्रु किले में घुस गया है। ब्राह्मण अभी फिकर में ही था कि उसने देखा कि गयाजी उसके घर की ढूंढ में उधर ही आ रहा है। उसे देखते ही वह जान बचाकर दौड़ा। गया जी ने मोतिया जी नाम के बीजापुर दरबार के अहलकार के छिपने की बात सुनी और उसकी ढूंढ में लग गया। अन्य स्थानीय अधिकारियों को गिरफ्तार किया गया।

किले के गुप्त स्थानों के विषय में आवश्यक परिचय प्राप्त किया। पड़ताल की, और सब स्थानों पर अपने आदमी नियुक्त किए गए। शिवाजी को चिट्ठी लिखकर विजय का समाचार पहुंचाया। आना जी निश्चित स्थान पर पहुंचा। दो दिन में आदमी ने शिवाजी के पास पहुंचकर कहा कि पन्हाला जीत लिया गया। शिवाजी ने संदेशहर को ४५०) इनाम दिये और अपने हाथ से उसके मुंह में खांड की डली रखी। शिवाजी ने विजय दुन्दुभि बजाने की आज्ञा दी। सेनानियों ने चिल्लाकर कहा कि अब बीजापुर की भी आलोक करता है, पर्वत मालाओं ने भी गम्भीर प्रति ध्वनि द्वारा इसका अनुमोदन किया।

पर्वत मालाओं की गूंज में मराठा सेनाओं को बीजापुर पर कूच करने की आज्ञा दी। उवरानी और जैसरी के मैदान में बीजापुर की सेना बहलोल खां तथा खवास खां के नेतृत्व में आगे बढ़ रही थी। मराठे वीरों ने प्रताप-राव गुर्जर की अध्यक्षता में इनका मुकाबला किया। भयंकर मारकाट मची। बीजापुर की सेना के पर उखड़ गए। बीजापुर का रहा सहा प्रभाव भी जाता रहा। इस लड़ाई में अनेक मराठे वीरों ने अपने जौहर दिखाए। प्रतापराव गुर्जर युद्ध मैदान में खेत रहा। परन्तु इस वीर की कमी को पूरा करने वाले धन जी जाधवराव सन्ताजी घोर—पड़े और हंबीरराव मोहिते ने आगे बढ़कर धराशायी वीर के हाथों में फहराते हुए झंडे को संभाला। १६७७ में बीजापुर का प्रसिद्ध सरदार बहलोलखां मर गया। औरंगजेब चालाक था उसने बीजापुर तथा कुतुब शाही को शिवाजी के विरुद्ध सहायता नहीं दी; क्योंकि उसकी दिली अभिलाषा यह थी कि दक्षिण की मुसलमान रियासतें नष्ट करदी जायं। बहलोलखां की मृत्यु के बाद दरबार ने मसऊद खां को मुख्य सेनापति बनाया। दिल्ली दरबार का सरदार दिलेरखां उदासीन था।

विपक्षी दरबारियों ने मुगल बादशाही के सरदारों के साथ मिलकर बीजापुर की रही सही सम्पत्ति तथा श्री को मटियामेट कर दिया। मसऊद खां को विरोधी पक्ष के पठानों ने बहुत तंग किया। गृह कलह को शांत करने वाला कोई नहीं था। लाचारी हालत में कोई आसरा न देख कर मसऊद खां ने शिवाजी से संधि करली। इस बाह्य आक्रमण के शांत होने पर भी मसऊद को आराम नहीं मिला। शिवाजी ने अपने जीवन काल तक इस रियासत को औरंगजेब के आक्रमण से बचा रखा परन्तु शिवाजी की मृत्यु के बाद औरंगजेब अपने कार्य में सफल हुआ और रियासत को अपने आधीन कर लिया।

(१७)

❋ कर्नाटक की कथा ❋

शिवाजी की अनेक विजय यात्राओं में कर्नाटक की विजय यात्रा विशेष महत्व की है। इसी कर्नाटक की सवारी में शिवाजी ने गोलकुण्डा और विजापुर के कई प्रदेश स्वाधीन किए। शहाजी ने विजापुर दरबार की ओर से युद्ध करके, कर्नाटक के कई प्रदेश अपने आधीन कर लिए थे। नयी जागीर बनाकर तंजोर में अपना मुख्य निवास स्थान बनाया। शहाजी की मृत्यु के बाद शिवाजी का सौतेला भाई व्यंकोजी विजापुर दरबार की ओर से जागीर का प्रबन्ध करने लगा। दूसरी ओर शिवाजी विजापुर के मुकाबले में प्रतिद्वन्दी स्वतन्त्र राजा बना हुआ था। अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करने के लिए ही अभिषेक--समारोह किया था। परन्तु व्यंकोजी विजापुर दरबार के आधीन था। यह कलंक शिवाजी के पूर्ण स्वातन्य में कटंक था। अपने स्वातन्त्र्य की पूरी धाक बैठाने के लिए जरूरी था कि कर्नाटक में भी अधिकार प्राप्त किया जाय। कर्नाटक में विजय यात्रा करने से; जहां एक ओर राज्य विस्तार का लाभ था वहां विजय यात्रा करन का यह मौका भी अनुकूल था। औरंगजेब कुतुबशाही, आदिलशाही को अपने आधीन कर कर्नाटक पर कब्जा करने में संकोच न करेगा इसलिए औरंगजेब के आने से पूर्व ही कर्नाटक में, अपनी शक्ति को स्थिर तथा सुरक्षित करना जरूरी था।

कर्नाटक की यह विजय यात्रा भी अप्रत्यक्ष तौर से औरंगजेब के साथ लड़ाई थी। कर्नाटक में शिवाजी को कोई न जानता था अतः जरूरत थी कि उस तरफ विजय यात्रा की जाय और अपने प्रभाव से लोगों तथा सरदारों को पक्ष में किया जाय। जहां चाह, वहीं राह। ठीक इसी समय एक ऐसी घटना हो गयी जिसके कारण शिवाजी ने १६७७ में कर्नाटक की यात्रा करने का संकल्प कर लिया।

शहाजी के नीचे दादाजी कोंडदेव और नारोपन्त हस्नमन्ते नाम के दो योग्य पुरुष थे। दादा जी कोंडदेव ने शिवाजी के साथ मिलकर पूनास्थित

जागीर की रक्षा की। इन दोनों सरदारों ने शहाजी के नीचे मलिक अम्बर के पास अनुभव तथा शिक्षा प्राप्त की थी। शहाजी १६३८ में कर्नाटक आया अपने साथ नारोपन्त हणमन्ते को भी ले आया था। नारोपन्त १६५३ में मर गया। उसके दोनों पुत्र रघुनाथ और जनार्दन पन्त शहाजी के नीचे अपने पिता का काम देखने लगे। रघुनाथ पन्त ने ठेठ दक्षिण तक मराठों के राज्य विस्तार के लिए गुप्त रूप से शहाजी और व्यंकोजी के नीचे रह कर प्रयत्न किया। शहाजी की मृत्यु के बाद शिवाजी का अभिषेक हुआ। इस समय से व्यंकोजी और रघुनाथ पंत की आपस में न बनी। व्यंकोजी रघुनाथ पंत की उपेक्षा करके औरों की सलाह से काम करने लगा। रघुनाथ पंत ने बीच में व्यंकोजी को कईबार टोका। दोनों की देर तक नहीं निभी। आखिर १६७५ ई० में रघुनाथ पन्त तन्जोर को छोड़कर शिवाजी के पास आ पहुंचा। रघुनाथ पन्त चतुर और दूरदर्शी राजनीतिज्ञ था। वह शिवाजी को साथ मिलाकर कर्नाटक में व्यंकोजी का दमन करना चाहता था। इधर शिवाजी बीजापुर और औरंगजेब से लड़ रहा था। इस हालत में शिवाजी का कर्नाटक की ओर आना मुश्किल था। परन्तु रघुनाथ पन्त ने अपनी चतुराई से मौका निकाल लिया। उसने कुतुबशाही के मन्त्री मदनपन्त को अपने साथ मिलाकर बादशाह कुतुबशाह को शिवाजी के साथ संधि करने को तैयार कर लिया। बादशाह को मदनपंत द्वारा सुझाया कि औरंगजेब बिजापुर के साथ मिलकर कुतुबशाही को नष्ट करना चाहता है अतः शिवाजी से सन्धि करो। इस प्रकार कुतुबशाह को अपने पक्ष में करके, रघुनाथ पंत शिवाजी के पास गया और उसे कर्नाटक की विजय यात्रा के लिए प्रेरित किया। शिवाजी की चिर अभिलषित इच्छा के पूरे होने का समय आन उपस्थित हुआ। शिवाजी ने सलाहकारों की सलाह के अनुसार व्यंकोजी की जागीर में से अपना हिस्सा लेने जाता हूं का निमित्त कर १६७७ ई० में रायगढ़ से कर्नाटक की ओर विजय यात्रा शुरू की। रायगढ़ से चलकर तुंग भद्रा नदी के किनारे प्रेपल आदि स्थानों पर ठहरते हुए धीरे २ शिवाजी ने बेलोर के समीप पहाड़ी किलों:—को जीतने के लिये सेना

को भेजा। सरदार अम्बरखान ने अपने आठ पुत्रों के साथ शिवाजी का मुकाबला किया। परन्तु आखिर उसे किला छोड़ना ही पड़ा। इसी प्रकार शिवाजीने अन्य प्रदेशों को भी जीता। शुरू २ में शिवाजी ने यह आक्रमण कुतुबशाही की ओर से किया था। रघुनाथ पंत की मध्यस्थता के कारण कुतुबशाही शिवाजी के अनुकूल थी। परन्तु इधर अचानक कुतुबशाही ने सहायता देनी बन्द करदी। उधर औरंगजेब ने शिवाजी की अनुपस्थिति में उत्तरीय महाराष्ट्र में उत्पात मचाना शुरू किया। शिवाजी ने अपने भाई व्यंकोजी को समझाया कि वह रघुनाथ पन्त आदि के साथ मिलकर हिन्दू राष्ट्र को संभाले। शिवाजी के सामने उसने सब कुछ स्वीकार किया। थोड़ा बहुत फैसला यहां हुआ परन्तु अन्तिम फैसला चिट्ठी पत्री द्वारा हुआ। शिवाजी अपने पीछे प्रबन्ध के लिये रघुनाथपंत, धनाजी जाधव आदि को छोड़ गया।

इन वीरो ने सावनूर [१६७८, ७९] की लड़ाई में युसुफखान को हराया। इसी कर्नाटके विजय प्रसंग में एक महत्त्व पूर्ण घटना हुई; जिसका वर्णन करना आवश्यक है। महाराष्ट्र के इस जागृति काल में वीरांगनाओं के कारनामे भारत के इतिहास में अपूर्व स्थान रखते हैं। वेलवारी की सावित्री वाई ने अपने पराक्रम से शत्रु को भी चकित किया।

शिवाजी की सरदार मंडली में दादजी रघुनाथ प्रभु महाडकर नाम का स्वामिभक्त सरदार था। इस सरदार ने वेलवाड़ी के भुई कोट किले पर आक्रमण किया। वह किला येस प्रभु नाम के सरदार के आधीन था। दादा जी रघुनाथ ने किसी विद्रोही द्वारा किले के घरों में आग लगवादी। लोग आग बुझाने में व्यग्र थे इतने में दाद जी ने किले में अपनी सेना को पहुंचा दिया। भयंकर युद्ध हुआ। येसप्रभु रण में खेत रहा। किला शत्रु के हाथ में रहा। इतने में येस प्रभु की वीर पत्नी अपने पति की मानमर्यादा को सुरक्षित करने के लिए हाथ में तलवार ले घोड़े पर सवार हुई। सेना का संचालन किया। दादजी को युद्ध के मैदान से लौटा दिया। वीरांगना को युद्ध मैदानमें लड़ता देख,किले वालों का उत्साह द्विगुणित होगया। दादजी ने दम

साधकर फिर आक्रमण किया। बाई के घोड़े पर पीछे से वार किया। घोड़े की पिछली टांग कट गई। बाई भी अशक्त होकर शत्रुओं से घिर गयी। दाद जी उसे शिवाजी के पास लेगया। शिवाजी ने उसका सत्कार कर, किला उसे सौंप दिया। जिस राष्ट्र में जहां ऐसी वीर मातायें हों उनके सामने भला कौन ठहर सकता है ?

यह घटना १६७८ के लगभग हुई। इसके अतिरिक्त शिवाजी ने व्यंकोजी को अनेक तरह से पत्रादि द्वारा भी समझाया। अन्त में रघुनाथ पन्त को पत्र में कई शर्तें लिखकर व्यंकोजी को कहला भेजा कि इनशर्तों के अनुसारचलकर हिन्दु बादशाही तथा पूर्वजों के गौरव को स्थिर रखो। रघुनाथ पंत ने व्यंकोजी को समझा बुझाकर मना लिया। इस प्रकार भाइयों का झगड़ा प्रत्यक्षतः निपटा।

व्यंकोजी उदास रहने लगा। शिवाजी के कार्यकर्ता सब प्रबन्ध करने लगे। व्यंकोजी ने निराश होकर भोजनादि भी छोड़ दिया। शिवाजी को जब यह मालूम हुआ तब उन्होंने प्रेमपत्र लिखकर व्यंकोजी को समझाया।

इस पत्र में लिखा कि हमें रघुनाथ पन्त आदि द्वारा पता लगा है कि तुमने वैराग्य धारण कर लिया है, राजकार्य से उदासीन रहते हो। यह ठीक नहीं है। हमारे बड़ों ने अपनी क्रियाशीलता से जो राज्य प्राप्त किया है हमें उसे संभालना चाहिए। इत्यादि। तुम स्वयं समझदार हो—सब समझते हो। इस कर्नाटक विजय यात्रा के कारण रघुनाथ पंत और जनार्दन पन्त के पुत्रों की सहायता से व्यंकोजी ने सारे मुल्क का प्रबन्ध किया। रघुनाथ पंत ने अपनी बुद्धिमत्ता से शिवाजी और व्यंकोजी के राज्यों को एक सूत्र में ग्रथित कर दक्षिण की अखण्ड हिन्दु बादशाही के स्वप्न को पूरा किया।

यदि शिवाजी कुछ साल तक और जीवित रहता तो अपने विस्तृत हिन्दू राज्य के स्वप्न को अपनी आंखों देखता। कर्नाटक में स्वराज्य की नींव डल चुकी थी—परन्तु अभी तक सीदी शत्रुओं का दमन नहीं हुआ था। इतने में औरंगजेब ने शिवाजी से १६७६ ई० में दूसरा युद्ध छेड़ दिया। औरंगजेब ने बहादुरखां को आक्रमण करन की आज्ञा दी।

बहादुरखान ने दक्षिण में हलचल मचादी, मोरोपंत पेशवा ने उसका मुकाबला किया। बहादुर खां शिवनेरी तक बढ़ा परन्तु हंबीरराव ने दूसरी ओर से सूरत पर धावा किया। इधर दिलेरखां ने कल्याण प्रान्त को लूट लिया। इधर शिवाजी ने कुतुबशाह से मिलकर नया चक्र चलाया। दिलेरखान ने विजापुर से मिलकर शिवाजी को हराना चाहा परन्तु कुतुब-शाह के वजीर मदनपंत ने इनकी एक न चलने दी। औरंगजेब ने दिलेरखान पर दबाव डाला कि वह विजापुर को आधीन करे।

विजापुर ने शिवाजी से सहायता मांगी। शिवाजी ने मुगल प्रान्तों पर धावा बोल दिया। जालना शहर पर आक्रमण किया। शाहजादा ने शिवाजी को रणमस्तखां आसदखान आदि के साथ मिलकर आ घेरना चाहा। संगमनेर के मैदान में मुगलाई और मराठी सेनाओं की मुठभेड़ हुई। निवालकर युद्ध में मारा गया। सन्ताजी घोरपड़े पराजित होकर लौटा। ठीक इस बदलती घड़ी में शिवाजी ने चुने हुए सरदारों के साथ शत्रु के बीच में प्रवेश कर उसको छिन्न भिन्न किया।

इस प्रकार अपने पराक्रम के जोर पर मुगलों को हटाकर शिवाजी गुप्त मार्गों से रायगढ़ पहुंचा। वहां पहुंचते ही उसे सूचना मिली कि दिलेरखान आदिलशाही को नष्ट करने के लिए तुला हुआ है; इतना ही नहीं, शिवाजी का अपना लड़का संभाजी भी शत्रु पक्ष में मिल गया।

यह समाचार सुनकर शिवाजी को दुःख हुआ। शिवाजी ने अपनी ओर से सम्भाजी को अपने साथ रखकर शिक्षित करने में कोई कमी नहीं की। खैर ! इधर दिलेरखान ने सम्भाजी को अपनी ओर मिला तो लिया परन्तु अविश्वासी औरंगजेब ने कहा कि सम्भाजी शिवाजी की ओर से भेदी बनकर आया है। सम्भाजी को भी यह बात पता चल गई कि औ-रंगजेब उसे नहीं चाहता। सब दशाओं पर विचार कर दिलेरखान ने सम्भाजी तक यह यह बात पहुंचादी कि उसका यहां रहना ठीक नहीं है। लाचार सम्भाजी शिवाजी की शरण में गया।

शिवाजी ने उसे समझाया। कुछ ज्ञान की बातें कहीं और पन्हाला के किले में विश्वासपात्र आदमियों के पास रखा। कोल्हापुर में जनार्दन पंत को इसी लिए रखा कि वह सम्भाजी पर निरीक्षण रखे। इसके बाद मुगलों से शिवाजी का कोई युद्ध नहीं हुआ। शिवाजी भी अब युद्ध करते २ थक चुका था। अहमदाबाद, सूरत और बंदरगाहों को छोड़कर उसने जो कुछ लेना था वह ले चुका था। अब शिवाजी के सामने जीवन की अन्तिम घड़ी आगई थी।

(१८)

❀ पश्चिम में सूर्यास्त ❀

शिवाजी ने लगातार ३६ साल तक लगनके साथ परिश्रम कर पहाड़ी घाटियों और महत्वपूर्ण स्थानों में शत्रु का दमन किया। किसी को प्रेम से, किसी को नेम से, किसी को शस्त्र बल के ज़ोर पर, किसी को नीति बल की चालाकियों द्वारा-एक २ करके सब शत्रुओं का नियन्त्रण कर, उत्तर कोंकण से लेकर दक्षिण कर्नाटक तक भगवा झंडा फहराने लगा। पीड़ित लोग आत्मरक्षा के लिये इसी झंडे की शरण में आने लगे। शिवाजी ने दिल्ली दरबार, बीजापुर दरबार और कुतुबशाही एक २ करके सब पर अपना सिक्का जमाया। इन प्रबल शत्रुओं को दबाते हुए शिवाजी ने पश्चिमीय समुद्री शत्रुओं को अपने आधीन करने के लिये काफ़ी यत्न किया। स्थल सेना के संगठन में शिवाजी के पहाड़ी किलों और घुड़सवारों का सबने लोहा माना। केवल एक ही शत्रु था जो अभीतक शिवाजी के मुकाबले में खड़ा होने का दम रखता था। इनका नाम सीदी था। ये लोग समुद्री व्यापारी थे। इस्लाम के मानने वाले थे। कोंकण के पश्चिम में इनके बेड़ों का जमघट था। दिल्ली तथा बीजापुर के बादशाहों ने समय २ पर इनकी सहायता लेकर शिवाजी को तंग करने में कमी नहीं की थी।

इसलिए आवश्यक था कि इस सीमा प्रान्तीय शत्रु के दमन के लिये उचित प्रबन्ध किया जाए। इन्हीं सीदियों का दमन करने के लिए १६६१ में शिवाजी ने राजपुरी बन्दर को आधीन कर उसे अपने जलीय बेड़ का मुख्य स्थान बनाया। रायगढ़ पर किला बनाने का भी यही कारण था कि यहां से सीदियों पर सीधी मार की जासकती थी।

शिवाजी ने जयसिंह के साथ संधि की। जो बातचीत छेड़ी थी उसमें यह भी शर्त थी कि जंजीरा और राजपुरी के समीप के किले शिवाजी को दिए जायं। जयसिंह ने इस शर्त को मान भी लिया था। परन्तु सीदियों के सरदार संबूल ने औरंगज़ेब के पास जाकर कहा कि जंजीरा शिवाजी को न दिया जाय। औरंगज़ेब स्वीकृत संधि को टाल नहीं सकता था। उसने जयसिंह को कहला भेजा कि तुम दोनों शत्रुओं को ही प्रसन्न रखने की कोशिश करो। किसी को भी जंजीरा पर पूरा अधिकार मत करने दो। औरंगज़ेब ने कहला भेजा कि साक्षात् भेंठ के समय शिवाजी के साथ जंजीरा के सम्बन्ध में अन्तिम फैसला होगा। शिवाजी अपने पश्चिमीय राज्य के सीमाप्रान्त को सुरक्षित रखने के लिए आवश्यक समझता था कि जंजीरा को अपने आधीन किया जाय।

१६६७ तक शिवाजी ने दक्षिण को राजापुर और विजयदुर्ग से लेकर उत्तर में दमन तक का समुद्री किनारा, अपने आधीन किया। केवलमात्र बम्बई उसके आधीन न था। बीजापुर का सरदार फतह खां जंजीरा की संरक्षा कर रहा था। १६७० तक शिवाजी ने कईबार जंजीरा के किले को आधीन करने का यत्न किया परन्तु उसे सफलता नहीं हुई। यह किला बहुत मज़बूत था। अंग्रेज लोगभी चाहते थे कि आत्मरक्षा के लिए इस किले पर उनका अधिकार हो। १६७० में फतेहखां लाचार होकर क़िला छोड़ने को तय्यार होगया। परन्तु उसके नीचे काम करने वाले सम्बूल कासम और खैर्यत नाम के सरदार शिवाजी के जानी कट्टर दुश्मन थे। इन तीनों को फतेह खां का कार्य अच्छा नहीं लगा। तीनों ने फतेह खां को कैद किया। सम्बूल सबका मुखिया बना। जंजीरा उसके आधीन किया गया।

सम्बूल ने जंजीरा की रक्षा करने के लिए बीजापुर दरबारसे सहायता मांगी। वहां से सहायता न मिली, तब सम्बूल ने मुगल सरदारखां जहान की सहायता से शिवाजी का विरोध किया। सीदी लोग मुगलों की ओर से लड़ने लगे। औरंगजेब ने सम्बूल को याकुबखान की उपाधि दी। उपज मेंसे तीन लाख का मुल्क सीदियों को दिया। इस प्रकार औरंगजेब ने सम्बूल को को कृपा तथा अनुग्रह द्वारा अपने आधीनकर लिया और उसे शिवाजी के मुकाबले में खड़ा किया। मुगलोंकी जलसेना का सेनापति सम्बूल निश्चित हुआ। जंजीरा में कासम और राजपुरी में खैर्यत सम्बूल के सहायक निश्चित हुए। १६७७ में सम्बूलके मरनेपर कासिम मुख्य सेनापति बना और खैर्यत जंजीरे का सरदार बना। राजपुरी बन्दरगाह में शिवाजी की सेना का भारी प्रभाव था। जजीरा में मुगलों तथा सीदियों का ज़ोर था। एक दिन सीदियों ने बन्दरगाह में खड़े शत्रु के जहाजोंपर अचानक आक्रमणकर २००-३०० नाविकों को पकड़कर समुद्र में फेंक दिया। उस दिन से शिवाजी ने सीदियों से बदला लेने तथा उनका नाम मर्दन करने का दृढ़ निश्चय किया। शिवाजी ने ५० नये जहाज बनाये। शत्रुपक्ष में पारस्परिक लड़ाईमें सम्बूल मारा गया। इसने सेनापति बनते ही कई मराठों को यमलोक भेजा कइयो को कैदकर सूरत भेज दिया था। दोनों में अनेक स्थानों पर युद्ध हुए, इनमें सिदियोंको विजय लाभ हुआ। १६७१ की होलियों में सीदी कासम और खैर्यत ने शिवाजी के दंड-राजपुरी में आजाने पर उनपर गुप्तरूप से आक्रमण किया। आक्रमण के समय बड़ा भारी स्फोट हुआ, वहां से ४० मील दूर रायगढ़ में शिवाजी को वह शब्द सुनाई दिया।

राजपुरी में कोई न कोई अनर्थ हुवा है यह कहते हुए शिवाजी जाग उठा। अगले दिन मालूम हुआ कि अनुमान ठीक है। सीदियोंने राजपुरी आदि स्थानों पर अनर्थ मचा दिया था। बालबच्चों को गुलाम बनाकर कइयों को बेच देते थे, कईयों को जान से मार देते थे। इस समय शिवाजी औरंगजेब के साथ युद्ध में व्यग्र था। शिवाजी इस पराजय से घबराया नहीं। उसने निरन्तर मुकाबला करने के लिए अपनी जलसेना बढ़ाने की कोशिश

जारी रखी। सीदियों ने बम्बई के अंगरेजों को अपने साथ मिला कर मराठों को नष्ट करना चाहा। परन्तु अंगरेज लोग मराठों के प्रभाव के कारण उदासीन रहे।

बंबई बन्दरगाह के पूर्वीय किनारे के प्रदेश बहुत उपजाऊ और रमणीय हैं। इस प्रदेश का नाम कुर्ला था। यहां बम्बई के अंगरेजों का लेनदेन होता था। सीदी लोगों ने इस प्रदेश को लूटकर सर्वथा तहसनहस कर दिया था। शिवाजी ने अंग्रेज़ों के साथ मिलकर इस प्रदेश की रक्षा करने का निश्चय किया। १६७३ में सीदियों ने कुर्ला पर आक्रमण किया। शिवाजी ने अंग्रेज़ों को सावधान किया कि वे सीदियों को बम्बई बंदरगाह में न आने दें। १६७४ में अपनी जल सेना को एकदम आगे बढ़ाया और तत्काल रायगढ़ की ओर से दूसरी सेना सीदियों पर रवाना की। इस हल्ले में सीदियों के सैकड़ों आदमी मारे गए।

जंजीरा से लेकर गोवा तक का सारा प्रदेश मराठों की आधीनता में आगया, राजपुरी बन्दर भी मराठों ने फिर से जीत लिया। औरंगजेब ने सीदियों को पर्याप्त सहायता दी, परन्तु शिवाजी ने उनका पीछा कर उन्हें सूरत तक मारही भगाया। १६७६ में पेशवा मोरोपंत पिंगले ने जंजीरा के चारों ओर घेरा डाला, परन्तु पेशवा उसे अपने आधीन करने में कामयाब न होसका। इधर १६७७ में सीदी सम्बूल ने ब्राह्मणों पर अन्याय किया, शिवाजी इस अपमान को नहीं सह सकता था। सीदियों की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर उनका दमन करने के लिए १६७८ में शिवाजी ने समुद्र के बीच खांदेरी नाम का किला तय्यार कराया, मांडवगढ़ और खांदेरी में बड़ी भारी फौज तैनात की। इसी स्थान पर डटकर फिरंगियों का मुकाबला किया, देर तक लड़ाई होती रही कोई नतीजा नहीं निकला। इसी समय सीदियों ने भी १६७९ में राजपुरीसे सेनाकी सहायता लेकर खांदेरी के पास उंदेरी स्थान पर किला बनाया। रात को इस स्थान की सेनाके सहारे कुलावा या खांदेरी के गांवों को लूटना शुरु किया। अनर्थ मचा दिया, पूजा स्थान और मन्दिरों को तबाह कर दिया। शिवाजी ने किसी प्रकार—संधि आदि

द्वारा मामले को शान्त करना चाहा; परन्तु अन्त तक इसमें सफलता नहीं हुई। अलीबाग के समीप समुद्री किनारे पर १६७६ में नया किला बनाकर, उसे अंजीरे कुलावा का नाम दिया। रावर्ट आर्म्स ने भी लिखा है कि शिवाजी ने सीदियोंका दमन करने के लिए, अपनी जलशक्ति को बढ़ानेके लिए पर्याप्त कोशिश की। क्योंकि शिवाजी समझता था कि भविष्य में होनेवाले युद्धों में वही विजयी होसकेगा, जिसकी जलसेना पर्याप्त प्रबल होगी। वह अपनी शक्ति को जानता था, उसे मालूम था कि युरोपियनों के मुकाबले में भारतीयों की जलशक्ति कम है। शिवाजी इस आनेवाली आपत्ति से मराठीमंडल को बचाने की धुन में निमग्न था। जलशक्ति को संगठित किए बिना वह सीदियों को नहीं दबा सकता था—दूसरी ओर औरंगजेब ने शिवाजी को कर्नाटक में पहुंचा देखकर द्वितीय युद्ध जारी किया। शिवाजी ने अपने जीतेजी औरंगजेब की एक नहीं चलने दी, उसकी सेनाएं दक्षिण में सदा पड़ी रहीं तथापि निरन्तर दिनरात युद्ध के मैदानों में लगे रहने के कारण शिवाजी का शरीर थक चुका था, इस शारीरिक थकान को मानसिक चिन्ता ने और भी बढ़ा दिया।

इधर सम्भाजी के निन्दनीय व्यवहार के कारण उसे दिन प्रतिदिन महाराष्ट्र के भविष्य की चिन्ता सताने लगी। माता जीजा बाई जिसके सहारे शिवाजी बड़ी २ आपत्तियों में भी नहीं घबराया था; इस लोक से प्रयाण कर चुकी थी। इस प्रकार नई मानसिक चिन्ताओं ने शिवाजी को जीवनसे उदासीन कर दिया था। इसी समय रायगढ किले में घुटने में फोड़ा निकल आया। सात दिन तक बुखार रहा। आधियों का तो प्रकोप था ही व्याधि ने भी, निरन्तर अनथक परिश्रम के कारण थके हुए शरीर पर अपना जोर दिखाया।

आखिर १६८० शनिवार अप्रैल मास को मध्याह्नोत्तर के समय महाराष्ट्र के छत्रपति ने इस लोक से विदाई ली। वीर पत्नी पुतलाबाई सती होगयी। राजाराम ने मराठा सरदारों के साथ मिलकर देहान्त क्रिया की। सम्भाजी पन्हाला में था। चारों ओर शत्रु की प्रबल सेनाओं को

उठता देखकर यही उचित समझा गया कि इस अकाल मृत्यु को साधारण जनता पर एक दम प्रकट न कि। जाय। विदेशी तथा विपक्षी लोग देर तक यही समझते रहे कि शिवाजी कहीं अन्तर्धान होगया है। मृत्यु के समय शिवाजी के पास कोई योग्य व्यक्ति न था; । जिस को वह भविष्य में कैसे प्रबन्ध हो आदि के सम्बन्ध में सलाह या निर्देश देता। इस कारण राजधानी में गद्दी के लिए कई स्पर्धामय युद्ध हुए। खैर अन्त समय ऐसा ही होता है। बड़े २ विजेताओं की गति भी यही आकर रुक जाती है। बड़े बड़े साम्राज्यों को पलटने वाले मृत्यु के सामने हाथ बांधे खड़े रह जाते हैं। कहना चाहते पर कुछ नहीं कह सकते। जबान नहीं हिलती। लिखना चाहें तो लिख भी नहीं सकते। बस यह समय तो देखने का ही होता है। संसार से विदाई लेता हुआ आत्मा—अपने कर्मों को ही पीछे छोड़ जाता। वही कर्म--उसको तथा उसके यश को संसार के सामने रखते हैं। जीवनकाल में प्रतिस्पर्धी तथा--ईर्ष्यालु शत्रु प्रतिस्पर्धी के गुणों को जान बूझकर भुलाते हैं। परन्तु मृत्यु के बाद शत्रु मित्र सभी सचाई के सामने सिर झुकाते हैं। यद्यपि— शिवाजी का भौतिक शरीर आज इस दुनिया में नहीं है तथापि उनके कार्य उनका यश आज भी उसी तरह से जीवित जागृत है। क्या हुआ यदि शिवाजी अन्त समय में साम्राज्य रक्षा के लिए उचित सलाह नहीं दे सके ? उस एक क्षण में वे क्या २ कर सकते थे। जो कुछ करना था, कहना था, सुनना था—वह सब जीवनकाल में हो चुका था। अष्ट प्रधान जैसे संगठन को बनाकर उन्होंने मराठा जाति के स्वराज्य को स्थिर पाये पर खड़ा कर दिया था। शिवाजी ने अपने जीवन काल में जो संविधान बनाया वह इतिहास में अपनी सफलता तथा उपयोगिता के कारण सदा स्थिर तथा स्मरणीय रहेगा। आइए हम इस संविधान का बार बार मनन करें। इसमें शिवाजी की राजनैतिक चतुराई—बुद्धिमत्ता झलक रही है—शिवाजी द्वारा बनाए गए बड़े २ दृढ़ दुर्ग मट्टी में मिलकर नष्ट हो जायेंगे परन्तु जब तक इतिहास में यह संविधान रहेगा यह दुनिया के सामने शिवाजी की योग्यता को प्रकट करता रहेगा:—

(१९)

❀ शिवाजी विक्रमादित्य ❀

भारत में दो तरह के राजा हुए हैं। एक इस प्रकार के राजा जिन्होंने बिना किसी पराक्रम या शूरता के पितृवंश में क्रम प्राप्त राज्य प्राप्त किया हो। इसी प्रकार के राजा या राजवंश तभी उच्छिन्न होते हैं जब इनके वंशवृक्ष में व्यभिचार या अनाचार रूपी कीड़ा लग जाता है। इस प्रकार के क्रम प्राप्त राजाओं की स्थिरता का एक ही साधन है। वह यह कि ये अपने आचार को पवित्र रखें। सूर्यवंश तथा चन्द्रवंश के राजा इसी तरह के राजा थे। दूसरे ऐसे राजा होते हैं जिन्होंने अपनी तलवार के ज़ोर पर, अपने बल के भरोसे, युद्ध मैदान में पराक्रम दिखाकर शत्रुओं के सिरों पर बांया कदम रखकर अपना अभिषेक कराया हो। ऐसे राजा विक्रमादित्य कहलाते थे। ऐसे विक्रमादित्य राजाओं के अधःपात का कारण अभिमान होता है। पुराने राजघरानों के लोग इनसे ईर्ष्या करते हैं। वे जनता को नए राजाओं के विरुद्ध इनको भड़काते हैं। सेनायें ऐसे विक्रमशाली राजा के विरुद्ध सरदारों को बागी बनाते हैं। इनका दमन करने के लिये राजा लोग विशेष सेनाएें रखते हैं। विक्रम या पराक्रम के ज़ोरपर बने हुये राजा यदि अपनी स्थिति को सुरक्षित रखना चाहते हैं तो उन्हें चाहिये कि वे निरभिमानिता का जीवन व्यतीत करें।

भारतीय दन्त कथाएं बताती हैं कि उज्जैनी के विक्रमादित्य प्रतिदिन स्वयं सिप्रा नदी पर पानी लेने जाते थे। सादगी और निरभिमानता की शान्त तलवार ही महत्त्वकांक्षी व्यक्तियों को शान्त करती है। सिकन्दर नैपोलियन सीजर और भारत में मुसलमानी शासनकाल के बीसियों बादशाह इस बात के प्रमाण हैं कि नीचे काम करने वाले सरदारों ने किस प्रकार समय २ पर विद्रोह के झंडे खड़े कर, तख्तनशीन बादशाहों को गद्दीसे नीचे उतार दिया। शिवाजी भी विक्रमादित्य था। वह अपने पराक्रम से राजा बना था। गुरु रामदास ने उसे सफलता के इस मन्त्र की दीक्षा दी

थी। रामदास की शिक्षा के दो ही मुख्य तत्त्व थे। प्रथम राम की उपासना के लिये, अथवा राष्ट्रकी रक्षाके लिये व्यक्तिगत हितों और स्वार्थोंका त्याग। २. जो कुछ भी करना वह सब परमात्मा या राम के नाम पर करना। अपने आप को धर्मगुरु व इष्टदेव का मन्त्री समझना। अपने प्रत्येक कर्त्तव्य के लिये अपने आपको भगवान के सामने उत्तरदायी समझना। अर्थात् अपने से बड़ी शक्ति में विश्वास रखना। रामदास ने जिस शिक्षा का उपदेश दिया था वही भारतीय आर्यसभ्यता का आदर्श है। भारतीय राजा अनियंत्रित नहीं थे। धर्मरूपी दण्ड सदा उनके सिरपर जागृत रहता था। शिवा जी ने भी अपने समय में विक्रमादित्य की पदवी को धारण किया। उसने धर्मरूपी दण्ड को सहर्ष स्वीकार किया। मित्र शत्रु सबपर उसकी धाक थी। कई विरोधी शत्रुओं ने भी उसकी प्रशंसा की है उसके गुणों को स्वीकार किया है। शिवाजी अपने समय के राजाओं के मुकाबिले में आदर्श सदाचारी राय था। व्यसनों से वह कोसों दूर रहता था। व्यसनी कामी लोग उसके पास तक नहीं फटकने पाते थे।

वह व्यवहार कुशल और मधुर भाषण करने वाला था। आवाज़में ज़ोर था। चेहरे पर तेज था। गंभीरता की अपूर्व शोभा थी। संधि परिषदों में प्रतिद्वन्द्वी राजा उसकी बात सुनते थे, खेलकूद तथा आनन्द प्रसंगों में बाल सखाओंके लिये उससे बढ़कर रसीला हँसमुख दूसरा खिलाड़ी कोई न था। इन गुणों ने शिवा जी के अन्दर आकर्षण शक्ति का संचार कर दिया था। छोटे बड़े, अपढ़ और पठित, बाल वृद्ध सब उसीकी ओर खिंचे आते थे। शिवाजी आदमी को पहचानने में चतुर था।

प्रत्येक को उस की योग्यता के अनुसार उचित काम देकर वह अपने प्रेमपूर्ण व्यवहार से अपनालेता था। वृद्ध तथा अनुभवी विद्वान सदा शिवा जी के नम्र स्वभाव से मुग्ध हुये उसकी हितचिन्ता में लगे रहते थे। काम करने वाले सैनिक सेनापति के उत्साह भरे शब्दों को सुनने के लिये जी जान से काम करते थे। रत्नों का परखैय्या ही उनसे लाभ उठा सकता है। शिवाजी ने यही किया। शिवाजी महायोजक था, उसने योग्य

पुरुषों की उचित स्थान पर नियुक्तकर मराठा मंडल को स्थिर तथा सुरक्षित बना दिया।

शिवाजी की राजनैतिक योग्यता और धुरीणता में किसी को सन्देह नहीं। युरोपियन तथा आंगल ऐतिहासिक विन्सन स्मिथ तथा ग्राड डफ आदि ने शिवाजी को लुटेरा आदि की उपाधियां देकर हिन्दु जाति की राजनैतिक जागृति कालके गौरव को मन्द तथा धुंधला करना चाहा परन्तु महाराष्ट्रीय ऐतिहासिकों के अनथक प्रयत्न के कारण प्रतिदिन नई २ खोजें होती गई। जिनके कारण शिवा जी की राजनैतिक योग्यता दिन प्रतिदिन चमकने लगी। आखिरकार १९२१ में पूना शहर में ब्रिटिश साम्राज्य के मुकुटधारी सम्राट् के उत्तराधिकारी युवराज प्रिन्सआफवेल्स ने शिवाजी की योग्यता को खुले शब्दों में स्वीकार करके शिवाजी मेमोरियल (शिवाजी स्मारक) की आधार शिला रखी ।

कोई माने या न माने--१६८०-१८१८ तक का दक्षिण देश का इतिहास इसबातका साक्षी है कि शिवाजीने स्वराज्य स्थापनामें जो राजनैतिक योग्यता दिखायी है वह संसार के प्रसिद्ध महत्वा कांक्षी वीरों में से किसी 'किसी विरले में ही दिखायी देती है। सिकन्दर की विजय यात्रायोंने परशियन साम्राज्य को चकनाचूर कर दिया था और ग्रीकमें सिडोनियन साम्राज्य की नींव को भारतीय पांच नदियों के जलसे तथा भारतीय सेना के रक्त से सींचा। परन्तु इस प्रकार का रक्त सिञ्चित ग्रीस-मैसिडोनियन साम्राज्य सिकन्दर के साथ ही साथ पातालतल में विलीन होगया। सिकन्दर के साम्राज्य में इतनी जीवन शक्ति न थी कि वह अपने ज़ोर पर आप खड़ा हो सके। सिकन्दर ने मेसिडोनिया और एलोक्जौण्ड्रिया के निवासियों को विजय यात्राएं करायी परन्तु इन विजय यात्राओंके कारण निरंतर सिकन्दर की छत्रछाया में रहनेके कारण वे लोग शक्तिहीन पराश्रित होगए। सिकन्दर का हाथ पकड़ कर विजय यात्राएं करने वाले वीर उसकी अनुपस्थिति में उन विजय पताकायों को न संभाल सकें। परन्तु शिवाजी का रंग ही दूसरा था। शिवाजी कहीं पर हों १८१८ ई० तक मराठे का झंडा ठेठ उत्तर

अटक से लेकर दिल्ली आगरा तथा ठेठ दक्षिण तक फहराता रहा। सिकन्दर के पास पिता फिलिप की सेनाए थी-शिवाजी के पास जगली अशिक्षित मावलिए थे। शिवाजी ने अपने गुरू रामदास के सामने सिर झुकाने में अपना अहोभाग्य समझा, परन्तु वीर सिकन्दर ने शिक्षक गुरू द्वारा-राजनीति क्षेत्र में किएगए हस्तक्षेप को अनुचित माना। सिकन्दर के सरदार उससे वागी होगए। जिसने बड़ी २ सेनायों को क्षण भर में आधीन किया- वह अपने सरदारों को नहीं दबा सका। आत्म संयम और अहंकार के संग्राम में सिकन्दर पराजित हुआ, शिवाजी सब जगह विजयी हुआ। सीजर और नैपोलियन भी इतिहास के जगमगाते ज्योतिस्तम्भ हैं। दोनों ने अपने पराक्रम से अपना रास्ता साफ किया-दोनों ने अपना सिंहासन अपने हाथों सजाया। दोनों ने कुछ समय तक राजमुकुट को अपने सिरपर रखने में संकोच किया। परन्तु एकबार मुकुट रखा गया फिर किसी को उसे छूने नहीं दिया। राजाधिराजो से नाते जोड़कर, धर्माचार्यों को अपना अनुयायी बनाकर दोनों ने सांसारिक ऐश्वर्य की चरम सीमा तक पहुचकर अपनी महत्वाकांक्षा को पूरा करने में कमी नहीं की। फ्रान्स की जागृत प्रजा को साथ लेकर गद्दीधारियों को सिंहासनों से नीचे उतारना इतना कठिन नहीं था जितना कि महाराष्ट्र देश की बेमुख बिखरी निर्जीव प्रजा को साथ लेकर अपने समय के प्रसिद्ध बादशाहों को लड़ाई के लिए ललकारना। मुग़ल वंश के प्रसिद्ध बादशाह अकबर की नीति कुशलता और रण कुशलता में किसी को सन्देह नहीं परन्तु सरदारों का विद्रोह मुल्लायों का प्रकोप, और राजपूत "रमणियों की वीरता" अकबरकी लोकप्रियता में आज भी त्रुटि दिखा रही है। भारतीय इतिहास में गुरु गोविन्दसिंह और बाबर दो ही फकीर बादशाह हुए हैं। इन्होंने शिवाजी की तरह फकीरी बाने में रहकर-राजसिंहासनों की उथल पथल की। गुरू गोविन्द की बादशाहत देरतक नहीं चली-परन्तु बाबर और शिवजी की योग्यता,पर जब विचार करते हैं तो राजनैतिक दृष्टि से दोनों बराबर ही उतरते हैं। दोनों निराभमानी और नयी सल्तनत बनाने वाले दीन दुखियों के सहारे थे। केवल युद्धों में विजय हासिल

करना ही बादशाहों या राजाओं का काम नहीं-केवल दरबारों में ठाठ के साथ सिंहासन पर विराजमान होने से ही राजा की इति कर्तव्यता समाप्त नहीं होती-राजा का असली फर्ज प्रजा को अमन चैन प्राप्त कराना और उसकी सामाजिक दशा को सुधारते हुए विद्यादि प्रचार का प्रबन्ध करना है। अशिक्षित प्रजायें राजाओं के लिये बड़ी खतरनाक होती हैं। इसी प्रकार सामाजिक दृष्टि से छिन्न भिन्न राष्ट्र सदा असुरक्षित रहते हैं। शिवाजी निरन्तर युद्धों में लगा रहा। उसे इतनी फुर्सत नहीं मिली कि वह आजकल की सरकारों की तरह शिक्षणालयों का प्रबन्ध कर सके। यह भी ध्यान रखने की बात है कि आजकल के सरकारी शिक्षणालयों का तरीका भारत के लिए बिलकुल नया है। भारतीय सभ्यता का यह आदर्श नहीं कि शासकवर्ग प्रजा या जाति की शिक्षा का प्रबन्ध करे। भारतीय सभ्यता का तत्व यह है कि जाति की शिक्षा जाति के हाथ में हो। प्रत्येक समाज या सम्प्रदाय के धर्मिक नेतागण अपनी २ समाज को शिक्षित करें। हिन्दुओं के वानप्रस्थी, सन्यासी, मुसलमानों के पीर मौलवी अपनी स्वतन्त्र पाठशालायें में-शिक्षा-या विद्या प्रचार का काम करते थे। धर्म मन्दिर और धर्ममठ तथा चटशालाएं उस समय के मदरसे थे।

इस शिक्षा प्रचार में राज्य का हस्ताक्षेप नहीं था। बादशाह कोई हो चाहे हिन्दु हो या मुसलमान भिक्षुओं सन्यासियों और फकीरों की ग्राम पाठशालाएं सदा जारी रहती थी। राजा लोग राज कोष से सहायता देते थे, कभी विद्या मन्दिर बनवाते थे, कभी भूमि दान कर देते थे। शिवाजी ने भी अपने समय की प्रचलित प्रथा के अनुसार धर्म मंदिरों, देवस्थानों और मसजिदों की सहायता और हिफाजत करने में कमी नहीं की। शिवाजी के प्रबन्ध में क्या हिन्दु, क्या मुसल्मान—सब सम्प्रदायों के आचार्यों की जीविका के लिये उचित प्रबन्ध था।

इस प्रकार शिवाजी ने राष्ट्र को शिक्षित करने के लिए पर्याप्त प्रबन्ध किया था। सामाजिक ऊंच नीच तथा भेद भाव के भावों को दूर करने के

लिए भी शिवाजी ने कोई बात उठा नहीं रखी थी। सरकारी नौकरियां सब जातियों के लिए खुली थी। योग्य व्यक्ति को उचित सन्मान देने में किसी तरह का संकोच नहीं किया जाता था। इतना ही नही शिवाजी ने हिन्दू समाज को सामाजिक सुधारों की दृष्टि से जीवित जगृत बनाने के लिये पूरी कोशिश की।

हम शिवाजी के समय की एक घटना का उल्लेख करते हैं जिससे स्पष्ट हो जाएगा कि शिवाजी तथा उसके सहकारी--कितने उदार हिन्दु थे। आज कल देश में शुद्धि का प्रश्न बड़े ज़ोर से उठ रहा है। कट्टर राष्ट्रवादी हिन्दू और कट्टर मुसलमान इस आन्दोलन के विरोधी हैं। धार्मिक सहिष्णुता के सिद्धांत के मानने वालों के लिए यह ऐतिहासिक दृष्टांत इस बात के लिए पर्याप्त प्रमाण होगा कि समय तथा आवश्यकतानुसार-समाज तथा राष्ट्र हित की दृष्टि से शुद्धि करना ठीक है।

शिवाजी के समय दक्षिण में कर्नाटक की ओर बजाजी निंबालकर नाम का मराठा सरदार रहता था। बीजापुर की आदिलशाही के बादशाह ने मौका देखकर इस सरदार को कहा कि वह या तो मुसलमान बन जावे, नहीं तो उसकी सारी जागीर तथा अधिकृत देश छीन लिया जाएगा। निंबालकर अपने परिवार की अवस्थाओं से लाचार था उसने इस ख्याल से मुसलमान बनना स्वीकार किया। कुछ समय बाद यही सरदार शिवाजी के दरबार में पहुंचा। जीजाबाई को इस बलशाली अनुभवी सरदार के आने की सूचना मिली। उसने दिल में सोचा कि इस बलशाली सरदार को मराठा मंडल से अलग नहीं होने देना चाहिए। शिवाजी के शत्रु प्रबल हैं अतः इसे फिर से शुद्ध कर लेना चाहिये। सरदारों से सलाह की। सबने सरदार को फिर से हिन्दू बनाने की अनुमति दी। नियत समय पर शुद्धि होगयी। जीजाबाई समझती थी कि केवल शुद्धि संस्कार से कोई फायदा नही। विवाह सम्बन्ध भी होना चाहिए। जीजाबाई ने किसी और को इस कार्य के लिए प्रेरित न कर शिवाजी की लड़की, सम्भाजी की बहन

सुखूबाई का बजाजी निंबालकर के लड़के महादाजी के साथ १६५७ ई० में विवाह कर दिया। इसके बाद किसी ने किसी प्रकार की आपत्ति नहीं की।

इस प्रकार शिवाजी के घराने ने अपनी मिसाल से लोगों के सामने सामाजिक सुधार का मार्ग खोल दिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि शिवा जी ने क्या धार्मिक, क्या राजनैतिक और क्या सामाजिक सब प्रकार के सुधारों को प्रचलित करने में किसी तरह का संकोच नहीं किया।

वही राजा सफल हो सकता है जो सब प्रकार की उन्नति में प्रजा हाथ बटाए। शिवाजी ने गुरु रामदास के चरणों में बैठकर धर्म भक्ति के प्रभाव से धर्म मंदिरों का द्वार सबके लिए खोल दिया। धर्म के मामले में जन्म की ऊंच नीच के भाव नष्ट होगए। राजनैतिक सुधारोंके कर्ताधर्ता शिवाजीने राष्ट्र की इच्छा पूरी की। लोगों को स्वराज्य प्राप्त कराया। इस प्रकार राष्ट्र को स्थिर पाए पर खड़ा किया।

द्वितीय परिच्छेद

पिञ्जर-बद्ध केसरी

छत्रपति शिवाजी का देहावसान हो चुका था। शिवाजी ने मराठा मंडल का संगठन तो किया था, परन्तु इस विषय में कोई निश्चय नहीं हुआ था कि उनके पीछे राजसिंहासन पर कौन बैठे। शिवाजी ने अपने जीवन काल में, अनेक विजय यात्राओं में अपने बड़े लडके सम्भाजी को योग्य बनाने के लिए अपने साथ रखा। शिवाजी के शौर्य, वीरता, सहनशीलता आदि दिव्य गुण सम्भा जी में पूर्णरूप से विद्यमान थे। परन्तु सम्भाजी की लम्पटता अथवा स्त्री व्यसनिता का अवगुण उसके सब गुणों को बेकार बनाने वाला था। अन्तकाल में उसकी विजययात्राओं को इस व्यसन ने ही कलंकित किया था। शिवाजी ने सम्भाजी को बहुत वार समझाया। सम्भाजी इस दुर्गुण को न छोड़ सका। यह दोष सम्भाजी के जीवन में कलक रूप था। इस दोष ने ही मराठा मंडल के नक्षत्र मंडल में चन्द्रस्थानीय महाराज छत्रपति को कलंकित किया। शिवाजी ने अपने जीवन काल में अपनी तथा मराठा मंडल की प्रतिष्ठा को निष्कलंक रखने के लिए अपने सामने पुत्र की इन कुचेष्टाओं को दूर करने के लिए विश्वासी आदमियों के निरीक्षण में उसे पन्हाला किले में रखा। व्यसनी शेर की पाशविक वृत्तियों को दूर करने के लिए उसे पन्हाला किले में बन्द किया।

शिवाजी अच्छी तरह समझता था कि औरंगजेब को जीतने के लिए, उसकी चालबाजियों से स्वराष्ट्र को बचाने के लिए, केवलमात्र बड़ी सेनाओं की ही आवश्यकता नहीं; अपितु निर्व्यसनिता तथा सावधानी की बड़ी जरूरत है। औरंगजेब ने अपनी इस निर्व्यसनिता के जोर पर ही सगे भाइयों को पराजित किया था। वह आठों पहर जागकर शत्रु को अपने

जाल में फंसाने की कोशिश करता था। औरंगजेब भी जानता था कि शिवाजी के जीते जी वह दक्षिण में अपना प्रभाव नहीं जमा सकता था। अत: वह भी उस दशा की वाट जोह रहा था जब शिवाजी का देहांत हो और सम्भाजी राजसिंहासन पर बैठे। शिवाजी तथा मराठा मंडल के दूरदर्शी राजनीतिज्ञों की यही इच्छा थी कि सम्भाजी अपनी विषयव्यसनिता को छोड़कर उनका नेता बने। परन्तु उनकी यह इच्छा पूरी नहीं हुई। कुछएक लोगों ने मराठा मंडल को, सम्भाजी के कारण आनेवाली आपत्ति से बचाने के लिए, शिवाजी के छोटे लड़के राजाराम को राजसिंहासन पर बैठाने की कोशिश की। सम्भाजी पन्हाला में बंद था। राजाराम तथा उसकी मंडली के लोगों ने इस समाचार को संभा जी से छिपाना चाहा। परन्तु यह असम्भव था। मृत्यु का समाचार सम्भाजी को मिला। वह एकदम अपने इष्ट साथियों के साथ रायगढ़ पहुंच गया। उसने अपने अधिकार को प्रकट किया। विरोधियों तथा विपक्षियों का दमन किया। राजसिंहासन को अपने आधीन किया। अपने विश्वासी आदमियों को ऊंचे २ पदों पर नियुक्त किया।

राजाराम की मंडली ने शिवाजी की मृत्यु के डेढ़ महीना पीछे राजाराम को गद्दी पर बैठा दिया। परन्तु इस मंडली ने साधारण प्रजाजन को संतुष्ट करने के लिए विशेष यत्न नहीं किया। महत्व पूर्ण स्थानों पर अपना विशेष जमाव नहीं किया। सम्भा जी ने पन्हाला किले में जनार्दन पंत इत्यादि विपक्षी लोगो की, गुप्तचरों के नाम लिखी चिट्ठियों को बीच में पकड़ लिया। गुप्तचरों को सामने बुलाकर उनसे ठीक २ समाचार मालूम किए। पन्हाला किले को अपने आधीन कर वहां अपना प्रबन्ध किया। सम्भा जी ने कोल्हापुर के समीप जनार्दन पंत सुमंत के डेरे पर छापा मारा और उसे कैद किया। हमीरराव मोहिते, सेनापति सुमंत की पराजय का हाल सुनकर संभाजी के साथ मिल गया। दोनों ने रायगढ़ की ओर कूच किया। मोरोपंत पिंगले मुकाबला करने के लिए आरहा था, वह भी संभाजी के साथ मिलगया। इस प्राकार स्वपक्षको प्रबलकर संभाजीने रायगढ़ किलेमें प्रवेश किया। वहां प्रवेश करते ही राजाराम के मुख्य सहायक अण्णा जी दत्तो आदि को

सम्पत्ति को जब्त किया, राजाराम को कैद किया, तथा १५, २० आदमियों का घात किया। लगतेहाथ सोपरावाई (शिवाजी की धर्मपत्नी) के पास पहुंचकर उसपर पति को विष देनेका दोष लगाया। सोपरावाई को दीवारमें चुनवा दिया। उसे अन्नपानी कुछ नहीं दिया गया। तीन दिन बाद उसका देहान्त होगया। १६८१ ई० के फर्वरी मास में सम्भा जी का अभिषेक संस्कार हुआ। संभाजी के दरबार में औरंगजेब का लड़का अकबर बाप से बिगड़कर आया हुआ था। संभा जी ने उसे रायगढ़ में टिकाया। वहां राजाराम की मंडली के कुछ एक लोगों ने संभा जी के विरुद्ध अकबर को षड्यन्त्र रचने के लिये प्रेरित किया। सम्भाजी को यह बात पता लगी। इस घटना से उसके दिलमें यह बात बैठ गयी कि शिवाजी के समय के पुराने कार्यकर्ता हमारे विरुद्ध हैं। इसलिए अपनी स्थिति को सुरक्षित करने के लिए उनका शरीरान्त करना आवश्यक समझा गया। अराणाजी दत्तो तथा बाला जी आवजी जैसे पुराने अनुभवी सेवकों को हाथी के पैरों से रुंदवाकर मरवा दिया। अनुभवी अराणाजी के मारे जाने से मराठामंडल में सनसनी फैल गयी। सम्भाजी का पुराने आदमियों के प्रति अविश्वास दिन प्रतिदिन बढ़ता गया।

बाला जी आवजी ने सम्भाजी को राजगद्दी पर बैठाने के लिए पूरा सहयोग दिया था परन्तु अन्य आदमियों की बातों में आकर उसका भी घात कराया। संभाजी की इस घातक प्रवृत्ति को उसकी धर्मपत्नी येसूबाई ने रोका। जिस प्रकार मुगल इतिहास में नूरजहां ने जहांगीर की बुरी प्रवृत्तियों का नियन्त्रण किया था उसी प्रकार येसूबाई ने सम्भाजी को घातक पापों से बचाया। येसूबाई का चरित्र महाराष्ट्र इतिहास में सुवर्णाक्षरों में लिखा जाएगा। इस सच्चरित्र महिला के सामने संभाजी दबता था। यह महिला पिलाजी शिर्के वंशकी थी। दिल्लीसे लौटते हुए १६६७ ई० में संभाजी ने इसके साथ विवाह किया था। इसी का लड़का शिवाजी शाहू व छत्रपति के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध हुआ है। संभाजी के शासनकाल के प्रारम्भ में महाराष्ट्र पर एक भयंकर वज्र टूट पड़ा। महाराष्ट्र मंडल के कल्पक संस्थापक रामदास स्वामी १६८२ ई० के फर्वरी मासमें इस दुनिया

से चल बसे। इनकी शिक्षाओं का ही प्रभाव था कि सारा मराठा मंडल एक सूत्र में ग्रथित होकर स्वदेश की रक्षा कर रहा था।

मराठा मंडल पर से रामदास का हाथ उठना था कि उनमें राक्षसी प्रवृत्तियों का अधिकार बढ़ने लगा। इस समय मराठा मंडल की स्थिति बड़ी नाजुक थी। छत्रपति सम्भा जी की चढ़ती जवानी थी। सम्भा जी कार्यक्षेत्र में नया था। उसने उत्तरदायिता के बोझल को पहिले कभी नहीं उठाया था। पुराने अनुभवी सरदारों पर उसे विश्वास नहीं था। शाहज़ादा अकबर को दक्षिण में गया देखकर औरंगजेब अपनी सेनायें लेकर महाराष्ट्र में आ पहुंचा। पुर्तगीज लोग मौका देखकर कभी मुगलों के साथ; कभी मराठों के साथ मिलकर महाराष्ट्र मंडल में प्रवेश करने की कोशिश कर रहे थे।

पश्चिमी तट के सीदी लोग मुगल बादशाहों की सहायता से मराठी सेनाओं तथा प्रजाओं को हैरान कर रहे थे। औरंगजेब ने बीजापुर तथा गोलकुंडा व आदिलशाही तथा कुतुबशाही को तहस नहस कर कर्नाटक में भी अपनी सेनायें भेजकर वहां के मराठा शासन में खलल मचाने में कमी नहीं की। मराठा मंडल में धीरे २ अन्तःकलह बढ़ रहा था। इस विपरीत स्थिति में, अन्दर बाहर चारों ओर शत्रुओं से घिरे हुए, सभांजी ने जो कुछ किया वह सराहनीय ही नहीं, अपितु इतिहास में अद्वितीय है। संभाजी में कितने ही दोष हों—परन्तु यह कहने में तिल मात्र भी संकोच नहीं कि संभाजी ने अपने जीतेजी मराठा मंडल के भगवे झंडे को गिरने नहीं दिया, और मराठा शक्ति की आन में वट्टा नहीं लगने दिया। संभाजी ने अपने उत्तरदायित्व को समझा और इसी राष्ट्रीय कर्तव्यकी लगनमें उसने सब व्यसनों को कुछ समय के लिए तिलाञ्जलि दी। शत्रुओं की भारी संख्या थी, लड़ाई चौमुखी थी, संभाजी को दम लेने तक की फुर्सत नहीं थी अपने व्यसनों की चाहको पूरा करने की तो क्या होनी थी? संभाजीने अपने ९ वर्ष के शासनकाल में स्वदेश में शत्रुओं का पैर नहीं जमने दिया। मरते दम तक छत्रपति के राजकीय तेज को मन्द नहीं होने दिया, संभाजी ने पिता के पद चिन्हों पर चलते हुए भवानी की पूजा करने में कोई कसर नहीं की।

(२)

❀ संभाजी की विजय यात्रा ❀

शिवाजी ने अन्तिम समय सीदियों को पराजित करने का निश्चय किया था, वह इसमें सफल न हो सका था। संभाजी ने अपनी जलसेना को बढ़ाकर १६८१ ई० के लगभग सीदियों पर आक्रमण किया। कई जगह शत्रुको पराजित भी किया-परन्तु १६८२ में औरंगजेबने उत्तर की ओर से मराठी सेनापर आक्रमण किया। साथही उसने सीदियों को जलसेना-बढ़ाने के लिए सहायता दी। अंग्रेज और पोर्चुगीज लोगों ने भी अप्रकटरूप से मराठों के शत्रुओं को सहायता दी। संभाजी ने अंगरेजों के वकील के साथ रायगढ़ पर १६८२ में व्यापारी संधि की। औरंगजेब ने पोर्चुगीजों को मराठा राज्य लूटने की खुली छुट्टी दे दी। औरंगजेब का लड़का अकबर इरान जाना चाहता था। उसने गोवाकी खाड़ीमें जहाज खरीदनेका प्रबन्धकिया। लड़ाईकी तय्यारी करने के लिए संभाजी ने अकबर के साथ अपने गुप्तचर भेजने शुरु किए। मराठे गुप्तचरों ने पोर्चुगीजों को अपने जाल में फंसाना चाहा। पोर्चुगीज लोग धन प्राप्ति की आशा से गोवा खाड़ी को छोड़कर फोंड़ा की ओर बढ़े। संभाजी ने फोंडा पर एकदम आक्रमण कर पोर्चुगीजों को स्तम्भित किया। पोर्चुगीज सेना के अनेक लोग मारे गए, वे लोग मराठों के सामने देर तक नहीं टिक सके। संभाजी के साथ संधि करने के लिए पुर्त्तगीजोंने मनरो नामके दूतको भेजा। संभाजी ने दूतको अपनी तलवार दिखाकर कहा कि इस भवानी तलवारको याद रखो। मैंने इस तलवार द्वारा ही अपने विद्रोही सरदारों का शिरश्छेद किया था। मेरे इस विश्वसनीय दूत को अपने साथ लेजाओ, गोवा में संधि की शर्तें निश्चित करो। परंतु सन्धि की शर्तें निश्चित नहीं हुईं। संभाजी ने फोंडा में अपना किला बनवाया। गोवा के उत्तरी प्रदेशों को लूटा। इधर औरंगजेब का ज़ोर बढ़ रहा था। संभाजी उधर झुका, पोर्चुगीज अपने षड्यन्त्रों में सफल न होसके। औरंगजेब दिल्ली में बैठकर, दक्षिण में सेनापतियों द्वारा अपना प्रभाव

जमाना चाहता था परन्तु उसे सफलता प्राप्त नहीं हुई। आखिर १६८१ ई० में वह स्वयं अपने पुत्रों के साथ बड़ी भारी सेना लेकर दक्षिण में आया। बागलाण के मैदानों में प्रत्यक्ष मुकाबले में मराठों की सेना पराजित हुई परन्तु जंगलों और पहाड़ियों में छिपे हुए मराठों ने छापे मार कर अजीम की सेना को हैरान कर दिया। बादशाह ने अजीम को दिल्ली बुलाकर शाहबुद्दीन खां को उधर भेजा। इधर बागलाण की पराजय का हाल सुन कर संभाजी स्वयं सेना लेकर उधर बढ़ा। रामसेज के किले पर मुगल पराजित हुये। उत्तर दिशा में मुअज्जम ने कल्याण प्रांत में संभा जी को तंग करना शुरू किया। मुगलों की इस सेनाके लिने सूरतकी ओर से रसद आरही थी।

मराठों ने पोर्चगीजो के साथ मिलकर जहाजों को लूटा। औरंगजेब ने मुअज्जम को इस अड़चन से बचाने के लिए, मराठों को तंग करने के लिए, इसी प्रांत में रणमस्तखान और रणादुल्ला खां को भेजा।

सम्भाजी ने विजली की तरह एक दम उन पर धावा कर खज़ाना और रसद लूट ली। कोंकण से लौटती हुई मुअज्जम की सेना में बीमारी फैल गई। औरंगजेब ने मुअज्जम की सेना को बचाने के लिए सरदारों को भेजा; और स्वयं अहमदनगर पहुंच गया। मुअज्जम १६८४ ई० में कृष्णा नदी के किनारे पड़ा रहा। शत्रुओं से घिरे हुए सम्भाने १६८५ ई० में वहां पहुंच कर शहर को लूटा। रायगढ के राजकोष को परिपूर्ण किया।

मुगलों की शक्ति का केन्द्रस्थान बन्हाणपुर था। संभाजीने १६८५ ई० के शुरू मेंही १० हजार सेना भेजकर बन्हाणपुर तक का प्रदेश अपने आधीन किया। औरंगजेबने बहादुरखानको इस मराठी सेनाका पीछा करनेके लिए भेजा। कामबख्श औरंगजेब का लाड़ला पुत्र था। कामबख्श युद्ध के मैदान में घबरा गया। सेना में खलबली मच गई। माराठों ने चारों ओर से लूट मचा दी। मराठामंडल ने विजय लक्ष्मी के साथ २ सम्पति को भी प्राप्त किया। औरंगजेब निराश होकर विजापुर और गोलकुंडा की ओर झुका। १६८६ और १६८६ ई० में दोनों राज्य मुगल बादशाही में मिला

लिये गए। औरंगजेब उत्तर मराठा मंडल में सफल नहीं हो सका। इन दोनों राज्यों को जीतकर उसने कर्नाटककी ओर अपनी सेनाओं की बागडोर मोड़ी। १६८९ ई० में वाईकी लड़ाईमें मराठोंका अनुभवी सेनापति हंबीरराव मारा गया। इस सेनापति ने निस्पृहभाव से शिवाजी तथा संभाजी के समय किसी पार्टी में शामिल न हो कर महाराष्ट्र के यश को उज्ज्वल किया। कर्नाटक को मुगलों के आक्रमण से बचाने के लिये मोरोपन्त और संताजी घोर पडे को १० हजार सेना लेकर जिंजी की ओर भेजा। देर तक लड़ाई होती रही। यदि संभाजी इधर सेना न भेजता तो बहुत सम्भव था कि व्यंकोजी के उत्तराधिकारी, वीजापुर के मुगल सरदारों के प्रभाव में आजाते।

औरंगजेब ने अपनी सेना को लौटा लिया। उत्तर महाराष्ट्र में संभाजी विशालगढ़ और पन्हाला किले के बीच में था। वहीं से वह शत्रु की गति को रोक रहा था। इधर मुगलों की लौटती सेना को मराठों ने उद्ध्वस्त किया। कर्नाटकमें मराठों की पताका फहराती रही। कोंकण के प्रदेश में औरंगजेब ने कई वार पन्हाला किले को घेर कर संभाजी को पराजित करना चाहा, परन्तु वह इसमें सफल न हो सका। सभाजी अपनी सेनाओं की विजय यात्रायों का समाचार सुनकरे निश्चिन्त हो पन्हाला तथा विशालगढ़ के वीच संगमेश्वर स्थान पर टिका हुआ था। औरंगजेब को जब यह मालूम हुआ तो उसने मुकर्रवखान को हजार सवारों के साथ संभाजी को कैद करने के लिये भेजा। संभाजी के गुप्तचरों ने मुकर्रवखान के आने का समाचार संभाजी तक पहुंचाया। संभाजी ने इस पर विश्वास नहीं किया। मुकर्रवखान, सेना के बडे भाग को पीछे रख कर २०० आदमियों के साथ आगे लेकर बढ़ा। संभाजी के कृपापात्र कलुशाने खान का मुकाबला किया। कलुशा की दायी वाहू पर तीर लगा। संभा जी उसकी सहायता के लिये आगे बढ़ा। कलुशा तो कैद हो गया। संभाजी देवमन्दिर में छिप गया। मराठों ने पन्हाला किले को बचाना चाहा परन्तु मुगलोंकी बड़ी सेना के सामने वे न टिक सके। संभा जी सपरिवार शत्रुके हाथमें पकड़ा गया।

राजा राम का परिवार भी वहीं था। संभा जी को हाथीपर बैठाकर मुकर्रव खान शोलापुर की छावनी में पहुचा। संभा जी ने औरंगजेब की शरण में जाना स्वीकार नहीं किया। कलुशा का शिरच्छेद किया गया गया। संभा जी को मुसलमान बनने के लिए कहा गया। उसने जवाब दिया "अपनी लड़की मुझे व्याह दो"। औरंगजेब यह सुनकर जलकर राख होगया। औरंगजेब ने संभाजी की आंखें तथा जीभ निकलवा दी। संभाजी ने इन सब कष्टों को धैर्य पूर्वक सहा परन्तु मुसलमान होना स्वीकार नहीं किया। यदि सम्भाजी निराव्यसनी ही होता तो वह अपनी व्यसनिता की चाह को पूरा करने के लिए धर्म छोड़ने में संकोच न करता। संभाजी ने अपनी इस अतुलनीय सहनशीलता से औरंगजेब को बता दिया कि हिन्दु व्यसनी होता हुआ भी केवलमात्र काम वासनायों को पूरा करने के लिये स्वजातीय अभिमान को नहीं छोड़ सकता।

औरंगजेब ने मराठा मण्डल पर अपना आतंक जमाने के लिये संभा जी का अंग छेद किया था, परन्तु इस घटना ने संभाजी को मराठा जाति का शहीद बना दिया। मराठा मंडल ने अपने राजा के रक्तपात का वदला लेने का दृढ़ निश्चय किया। सबने तुच्छ भेदभावों को छोडकर इस जातीय अपमान का बदला लेने का प्रण किया। इस भयंकर अत्याचार के कारण कम्पित, मराठा मण्डल ने एक स्वर होकर औरंगजेब के विरुद्ध युद्ध का शंख बजा दिया।

—:०:—

(३)

❋ अदम्य देशभक्त ❋

सम्भाजी का बध करके औरंगजेब रायगढ़ की ओर बढ़ा। रायगढ़ में पेशुवाई राजपरिवार के साथ सुरक्षित थी। सम्भा जी के समय, उनके जीवन के काल में, महाराष्ट्र में अन्तःकलह की आग सुलगनी शुरू हुई थी। परन्तु औरंगजेब के अत्याचारों ने उन्हें सावधान किया और

सुझाया कि यदि अपने राष्ट्र की रक्षा करनी है तो पारस्परिक ईर्ष्या और अविश्वास के भावों को दूर करो। इस नये संकट ने मराठों में फिर से राष्ट्र भक्ति के भावों को संचारित किया। रायगढ़ किले में राजाराम येसूबाई तथा अन्य मराठे सरदार एकत्रित थे। सम्भा जी का लड़का शिवजी व शाहूजी भी उपस्थित था। परन्तु वह अभी बालक था। राज्य जैसे गुरुतर कार्य को वह संभाल नहीं सकता था।

येसूबाई ने एकत्रित मण्डली को इस प्रकार सम्बोधित किया:— "तुम सब सरदारों को चाहिये कि राजाराम को अपना नेता स्वीकार करो। उसकी अध्यक्षता में रायगढ़ किले से बाहर निकल जाओ। बाहर जाकर औरंगजेब की सेना को पराजित करो। मैं अपने पुत्र के साथ यहीं रहूंगी। जब तुम लोग किसी दूसरे स्थान में छत्रपति के सिंहासन को सुरक्षित कर लोगे तो मैं भी आ जाऊंगी। वीरो! पारस्परिक द्वेष भावों को छोड़कर मातृभूमि की आन को सुरक्षित करने के लिये दृढ़ निश्चय के साथ वीरों का बाना पहिनो। जान पर खेल जाओ।" इस प्रकार का सन्देश देने वाली माताएं ही राष्ट्र माताएं कहलायी जा सकती हैं। अपने आपको आपत्ति में डालकर, रक्षकों को राष्ट्र रक्षा के लिये भेजने वाली वीर माताएं जब इस देश में फिर से जन्म लेंगी, तभी यहां स्वराज्य और राम राज्य का सुख स्वप्न पूरा हो सकेगा। राजाराम ने माता के आदेश को सिर माथे किया और कहा:—

"राज्य का अधिकारी शिवजी है। मैं उसका प्रतिनिधि होकर राष्ट्र को शत्रुओं के आक्रमण से बचाऊंगा। आप लोग मेरी आज्ञा के अनुसार चलते हुये विशेष पराक्रम के साथ औरंगजेब को जीतने में पूर्ण सहयोग दें। वीर पुत्र ने वीर माता के सामने सिर झुकाया। पराक्रम और विनय के पवित्र संगम में उपस्थित सरदारों ने स्नान किया। सबने देशभक्ति की गंगा में स्नान कर स्वर्ग यात्रा की तय्यारी शुरू की; और यह निश्चय किया कि या तो पापी अत्याचारी का दमन कर इस भूतल पर स्वर्गीय राज्य को स्थापित करेंगे अथवा सीधे भवानी

की अर्चना करते हुये स्वर्गधाम पहुंचेंगे। मरेंगे--या मारेंगे--राष्ट्र-शत्रु का नाश किए बिना न लौटेंगे। इस दृढ़ निश्चय के साथ सब सरददारों ने रायगढ़ से प्रस्थान किया। येसूबाई अपने पुत्र के साथ वहीं रही। राजाराम के परिवार को विशाल गढ़ के किले में भेज दिया। रायगढ़ का किला शिवाजी के अजेय दुर्गों मेंसे एक था, शत्रु इसमें सुगमतासे प्रवेश नहीं कर सकता था। मराठे वीरोंने प्रल्हाद निराजीके नेतृत्व में १० महीने तक मुगलों की दाल नहीं गलने दी। मुगलों का सेनापति इत्तिकादखान निराश हो गया। आखिर मुगल सरदार ने सूर्याजी पिसाडनाम के देशमुखी सरदार को वाई की देशमुखी देनेका वचन दिया। उसने किले के दरवाजे खोल दिये। शत्रु किले में घुस गए। येसूबाई इस घटना से ज़रा भी नहीं घबराई। खानने रायगढ के छत्रपति के सिंहासन को टूक टूक कर दिया। सम्पत्ति लूट ली। येसूबाई को पुत्र के साथ औरंगजेब के सामने पेश किया। सूर्याजी पिसाड़जी भी दरबार में लाया गया। औरंगज़ेब के कहने पर वह मुसलमान बन गया। परन्तु उसके परिवार के अन्य लोग आजतक हिन्दू हैं। उसे वाई की देशमुखी मिलगयी। इस राष्ट्र द्रोही धर्म भ्रष्ट सरदार के कारण येसूबाई तथा शिवजी व साहूजी १६ साल तक बादशाह के दरबार में नजर बन्द रहे। औरंगज़ेब की बड़ी लड़की रौशनआरा की शिवाजी के वंशजों परे विशेष प्रीति थी। येसूबाई तथा उसके पुत्र के लिए इस बेगम ने सब सहूलियतें उपस्थित करने में कोई कमी नहीं की। बादशाह की कैद में रहकर भी येसूबाई ने राजाराम के साथ पुत्र व्यवहार जारी रखा। शिवाजी के समय के भक्ताजी हुलरे और बंकी गायकवाड़ नाम के दो विश्वस्त सरदारों द्वारा येसूबाई राजाराम तक अपना सन्देश पहुंचाती रही। वीरमाता ने अपने सतीत्व की रक्षा करते हुए राष्ट्र की रक्षा करने में पूरा सहयोग दिया। लंका में राक्षसों से घिरी हुई सीता देवी की तरह येसूबाई ने भी आर्यजाति की महिलाओं के यश को अधिकाधिक उज्जवल किया। औरंगजेब ने इस नजरबन्द राजपरिवार के द्वारा कई बार मराठा मण्डल में अशान्ति पैदा करनी चाही परन्तु वह इसमें सफल न हो सका। औरंगज़ेब की उमड़ती हुई सेनाओं

को रोकने के लिए--मराठे वीरों ने कमाल कर दिया। महाराष्ट्र में रामचन्द्र पंत को नियुक्त किया गया। राजाराम कर्नाटक की ओर चला गया जिंजी में राजधानी स्थापित की। औरंगजेब ने कर्नाटक जीतने से पहिले महाराष्ट्र को जीतने का संकल्प किया। रामचन्द्रपन्त औरंगज़ेब की इस चाल को ताड़ गया। उसने विशालगढ़ आदिका पक्का प्रबन्ध किया। कोंकण प्रान्त में मोर्चा बन्दी कर, पहाड़ी जंगलों तथा गुप्त स्थानों में मराठा मण्डलियों को टिका कर गनिमी आक्रमणों द्वारा मुगल सेना को महाराष्ट्र में टिकने नहीं दिया। मध्य दक्षिण में सन्ता जी घोरपड़े और धनाजी जाधव ने छापे डालकर औरंगज़ेब के सरदारों को हैरान कर दिया। मावले लोग फिर से पहाड़ों में से नीचे उतर मराठी सेना में भर्ती होने लगे। मुगलों के बीसियों किले सर कर लिए गए। इसी समय एक नई अड़चन पैदा होगयी। राजाराम की स्त्री तारावाई विशालगढ में थी। १६६१ ई० में उसके शिवाजी नाम का पुत्र पैदा हुआ।

येसूवाई को जब यह समाचार मिला तो उसने राजाराम को कहला भेजा कि तुम अपने परिवार को विशालगढ़ से हटाकर जिंजी लेजाओ। हमलोग पता नहीं कब छूटें। तुम राजचिन्ह धारण करो। छत्रपति के राजछत्र की रक्षा करो। पर प्रश्न यह था कि तारावाई को जिंजी कैसे पहुंचाया जाय। सारे महाराष्ट में मुगल सेनाओं का जाल बिछा हुआ था। आखिर निश्चय किया गया कि तारावाई को राजपुरी की ओर से समुद्र द्वारा जिंजी पहुंचाया जाय। सारी मंडली यशवन्तगढ़ के बन्दरगाह से होकर जिंजी पहुंच गयी। राजाराम की द्वितीय स्त्री राजसबाई के एक सन्तान हुई। राजाराम रायगढ़ से बाहर निकला। रायगढ के नीचे पन्हाला और विशालगढ के मध्य में सब मराठे सरदार एकत्रित होने लगे। बादशाह ने मराठा शक्ति को छिन्न भिन्न करने के लिए पन्हाला की मराठी सेना पर आक्रमण करने के लिए सेनाएं भेजी। मराठों ने बादशाह की सेना का प्रत्यक्ष मुकाबला नहीं किया। अपितु छापे डालकर उन्हें हैरान किया। खाफीखान लिखता है कि धनाजी जाधव और सन्ताजी जाधव

ने मुगल सेना में तबाही मचादी। इस्माईलखां, सर्जेखान जैसे अभिमानी मुगल सरदारों को सन्ताजी ने कैद किया और जमानत लेकर उनका गर्वगलित किया। कर्नाटक के सीमान्त पर निसीरखां और तुहव्वरखान सरदारों का भी सन्ताजी ने पराभव किया। रायगढ में औरगजेब की शक्ति को कम करने के लिए सन्ताजी ने बादशाह की छावनी पर भी छापा डाला। धनाजी जाधव के २ हजार सिपाहियों को साथ लेकर सन्ताजी तुलापुर की ओर गया।

रात को छावनी से तीन मील की दूरी पर बादशाह के सरदारों से भेंट हुई। संताजी ने कहा कि मैं बादशाहीसरदार शिर्के ओर मोहिते की ओर से छावनी में काम के लिए गया था, अब लौट रहा हूं। उन सरदारों के चले जाने पर संभाजी ने बादशाही सेना में प्रवेश किया। मौका देखकर, बादशाह के तम्बू तथा डेरे उखाड़ फेंके। सोने के कलशे लूट लिए। एकदम सेना में खलबली मचगयी। संताजी साथियों सहित सिंहगढ़ के जंगलोंमें छिप गया। लगते हाथ संभाजी ने रायगढ़ पर घेरा डालने वाले इत्तिकादखान पर भी छापा डाला। राजा राम संताजी के पराक्रम से बहुत सन्तुष्ट हुआ। धनाजी जाधव भी बेकार नहीं बैठा था। फलटण के मैदान में मुगलाई सरदार रुस्तमखान डेरा डाले पड़ा था। धनाजी ने अचानक आक्रमण कर उसकी ५ तोपें हस्तगत की। इतने में समाचार आया कि रायगढ़ किला शत्रु के हाथ में चला गया। बादशाही फौज ने पन्हाला पर सवारी की है। पन्हाला भी जीता गया। यही निश्चय किया गया कि राजाराम विशालगढ़ की घाटियों में से निकल कर जिञ्जी पहुंचे। रामचन्द्र पन्त महाराष्ट्र में डटकर शत्रु की गति को रोके। संभाजी और धनाजी, मध्य मैदान में उथल पथल मचावें। इन दोनों सरदारों के अचानक आक्रमण से मुसलमान लोग थर थर कांपते थे। स्वप्न में उन्हें संताजी और धनाजी ही दिखाई देते थे। इन वीरों ने औरंगजेब की सब आशाओं को विफल कर दिया।

राजाराम के जिंजी पहुंचते ही बादशाह ने जुल्फिकारखान को जिंजी का घेरा डालने के लिये रवाना किया। इधर महाराष्ट्र में रामचन्द्र पन्त ने परशुराम पंत त्र्यम्बक और उसके लडके शंकर जी की सहायता से महाराष्ट्र की रक्षा की। राज्य कर वसूल किया। १६९२ ई० में औरंगजेब ने रायगढ़ का किला जीत लिया था। शंकराजी ने एक रात को सिखाई हुई गोह की सहायता से किले में प्रवेश कर किले को आधीन किया। रामचन्द्र पन्त सतारा में रह कर मुसल्मानों को तंग कर रहा था। शंकराजी आदि के गुप्त आक्रमणों से तंग आकर बादशाह ने अपनी सेना का रुख जिंजी की ओर किया। संताजी और धनाजीजाधव राजाराम को जिंजी पहुंचा कर लौट रहे थे। उनके आने से रामचन्द्र पन्त आदि युद्ध करने वाले सरदारों का उत्साह द्विगुणित हो गया। इन दोनों सरदारों ने वाई और मिरज प्रदेशों को जीत कर बादशाह को सेना को जिंजी जाने से रोका।

यह जिंजी का घेरा १६९१--१६९८ तक जारी रहा। इस सप्तवार्षिक युद्ध में मराठों ने धूप वर्षा आदि की पर्वाह न करते हुए राष्ट्र के लिये सब कुछ निछावर कर बादशाही सेना को कहीं आराम से टिकने नहीं दिया। आज यहां है कल वहां है। पता नहीं कब कहांसे आक्रमण होजाय। महाराष्ट्र के पहाड़ जंगल तथा घाटियां मराठा मण्डलियों का आश्रय स्थान बनी हुई थीं। बड़ी २ सेनाएं भी इनका दमन नहीं कर सकती। जिस प्रकार अफ्रीका के वीरों ने गोरी युरोपियन सेनाओं के नाकों दम कर दिया था उसी प्रकार इन इनेगिने दिनरात नंगी पीठ के घुड़सवारों ने औरंगजेब की सजी सजाई बादशाही सेना को निकम्मा कर दिया। एक २ करके पन्हाला तोरण आदि सब किले फिर से मराठों के हाथ में आगए।

इस हलचल के समय औरंगजेब ने १६९५ में ब्रह्मपुरी में (भीमानदी के किनारे पर) अपनी छावनी को टिकाया। सोचविचार के बाद उसने अपने पुत्र कामबख्श और वजीर आसदखान को जुल्फीकारखां की

सहायता के लिये जिंजी की ओर भेजा। जुल्फीकार खां और कामबख्श की आपस में बनी नहीं। कामबख्श ने अपनी मूर्खता से सरदारों को नाराज किया। गुप्त रूप से मराठों के साथ सन्धि करनी शुरू की। जब जुल्फीकारखां को यह पता लगा तो उसने एकदम कामबख्श को कैद कर लिया। बाहर से धनाजी जाधव इस मुगलाई सेनाको तंगकर रहा था। इस मुगल सेना में पारस्परिक अविश्वास और अन्तःकलह बढ़ रहा था। परन्तु कासमखान आदि सरदारों ने मैसूर के राजा चिक्कदेव के साथ मिल कर बेंगलौर पर मराठों का अधिकार नहीं होने दिया। जुल्फीकार खान ने अन्तिम दम तक मराठों को हैरान करने के लिये १६९६ में तजौर की ओर सवारी कर उधर से जिंजी पर अधिकार जमाने का यत्न किया। संताजी घोरपड़े ने कर्नाटकप्रान्त के सरदार कासमखान को चारों ओर से घेर कर दुढेरी के संग्राम में विवश किया। उसने लाचार होकर निराशाकी हालत में आत्मघात किया। संताजीने हाथ में आए हुए सरदारों को उचित दण्ड देकर छोड़ दिया। शत्रुकी सम्पत्तिको हस्तगत किया। जिन्होंने अपना हिस्सा नहीं दिया उन्होने अपनी ओर से एक २ आदमी जमानत के तौर पर सन्ताजी के पास रखा। इस लड़ाईमें मराठों ने ५० लाख की सम्पत्ति प्राप्त की। इसके बाद राजाराम ने धनाजीजाधव तथा अन्य सरदारों को जिजी में बुलाया। ये सब सरदार गुप्त वेश में ही शत्रु की आंखों से बचकर राजाराम के पास पहुंचे। एकत्रित मण्डलने निरन्तर युद्ध प्रसंगों के कारण शिथिल हुई राज्य व्यवस्था को फिर स्थापित किया। अष्टप्रधान मंडल के नये अधिकारी चुने गए। अपनी इन विजय यात्राओं को सफल करने के लिए, प्रजा में महाराष्ट्र के छत्रपति का दबदबा बैठाने के लिए आवश्यक समझा कि राजाराम राजछत्र धारण करें। नियम पूर्वक राजचिह्न और राजछत्र धारण करके राजाराम ने औरंगजेब को बताया कि यद्यपि असली राज्याधिकारी कैद में हैं परन्तु छत्रपति का सिहासन मराठों के पास ही है। औरंगजेब इस राज्याभिषेककी घटना को सुनकर क्रुद्ध होगया। उसने जुल्फीकार खान को हुक्म दिया कि वह जल्दी किले को सर करे। जुल्फीकारखान देर तक सफल न हो सका। परन्तु

१६६७ में महाराष्ट्र में कुछेक दुर्घटनाएं होगईं। मराठोंके वीर सेनापति प्रह्लाद निराजी का देहान्त हो गया। प्राह्लादपन्त भी इस लोक से चल बसा। अब कर्नाटक का प्रवंध शिथिल होने लगा। राजाराम पर ईर्ष्यालु सरदारों का जोर चल गया। पारस्परिक ईर्षा की आग में धनाजी जाधव के सरदारों ने अचानक सन्ताजी घोरपड़े का खून किया। मराठों की अन्तः कलह का हाल औरंगजेब को पता लगा। उसने मौके से फायदा उठाकर सारा जोर जिजी की तरफ लगा दिया। आखिर जुल्मीकारखान ने जिजी के किले को घेर लिया। राजाराम किले से निकल गया। खंडोवल्लाल चिटणवीस ने जिजी के पडोसी शिर्के सरदारों के साथ मिलकर राजाराम तथा उसके परिवार को सुरक्षित रूपमें सतारा पहुचा दिया। औरंगजेब ने उधर राजाराम का पीछा करनेके लिये अजीमशाह के साथ नई सेनाएं भेजी। राजाराम ने बीचमें एक दो बार बादशाह की छावनी पर छापे ढालकर शाहूजी तथा येसूबाईको छुड़ानेकी कोशिश की परन्तु वह इसमें सफल न होसका। १६९८ई० में राजाराम ने सतारा में मराठा मंडल को फिर से संगठितकर रामचन्द्र पन्त को अपना मुख्य सलाहकार बनाया। १६९८ ई० में तालनेर के मैदान में मराठों और मुगलों की भयंकर लड़ाई हुई। मराठे सरदारों ने मुगल इलाके में आक्रमण करने शुरू किये। तब औरंगजेब ने तालनेर स्थान पर हुसेन-अली खान को इस मराठी सेना का पीछा करने के लिये भेजा। मराठी सेना ने तालनेर से २ कोस की दूरी पर हुसेनअली के ३०० आदमियों को घेर कर परलोक पठाया। हुसेनअली के तीन जगह भयंकर चोट लगी, वह हाथी से गिर पड़ा। शत्रु का कैदी बना। मराठों ने हुसेनअली की अनुमति से तन्दुरवार की प्रजाओं को लूटकर अपना रुपया वसूल किया। इधर राजाराम ने १६९९ ई० में सतारा के उत्तर की ओर चढ़ाई की। वह विजय प्राप्त करके लौट रहा था कि जालना में मुगलों से फिर उसका मुकाबला हुआ। यहां भी शत्रु का दमन करके राजाराम जल्दी २ वापिस आ रहा था कि रास्ते में उसे बुखार हो गया। सिंहगढ़ पहुचने पर लहू की उलटियां आने लगीं। छाती में भयंकर धड़कन उठने लगी। कुछ दिन बीमार रह कर १७०० के मार्च महीने में छत्रपति राजाराम इस लोक से

चल बसा। अन्तकाल में राजाराम ने एकत्रित मंडली को इस प्रकार सम्बोधित किया—मेरी मृत्यु के कारण राष्ट्रीय आन्दोलन की गति में कमी नहीं आनी चाहिये। शिवजी को कैद से मुक्त कराने का यत्न करो। रामचन्द्र पन्त की आज्ञा में रहकर छत्रपति की शान को कायम रखो। राष्ट्र रक्षक राजाराम के बाद रामचन्द्र पन्त ने अपने स्वामी की आज्ञा पालन करने में कोई बात उठा नहीं रखी। उसने निश्चय किया था कि औरंगजेब की कैद से शाहू जी को छुड़कर महाराष्ट्र के छत्रपति सिंहासन की रक्षा करेंगे। यदि मराठा मंडल औरंगजेब के कैदी शाहू की उपेक्षा करके नया राजा चुन लेता तो औरंगजेब को मराठा शक्ति में फूट पैदा करने का एक और साधन मिल जाता। पहिले मुगल बादशाहों ने इसी नीति का अवलंबन कर राजपूतों में फूट फैलाई थी। राणा प्रताप के मुकाबले में सग्रामसिंह को राणा बनाया था।

रामचन्द्र पन्त ने औरंगजेब की इस चाल को सफल नहीं होने दिया। राजाराम ने भी इसी बात को ध्यान में रखते हुए पेसूबाई के पुत्र शाहूजी का प्रतिनिधि बनकर ही काम किया था। परन्तु राजाराम की मृत्यु के बाद रामचन्द्र पन्त के मुकाबले में राजाराम की धर्मपत्नी ताराबाई ने अपने लड़के शिवाजी को छत्रपति बनाने का यत्न शुरु किया। ताराबाई ने कहा कि राज्य के उत्तराधिकारी राजाराम के वंशज हैं; उसने पुत्रमोह के कारण राष्ट्रीय हित पर विचार नहीं किया। मराठा मंडल में दो पार्टियां बन गई। एक ताराबाई के पक्ष की, दूसरी शाहू या रामचन्द्र पन्त की। ताराबाई ने अपने अल्पायु पुत्र शिवजी की ओर से परशुराम त्रिम्बक को प्रतिनिधि बनाया। औरंगजेब को मराठा मंडल की प्रत्येक हरकत मालूम रहती थी। औरगजेबने जाली चिट्ठियां लिखकर ताराबाई के दिल में यह भाव बिठा दिया कि रामचन्द्र पन्त तुम्हारा दुश्मन है। औरंगजेब ने इस पारस्परिक कलह के समय अपनी इच्छा को पूरा करने का निश्चय किया। सेनापतियों तथा सरदारों को हुक्म दे देकर वह थक चुका था। सरदारों पर उसे विश्वास न रहा था। आखिर स्वय १६९९ ई. में सेनापति बनकर ब्रह्मपुरी से निकला। राजाराम की मृत्यु के कारण उसका साहस दुगना

होगया। एक के बाद एक २ करके मराठों के मुख्य २ किले जीत लिए। परन्तु अब औरंगजेब की सेना में पहिले की सी तेज़ी नहीं रही थी। सतारा पन्हाला बहादुरगढ़ आदि किले मराठों से छिन गए। प्रत्यक्षतः मराठों की स्थिति क्षीण होने लगी। परन्तु इन किलों की विजय के कारण औरंगजेब की बेचैनी दिन प्रतिदिन बढ़ने लगी; क्योंकि एक किले को जीतने में औरंगजेब का जितना नुकसान होता था उसके मुकाबले में मराठों का तिलमात्र भी नुकसान नहीं होता था। मराठे समझते थे कि औरंगजेब दक्षिण में देरतक नहीं टिक सकता। व्यर्थ का जननाश न हो—इसलिए वे स्वयं किलोंको छोड़ जाते थे। औरंगजेब किले को जीत लेता था, परन्तु देरतक उन्हें संभाल नहीं सकता था। मराठे लोग उसे चैनसे नहीं बैठने देते थे। उधर दिल्ली दरवार में सरदार स्वतन्त्र होरहे थे। बाप को सठियाता देखकर लड़के भी गुप्तरूप से मराठों को पराजित करने के स्थान पर अपनी २ सेनाओं को बढ़ाने की फिकर में थे। औरंगजेब ने शाहू के नाम से बनावटी चिट्ठियां भेजकर मराठा सरदारों में खलल मचानी चाही। मराठों ने धीरे २ सब किले फिर जीत लिए। परशुराम पन्त ने वैरागी वेष धर कर सतारा किला जीतने में कमाल किया। सिंहगढ़ और पन्हाला किला भी मराठों के पास आ गया। औरंगजेब को यह समाचार सुनकर बहुत दुःख हुआ। अविश्वासी, असन्तुष्ट महत्वाकांक्षी सरदारों से घिरा हुआ, बादशाह हठवश मराठों के बीच में घूमता रहा। उसकी बेगम तथा लड़की ने आगरा की ओर लौटने के लिए कहा, परन्तु हठी ने अपना दुराग्रह नहीं छोड़ा।

सब ओर से निराशा और विद्रोह के समाचार सुनकर अशान्त औरंगजेब ने अहमदनगर में २० फरवरी के मध्याह्न में १७०७ में अन्तिम श्वास लिया। बड़ी २ राजपूत सेनाओं को अपनी अंगुलियों पर नचानेवाला बादशाह, साधनहीन सेनापतिहीन मराठा मंडली को नहीं दबा सका। औरंगजेब ने इस मराठा मंडली को दबाने के लिए अपना राजकोष लुटा दिया, सब कुछ खोदिया। परन्तु राष्ट्रभाव से प्रेरित होकर उच्च आदर्शों के लिए जीने मरने को तय्यार, मराठा वीरों के सामने औरंगजेब नहीं टिक

सका। विजय या पराजय साज सामान पर आश्रित नहीं होती, यह तो लड़नेवालों के दिलों पर आश्रित होती है। शेरे दिलोंको कोई नहीं हरा सकता। नैपोलियन की छोटी सेनाओं ने रूस में जार की बड़ी सेनाओं को पराजित किया। ग्रीसके वीरों ने परशिया की प्रचण्ड सेनाओं को हराया। सिकन्दर ने अपने इनगिने वीरों की सहायता से मध्य एशिया के मैदानों में अपनी विजय के स्मारक स्तम्भ खड़े किए। और क्या राणा प्रताप ने मुट्ठीभर राजपूतों की सहायता से शाहंशाह अकबर के छक्के छुड़ा दिये। संसार का इतिहास ऐसे ज्वलन्त उदाहरणों से जगमगा रहा है। राजाराम की इस वीरमंडली ने भी, प्राणों को हथेली पर रखकर संसार को बता दिया है कि इस भारतभूमि में स्वतन्त्रता और स्वराज्य के लिए वलि होनेवाले वीरों की कमी नहीं। ये बीर—भारतीय इतिहास के भूषण हैं। इनके कारण भारतमाता का मस्तक सदा के लिए उज्ज्वल और उन्नत रहेगा।

(४)

❁ येसूबाई और ताराबाई ❁

येसूबाई अपने पुत्र के साथ औरंगजेब की छावनी में ही रहती थीं। औरंगजेब की विजय यात्राओं में शाहू और येसूबाई बेगम जीनआरा के पास रहती थी। १७०२ ई० में इस बेगम का देहान्त होगया। औरंगजेब ने इन मराठा राजपुरुषों को हाथ में रखकर, नीति चक्र चलाने की कोशिश की। परन्तु येसूबाई की शिक्षा के कारण शाहू औरंगजेब के जाल में नहीं फंसा। जोताजी केसरकर ने शाहू को शिक्षित किया। छावनी की दौड़धूप में शाहू को कईबार बड़ी तकलीफें उठानी पड़ी। येसूबाई और राजाराम ने शाहू को छुड़ाने के लिये कई यत्न किए। १६९९ ई० में राजाराम ने छावनी पर आक्रमण किया, सफलता नहीं हुई। १७०५ ई० में कामबक्श को मध्यस्थ बनाकर शाहू को बादशाह का मनसबदार बनाकर मुक्त कराने

का यत्न किया गया; परन्तु औरंगजेब एकदम सावधान होगया। इस सारे उपक्रम में पेसूबाई ने आर्यमर्यादा को सुरक्षित रखा। १६६६ ई० में बादशाह ने शाहू का विवाह अम्बिकाबाई और सावित्रीबाई नाम की मराठा सरदारों की कुलीन कन्याओं के साथ कराया।

औरंगजेब ने इन दोनों के सौन्दर्य की महिमा को सुनकर उन्हें देखने की इच्छा प्रकट की। पेसूबाई ने विसबाई नाम की दासी को भेज कर छत्रपति वंश के अन्त:पुर की लाज रखी। बादशाह ने इस विवाह के समय अक्कलकोट कोट इन्दापुर सूबे तथा बारमती बनेवा स्थान की जागीर शाहू को दी। साथ ही साथ रायगढ़ के किले से लाई हुई शिवाजी की भवानी तलवार, अफजलखान की तलवार और एक सोने की तलवार भी दी। औरंगजेब ने कई बार शाहू को बहकाना चाहा। परन्तु उसने कभी यह भाव प्रकट नहीं होने दिया कि यह कैद से छुटने की कोशिश कर रहा है। आखिर औरंगजेब ने घोषणा की कि मैं कर्नाटक तथा विजापुर का राज्य कामवक्ष को देकर दिल्ली जाऊंगा। शाहू को मुक्त कर उसे सत हजारी दी जाती है; और वह काम वक्ष की आज्ञा में रहकर काम करेगा। १७०६ ई० में जुल्फीकारखां के अप्रत्यक्ष निरीक्षण में शाहू को रखकर, मराठों के मुख्य २ सरदारों को फसाना चाहा। परन्तु औरंगजेब के जाल में कोई नहीं फंसा।

इस कार्य का श्रेय—जहां अन्य मराठे सरदारों—बाला जी विश्वनाथ तथा खंडोवल्लाल आदि को है वहां माता येसूबाई को भी है। इस वीरमाता का नाम आदर्श माता के रूप में सदा स्मरणीय रहेगा। शाहू ने जब बालाजी विश्वनाथ की सहायता से महाराष्ट्र में अपना अधिकार स्थापित कर लिया तब उन्होंने अपनी माता जी तथा अन्य परिवार को दिल्ली से पूना में बुला भेजा। कई मुसलमान ऐतिहासिकों ने माता येसूबाई के व्यवहार पर लाञ्छन लगाने की कोशिश की है, परन्तु वह आरोप निराधार है। येसूबाई का अन्त सुखमय था। दक्षिण में ५, ६ साल सुख पूर्वक रहकर वह फिर निजाम गई थी। इस-

विषय को स्पष्ट करने के लिये येसूबाई के जीवन चरित का संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक है।

संभाजी और येसूबाई का विवाह १६६७ सन् में हुआ था। उस समय इनकी आयु १० वर्ष की थी और मृत्यु के समय उनकी आयु ७० साल की थी। १६९० ई० में वह जुल्फीकारखां के आधीन हुई थी। उस समय उसकी आयु ३० वर्ष की थी। उसका १० वर्ष की उमर का शाहू जी उसके साथ था। यदि येसूबाई का आचार व्यवहार ठीक न होता तो शाहू जी उसे दिल्ली से लौटा लाने के लिए इतनी कोशिश न करता। १७०७ ई० तक येसूबाई ने बड़ी चतुराई के साथ शाहू द्वारा मराठा मंडल में किसी प्रकार की अशान्ति नहीं होने दी।

शाहू येसूबाई का आज्ञाकारी पुत्र था औरंगजेब की मृत्यु के बाद शाहू का छुटकारा हुआ। परन्तु शाहू की माता, तथा परिवार को मुगल दरबार ने जमानत के तौर पर रखा। इधर शाहू को स्वकीय युद्धों में जूझना पड़ा। सब कामों के निबट जाने पर ही १७१९ ई० में येसूबाई को, बाला जी विश्वनाथ को, दिल्ली दरबार भेजकर दक्षिण में बुलाया। इस स्वकीय युद्ध में ताराबाई के कुचक्रों के कारण कई बार सन्देह होता था कि कहीं शाहू छत्रपति को मुगल दरबार के वजीर ठीक मोके पर जवाब न दे दे। येसूबाई की दरबार में काफी परिचिति थी। उसने इस हलचल में अपने पुत्र की हर प्रकार से रक्षा की। शाहू के दिल्ली दरबार से बाहर आते ही, मराठा-मंडल में दो पार्टियां बन गईं।

एक पार्टी का यह कहना था कि शाहू जी महाराष्ट्र का छत्रपति है। विपक्ष में राजाराम की स्त्री ताराबाई कहती थी कि महाराष्ट्र को आपत्ति के समय हमारे स्वामी ने बचाया हैं अतः राज्य के उत्तराधिकारी हमारे वंशज हैं। ताराबाई महत्त्वाकांक्षिणी स्त्री थी। उसे राज्य कारोबार से पर्याप्त परिचित थी। उसने राजाराम के बड़े लड़के शिवाजी (जिसकी आयु १० वर्ष की थी) के नाम से शासन करना शुरू

किया। इधर शाहू भी दरबार से छूटकर दक्षिण में आ रहा था। निःसन्देह राजाराम ने आपत्ति के समय मराठा मंडल को दुश्मन से बचाया; परन्तु यह भी सचाई है कि शाहू की माता येसूबाई ने उस समय राष्ट्र भक्ति के भाव से प्रेरित होकर स्वयं जेल में रहकर, वीरों को राष्ट्र रक्षा के लिये भेजा और मराठा मण्डल की कीर्ति तथा शक्ति को ज़ोरवाला बनाया था। येसूबाई दूरदर्शी महिला थी। उसने अपने वैयक्तिक स्वार्थों को तिलांजलि देकर राष्ट्रीय भाव को मुख्य रखा। परन्तु ताराबाई ने अपनी महत्त्वाकांक्षा को पूरा करने के लिये, मराठा मण्डल में राजगद्दी के लिए कलहाग्नि की ज्वालाओं को प्रदीप्त कर, मराठाशक्ति को कमज़ोर किया। ताराबाई यदि अपनी इस योग्यता तथा कार्यकुशलता के गुणों को राष्ट्र रक्षा के काम में लगाती तो आज उसका नाम भी अहिल्याबाई की तरह सन्मान के साथ लिया जाता। इस स्वार्थमयी प्रवृत्ति ने ताराबाई के अन्य गुणों पर पानी फेर दिया। ताराबाई के कारण मराठा मंडल पर जो आपत्ति आयी उसका निराकरण कैसे हुआ? जिन व्यक्तियों ने इस अन्तः कलहाग्नि से छत्रपति के सिंहासन को सुरक्षित रखा, उनका वर्णन हम आगे करेंगे। यहां पर हम संक्षेप से ताराबाई के कारनामों का उल्लेख करेंगे। इससे पाठकों को पता लगेगा कि माताएं भी किस प्रकार राष्ट्रीय षड-यन्त्रों और सन्धि चक्रों में बड़े २ दिमागों का मुकाबिला कर सकती हैं। १७०८ ई० में बहादुर शाह ने शाहू के मराठे सरदारों से खुश होकर (क्योंकि शाहू ने इन सरदारों को भेजकर बादशाह के प्रतिद्वन्दी कामबख्श का दमन किया था) उनका सन्मान किया। शाहू ने यह मौका देखकर अपनी सनद तथा अधिकार को बढ़ाने के लिये दरबार में अपने वकील भेजे। ताराबाई ने भी जुल्फीकारखां के प्रतिद्वन्दी वजीर मुनीमखान की सहायता से बादशाह से सनद प्राप्त करने की प्रार्थना है। शाहू को सब फर्मान मिलने वाले थे, परन्तु ताराबाई के हिमायती मुनीम खान के जोर देने पर यह निश्चय किया गया कि ताराबाई और शाहूजी आपस में लड़कर अपना निपटारा कर लें। जो विजयी होगा उसे सनद दे दी जायगी। इस निर्णय का

फल यह हुआ कि दोनों पक्ष एक दूसरे को नष्ट करने के लिये पूरी तय्यारियां करने लगे।

एक दूसरे के आधीन प्रदेशों को लूटना तथा एक दूसरे के सरदारों को प्रलोभन देकर अपनी ओर मिलाने की कोशिशें होने लगीं।

जब शाहू सतारा में पहुंचता था, तब ताराबाई के सरदार कोल्हापुर में दंगा करते, जब वह कोल्हापुर पहुंचता, तब ताराबाई सतारा में उत्पात मचाती। यह सिलसिला १६१० ई० जून मास से लेकर शाहूजी के मुख्य सेनापति धनाजी जाधव की मृत्यु तक जारी रहा। ताराबाई ने इतने अरसे में न आप आराम लिया और न शाहू को आराम लेने दिया। धनाजी जाधव मराठों का प्रमुख सेनापति था। इसका मराठा मण्डल पर भारी दबदबा था। इसकी अचानक मृत्यु के बाद शाहूजी का पक्ष दिन प्रति दिन कमजोर होने लगा। दो तीन वर्षों के निरन्तर युद्धों में शाहू ने अपना मुख्य स्थान सतारा को बनाया और ताराबाई ने पन्हाला व कोल्हापुर को। दोनो पक्ष प्रत्यक्ष युद्ध की अपेक्षा भेदनीति का प्रयोग ही करते रहे। ताराबाई ने रामचन्द्र पंतअमात्य की सहायता से अपनी गति को मन्द नहीं होने दिया। इतना ही नहीं—धनाजी जाधवकी मृत्यु के बाद उसके लड़के चन्द्रसेन जाधव को अपनी ओर मिलाकर अपनी सैन्य शक्ति को भी बढ़ाया। ताराबाई ने रामचन्द्र पन्त की सहायता से खडोल लाल आदि को अपनी ओर मिलाना चाहा परन्तु सफल नहीं हुई। ताराबाई के नीतिचक्र फल ला रहे थे। धनाजी की मृत्यु के बाद बड़े २ सरदार शाहू का पक्ष छोड़कर ताराबाई की ओर आने लगे। ताराबाई को अपनी सफलता पर प्रसन्नता हो रही थी। परन्तु एकदम बालाजी विश्वनाथ नाम के व्यक्ति ने ताराबाई की सब भावनाओं को पलट दिया। इस व्यक्ति ने धनाजी जाधव की देख रेख में काम सीखा था। महाराष्ट्र के बडे २ राजनीतिज्ञों की इसे सहायता प्राप्त थी। इसने एकदम तरराबाई और उसके लड़के शिवाजी को पन्हाला किले में कैदकर राजाराम के दूसरे लड़के सम्भाजी को

कोल्हापुरकी गद्दी की आशा दिलाई। इस प्रकार तारावाईका राज दरवार में प्रभाव कम होगया।

तारावाई ने अपने जीवन काल में अपनी महत्वा कांक्षाओं को पूरा करने की सराहनीय कोशिशकी। परन्तु कुछेक दुर्गुणो—सीखापन तथा स्वार्थ भाव के कारण सफल न हो सकी। तारावाई प्रभावशालिनी महिला थी। यदि वालाजी विश्वनाथ का उदय न होता तो निःसन्देह तारावाई छत्रपति के राज छत्र को अपने कुल में स्थिर रखती। इस घटना के बाद तारावाई ने राज कारोवार में बहुत हलचल नहीं की। शाहू छत्रपति की मृत्यु के बाद रामराजा गद्दी का उत्तराधिकारी वना। यह तारावाई का पोता था। तारावाई ने गायकवाड वड़ोदा की सहायता से कोशिश की कि वह पेशवा की जगह, रामराजा की सरद्विका बने। परन्तु नाना साहेब पेशवाने अनेक तरह से समझा बुझाकर सन्मान पूर्वक झगड़े को निपटाना चाहा। आखिर गायकवाड़ बडोंदा को हराकर तारावाई को असहाय वना दिया। १७६१ ई० में भारी परिश्रम के बाद यह महत्वा कांक्षिणी स्त्री इसलोक से चल वसी।

महाराष्ट्र के इतिहास में, येसूवाई और तारावाई के चरित राष्ट्रीय सेवाव्रत को धारण करने वाली बहिनों और माताओं के लिए शिक्षा प्रद हैं। दोनों माताए! मातायों और वहिनों को प्रेरित कर रहीं हैं कि वह भी राष्ट्र की अंग हैं। उनका भी राष्ट्र में हक है। यदि अपने जीवन को तथा परिश्रम को सफल बनाना है तो येसूवाई की तरह अपने आप को कष्ट में डालकर घरके झगड़ों को शान्त करो। यह गृह कलह बड़े २ साम्राज्यों को तहस नहस कर देते हैं। राष्ट्र रक्षा के सामने अपनी स्वार्थ पूर्ण महत्वाकांक्षायों को स्वाहा कर दो। अपने कुल तथा देश को शत्रुओं तथा विदेशियों के मायाजाल से बचाना है तो राष्ट्रीय आन्दोलन के मैदान में तैयारीके साथ आगे बढ़ो और अपने देश को गृह कलह की आग से बचाकर प्रेम गंगा के प्रवाह को प्रवाहित करो और राष्ट्रीय माला के मनके वन जाओ।

(५)

❀ छत्रपतियों का भविष्य ❀

शिवाजी महाराज ने अपने पराक्रम से छत्र धारण किया था। अपने बुद्धि बल के ज़ोर पर मराठा मंडल को एक सूत्र में ग्रथित किया था। शिवाजी--सब काम स्वयं देखता था। वह अपना प्रधानामात्य स्वयं था। वह राज्य भी करता था और शासन भी करता था। सेनाओं का संचालन भी उसके निरीक्षण में होता था। वह मराठी प्रजाओं के बीच में रहा था; उनके रीति रिवाजों तथा स्वभावों से परिचित था।

उसकी प्रजाएं उसको पहचानती थीं। वह मन्त्रियों से काम लेना जानता था, शिवाजी सम्राट् पंचमजार्ज की तरह नाम मात्र की शोभा बढ़ाने वाला न था; वह अमेरिका के राष्ट्रपति की तरह सच्चे अर्थों में राष्ट्रपति था। उसके देहान्त के बाद उसके पुत्र तथा प्रपौत्रों ने कुछ समय तक छत्रपति के छत्र को अपने हाथों अपने तेज तथा प्रभाव के ज़ोर पर स्वयं थामे रखा। अष्ट प्रधान मंडल के मन्त्रि लोग इनके सहायक थे। राजाराम के समय तक छत्रपतियों की शान थी। परन्तु राजाराम की मृत्यु के बाद शाहू छत्रपति के राज सिंहासन पर आरूढ़ होते ही छत्रपतियों की स्थिति बदल गई। छत्रपति नामधारी राजा रह गए, राजशक्ति का संचालन दूसरों के हाथ में चला गया। शाहू छत्रपति के समय से छत्रपति पेशवाओं तथा मन्त्रियों पर आश्रित होगए, अष्टप्रधान मंडल ने मुख्यता प्राप्त की। यह घटना क्यों हुई? इसका मुख्य कारण यह था कि शाहू छत्रपति १४ साल तक दिल्ली दरबार में कैद रहा था, मराठी प्रजाओं तथा मराठा सरदारों पर उसका व्यक्तिगत प्रभाव न था। जिस समय शाहू छत्रपति ने मराठा मंडल में प्रवेश किया था, उस समय राष्ट्र में अन्तःकलह का दौरदौरा था। राजाराम की धर्मपत्नी अपने पुत्र शिवाजी द्वितीय को राजाराम का उत्तराधिकारी बनाने का यत्न कर रही थी। शाहू छत्रपति की अनुपस्थिति में राजाराम के वंशजों का ही मराठा सरदारों पर प्रभाव था। ताराबाई ने इस प्रभाव से

फायदा उठाकर अपने पक्ष को बलशाली बनाने का यत्न किया। शाहू छत्रपति अनजान था। इस समय कुछेक निःस्वार्थी राष्ट्रभक्तों ने शाहू छत्रपति का साथ देकर, उसे सिंहासन पर अधिष्ठित कराया उनका नाम मराठा इतिहास में बहुत प्रसिद्ध है। शत्रु प्रबल तथा चालबाज़ थे, इनको दबाने के लिए विशेष यत्न की आवश्यकता थी। यदि शाहू छत्रपति ने शिवाजी की तरह अपने हाथों अपने ज़ोर पर सिंहासन प्राप्त किया होता तो वह स्वयं इसकी रक्षा करता। परन्तु घटनाक्रम से विवश होकर सिंहासन की रक्षा के लिए उसे अपने मन्त्रियों पर निर्भर होना पड़ा। शाहू छत्रपति ने परिस्थिति से बाधित होकर अपने आपको वज़ीरों के हाथ में सौंप दिया। यह संरक्षक वज़ीर या मन्त्री ही मराठा इतिहास में पेशवा नाम से प्रसिद्ध है। जिस प्रकार महामति चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को आगे रखकर, भारतीय आर्य राष्ट्र के अन्तःकलह तथा विदेशी आक्रमणों से रक्षा की थी, उसी प्रकार इन नये ब्राह्मण मन्त्रियों ने शाहू छत्रपति के नाम से शासन किया और अन्तःकलह तथा बाह्य आक्रमणों से राष्ट्र को बचाया। इससे छत्रपतियों का प्रताप कम होता गया। राजकाज की बागडोर पूना के पेशवाओं के हाथ में चली गई, कुछ समय तक सतारा और कोल्हापुर के छत्रपति अलग स्थानों पर राज्य करते रहे। परन्तु १८१२ ई० के बाद केवल कोल्हापुर के छत्रपति ही इतिहास में रह गए। सतारा के छत्रपतियों ने मराठा मंडल की राजनीति में विशेष भाग नहीं लिया। हां कोल्हापुर के छत्रपतियों ने समय २ पर स्वार्थवश अपनी स्वतन्त्र स्थिति को कायम करने के लिए कोशिश की। उसका वर्णन यथाप्रसंग किया जायगा। यहां इतना ही कहना पर्याप्त है कि शाहू छत्रपति के समय से मराठा मंडल में छत्रपतियों के मन्त्रियों का ज़ोर बढ़ने लगा। मुख्य मन्त्री पेशवा ही महाराष्ट्र का असली राजा बना। इन पेशवाओं में प्रथम पेशवा बालाजी विश्वनाथ था। शाहू छत्रपति इसी वीर ब्राह्मण की सहायता से छत्रपति के सिंहासन पर आरूढ़ हुआ था।

बालाजी विश्वनाथ ने आनेवाले पेशवाओं के सामने जो आदर्श रखा

बह उदात्त तथा अनुकरणीय था। बालाजी विश्वनाथ कौन था:—कैसे इतनी ऊंची स्थिति तक पहुंचा, यह सब बातें महत्वाकांक्षी नवयुवकों के लिए शिक्षाप्रद है। अब हम इन्हींका वर्णन करते हैं।

(६)

❋ बालाजी विश्वनाथ ❋

बालाजी विश्वनाथ का जन्म किसी राजकीय घराने में नहीं हुआ था। इनके पूर्वज मध्यम स्थिति के थे। बालाजी जो कुछ बना, अपने परिश्रम से ही बना। बचपन से ही बालाजी विश्वनाथ को विपरीत परिस्थितियों और आपत्तियों का सामना करना पड़ा। बालाजी विश्वनाथ के पूर्वज कई सदियों से पश्चिमी घाट पर "श्रीवर्धन" स्थान पर रहते थे। इस घराने के लोग, श्रीवर्धन स्थान की देशमुखी वसूल करते थे, इसीलिए यह श्रीवर्धन देशमुख नाम से भी इतिहास में प्रसिद्ध हैं। देशमुखी अधिकार का मतलब यह था कि यह देशमुखी अधिकारी उस स्थान की सब आपत्तियों से रक्षा करता था। लड़ाई के समय इन देशमुखी अधिकारियों का कर्तव्य होता था कि राजा को जन और धन की सहायता दें।

मुसलमानी शासनकाल से पहले ब्राह्मणेतर लोग ही इन कामोंको करते थे। परन्तु मुसलमानों ने जब देश में उत्पात मचाया तब मराठे पाटील आदि इन स्थानों की रक्षा न कर सके। यह असुरक्षित स्थान ब्राह्मणों के अधिकार में आ गये। ब्राह्मणों का जनता में बहुत प्रभाव था। १५५७ ई० के लगभग वालाजी विश्वनाथ के पूर्वजों ने इस श्री वर्धन की देशमुखी को संभाला। वालाजी विश्वनाथ के बाल्यकाल के सम्बन्ध में कई दन्त कथाएं प्रसिद्ध हैं। कई कथा लेखकों की सम्मति में सीदियों ने मराठों से बदला लेने के लिये बालाजी विश्वनाथ के बड़े भाई जानोजी को समुद्र में बहा दिया था। इनके इन नृशंस अत्याचारों को देखकर

बालाजी विश्वनाथ श्रीवर्धन देशमुख से बाहर चला गया; और 'भानु' भाइयों के साथ नौकरी की तलाश में चल दिया। बालाजी ने भानु भाइयों को दिलासा दिया कि जो कुछ मुझे मिलेगा उसका चौथा हिस्सा तुम्हें भी मिलेगा। जब बालाजी विश्वनाथ पेशवा बना तब फड़न-वीसी का ओहदा भानुभाई के वंश को मिला। सतारा के महादा जी कृष्णा जोशी द्वारा इन दोनों का राजदरबार में प्रवेश हुआ। बालाजी विश्वनाथ को सचिव शंकरा जी नारायण के नीचे नौकरी मिली। बालाजी विश्वनाथ की योग्यता को देखकर सेनापति धनाजीजाधव ने उसे अपने काम में लगाया। इसी सेनापति के नीचे काम करते हुये बालाजी विश्वनाथ ने मराठा राजनीति के पेचीदे प्रश्नों को समझा। दूसरे लेखकों का कहना है कि बाला जी विश्वनाथ शुरू से ही महत्वकांक्षी था। बाला जी के पूर्वजों की उस समय के विश्वनाथ के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ ब्रह्मेन्द्र स्वामी में अटल श्रद्धा थी।

ब्रह्मेन्द्र स्वामी की प्रेरणा से ही बालाजी ने शाहू के दरबार में नौकरी की थी। दोनों कथाओं में यह बात सामान्य है कि बालाजी विश्वनाथ अपने समय के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञों में अच्छा परिचित था। राष्ट्र के योग्य व्यक्ति उसकी कदर करते थे। राज दरबार में आने पर धनाजी जाधव ने उसको व्यावहारिक राजनीति की शिक्षा दी। बालाजी विश्वनाथ को महाराष्ट्री जनता की स्थिति से परिचित कराने वाला व्यक्ति ब्रह्मेन्द्र स्वामी था।

जिस प्रकार भोसले वंश को समय २ पर दिलासा देने वाले समर्थ गुरु रामदास थे उसी प्रकार शाहू के समय प्रजाओं की हालत को राजातक पहुंचाने वाले ब्रह्मेन्द्र स्वामी थे। ब्रह्मेन्द्र स्वामी की सहायता से शाहू को खण्डो बल्लाल तथा बालाजी विश्वनाथ जैसे योग्य पुरुष मिल सके। ब्रह्मेन्द्र स्वामी तथा उनकी शिष्य मंडली ने ही उस समय के लोकमत को शाहू के अनुकूल बनाया। इस साधु मंडली ने समर्थ गुरू रामदास के पग चिन्हों पर चलते हुये भारतीय जनता को बता दिया था कि साधु लोग

केवल मात्र पारलोकिक धार्मिक स्वप्नों में रमने वाले ही नहीं अपितु देश की कंटीली राजनीति के विषय मार्ग भी चल सकते है।

---

(७)

❀ "ब्रह्मेन्द्र स्वामी" ❀

वर्हाडपुर के दुघेवाड़ी गांव में महादेवभटनाम का देशस्थ ब्राह्मण रहता था। १६४६ ई० में उसकी धर्मपत्नी उमावाई ने विष्णु नाम के पुत्र को जन्म दिया। बाल्यकाल से ही विष्णु की प्रवृत्तियां ईश्वरभक्ति की ओर थी। हरे वर्ष श्रावण शुद्ध प्रतिपदा से प्रारम्भ करे; भाद्रपद शुद्ध चतुर्थी तक वह बालक एकान्त में तपश्चर्या पूर्वक समाधि लगाता था। १६६२ ई० में वह बालक काशी चला गया और वहां सन्यासाश्रम स्वीकार कर अपना नाम "ब्रह्मेन्द्र स्वामी" रखा। तदनन्तर हिमालय से लेकर रामेश्वरम् तक तीर्थयात्रा की। इस यात्रा में भ्रमण करते २ महाराष्ट्र देश में पहुंचा। वहां सह्याद्रि पहाड़ के परशुराम देव स्थान में चिपुडुण गाव में समाधि जमाई। भयंकर तपश्चर्या की। वाढगोडी नाम का गड़रिया तपो भूमि में आ निकला। ब्रह्मेन्द्र स्वामी और वाडगोडी में परिचिति होगयी। वह गड़रिया ब्रह्मेन्द्र स्वामी की तपश्चर्या से प्रभावित हुआ। उन्हीं दिनों वाला जी विश्वनाथ इस इलाके में काम करता था। वाडगोड़ी द्वारा वाला जी विश्वनाथ का ब्रह्मेन्द्र स्वामी के साथ परिचय हुआ। स्वामी की कठिन तपश्चर्या को देखकर वालाजी विश्वनाथ, इन का भक्त बन गया। दिन दिन भक्त मंडली की संख्या बढ़ने लगी। ब्रह्मेन्द्र स्वामी परशुराम देव स्थान में रहते थे। यह मंदिर जीर्ण-भ्रष्ट होगया था। १७०७ ई० में ब्रह्मेन्द्र स्वामी इस मंदिर को जीर्णोद्धार करने के हेतु भिक्षा द्रव्य सञ्चित करने के लिए बाहर निकले। इसी समय शाहू महाराज कारागार से मुक्त हुए थे। महाराष्ट्र में हलचल थी।

देवस्थान की रक्षा के लिये चिमणाजी पंत आदि को नियुक्त किया।' इसी हलचल में घटनाओं के हेर फेर से यह अनुमान लगाना अनुचित नहीं कि ब्रह्मेन्द्र स्वामी ने महाराष्ट्र में घूम कर वहां के लोक मत को शाहू के अनुकूल बनाया हो।' बालाजी विश्वनाथ और शाहू को एक दूसरे का सहायक बनाने में ब्रह्मेन्द्र स्वामी का पर्याप्त हाथ था। कोंकण के प्रसिद्ध सरदार परशुराम पंत और कान्होजी आंग्रे आदि सरदारों पर ब्रह्मेंद्र स्वामी का असर था। ब्रह्मेन्द्र स्वामी की जो चिट्ठी पत्री प्रकाशित हुई हैं उनसे पता लगता है कि ब्रह्मेंद्र स्वामी रुपये के लेन देन का धंधा भी करते थे। मराठा मंडल के बड़े २ सरदार इनके ऋणी थे। ब्रह्मेंद्र स्वामी को मराठा मण्डल की अन्तरीय स्थिति का भली प्रकार ज्ञान था। भिक्षा करने के निमित्त से ब्रह्मेंद्र स्वामी ने कई बार देश की यात्रा की। भक्तों की भेंट तथा उपहार के कारण ब्रह्मेंद्र स्वामी उस समय के प्रसिद्ध धनियों में से एक थे। शाहू छत्रपति तथा बालाजी विश्वनाथ को समय २ सहायता देते थे। बाला जी विश्वनाथ का उत्तराधिकारी प्रथम बाजीराव भी इनका भक्त था। बाजीराव प्रथम की चिट्ठी पत्री से पता लगता है कि कई बार विरोधी सरदारों ने शाहू छत्रपति और बाजीराव प्रथम के बीच में वैमनस्य पैदा करने की कोशिश की। ऐसे समय में ब्रह्मेंद्रस्वामी ने ही मामले को सुलझाया। महत्वाकांक्षी मराठा सरदारों के अन्तः कलह को शांत करने में ब्रह्मेंद्र स्वामी ने सराहनीय यत्न किया।

ब्रह्मेंद्र स्वामी की भक्त मंडली में राजघराने की स्त्रियां भी थीं। बाजीराव प्रथम की मृत्यु के बाद ब्रह्मेंद्र स्वामी का राज दरबार में प्रभाव कम होने लगा। पुराने साथी भी परलोक चल दिए। नाना साहेब बालाजी बाजीराव, तथा सदा शिवराव भाऊ के साथ ब्रह्मेंद्र की नहीं बनी। धीरे २ लौकिक व्यवहारों से अपने आपको अलग कर लिया। अपनी जागीर का प्रबन्ध, चिमणाजी के लड़के जगन्नाथ पंत को सौंपा।' दिन प्रतिदिन स्वामी का शरीर कृश होने लगा। १७४५ ई० में श्रावण मास में कृष्णा नदी के तट पर अन्तिम समाधि लगाई। समाधि के नवें दिन रामनाम का जप

करते हुए योग निद्रा स्वीकार की। शाहू महाराज ने स्वामी की स्मृति में मंदिर बनवाना शुरू किया। १७५८ ई० में वह मंदिर पूरा हुआ। आज तक उस मंदिर का प्रबन्ध चिमणाजी पंत भागवत के अनुयायी करते हैं।

ब्रह्मेंद्र स्वामी को भिक्षा द्वारा १६ हजार की वार्षिक आमदनी थी। देवालय तथा मंदिरों की जागीरें अलग् थी। ब्रह्मेंद्र स्वामी ने इस सारी सम्पत्ति को मन्दिर तालाब बनवाने, परोपकार और धर्म के काम में लगाया। ब्रह्मेंद्र स्वामी की योग्यता के सम्बन्ध में मत भेद हैं। कइयों की राय में ब्रह्मेंद्र स्वामी दिखावटी मक्कार स्वार्थी और धन का लोभी था। कई उसे स्वामी समर्थ रामदास का उत्तराधिकारी समझते हैं। स्वामी राम दास और ब्रह्मेंद्र स्वामी में आकाश पाताल का अन्तर है। स्वामी रामदास निस्पृह और त्यागी राजनैतिक गुरु था। ब्रह्मेंद्र स्वामी रुपये पैसे का धन्धा करते थे। रामदास अजात शत्रु था। वह सरदारों की पारस्परिक ईर्ष्या से ऊपर उठा हुआ था। परन्तु ब्रह्मेंद्र स्वामी कई सरदारों के महाजन थे। जो लोग ब्रह्मेंद्र स्वामी को मक्कार और स्वार्थी कहते हैं उनका कथन सत्य नहीं है।

निःसन्देह ब्रह्मेंद्र स्वामी ने द्रव्य संग्रह किया था। रुपये का लेन देन भी करते थे। परन्तु इसमें भी सन्देह नहीं कि इस रुपए को उन्होंने जनता के हित में तालाब पुल मंदिर आदि बनवाने में ही लगाया।

ब्रह्मेंद्र स्वामी का जीवन तपोमय जीवन था; द्रव्य संग्रह का उद्देश्य भोग विलास नहीं, अपितु लोकहित ही था। जिस समय ब्रह्मेन्द्र स्वामी का जन्म हुआ था उस समय लोकहित सम्पादन सिद्ध करने का उत्तम उपाय यही समझा जाता था कि राष्ट्र में स्थान २ पर मठ तथा मन्दिर बनाए जांय। उस समय की जनता इन्हीं मठों में शिक्षाप्राप्त करती थी। ब्रह्मेन्द्र स्वामी का जीवन पवित्र जीवन था। उच्च आचार वाला था। ब्रह्मेन्द्र स्वामी अपने समय का धनी महन्त था। उन्होंने सांसारिक सम्पत्ति का संग्रह राष्ट्रहित साधना के लिये किया था। वह की शिष्यों की भेंट को भक्तों की भलाई में

लगा देते थे। आज भारत में बीसियों महन्त अपने भक्तों तथा शिष्यों द्वारा भेंट की हुई सम्पत्ति का अपने ऐशो आराम के लिये प्रयोग करते हैं। उन्हें देश तथा जनता की कोई परवाह नहीं। ब्रह्मेन्द्र स्वामी ने अपने जीवनकाल में महान्ताई करते हुये देशहित को उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखा। उस समय के बड़े २ राजपुरुषों तथा सरकारों ने उनकी इस देशभक्ति को म ना था। बाला जी विश्वनाथ तथा बाजी राव प्रथम ने जो विजय तथा सफलता प्राप्त की, उसमें ब्रह्मेन्द्र स्वामी का हाथ था। महाराष्ट्र के इतिहास में जितनी अधिक खोज होगी, ब्रह्मेन्द्र स्वामी का नाम उतना ही अधिक चमकता जाएगा।

इस प्रसंग में हम भारत के आजकल के बड़े २ मठधारियों का ध्यान इस ओर खींचना चाहते हैं। देश तथा राष्ट्र उनकी स्वार्थमयी प्रवृत्तियों को देखकर थक चुका है, इस समय इन महन्तों को स्वयं संभल कर अपनी सम्पत्ति को राष्ट्रशिक्षा तथा देशोन्नति के काम में लगाना चाहिए। अन्यथा उस समय के लिये तय्यार रहना चाहिए जब जनता सदा के लिए उनकी समाप्ति कर देगी। मन्दिरों और मठों के स्वार्थी आरामें पसन्द महन्तों! उठो! अपने कर्तव्य को समझो! तपस्या का जीवन व्यतीत करते हुए ब्रह्मेन्द्र स्वामी की तरह राष्ट्ररक्षकों में अपना नाम लिखाओ :—

जबतक धन्नाजी जाधव जीवित रहा तबतक शाहू का पक्ष प्रबल रहा। परन्तु १७१० ई० में धना जी जाधव की मृत्यु के बाद उसका लड़का चन्द्रसेन जाधव सेनापति बना। धना जी जाधव बाला जी विश्वनाथ को जानता था; परन्तु उसका पुत्र चन्द्रसेन जाधव बालाजी विश्वनाथ से दिल २ में खलता थी। दोनों की देर तक नहीं पटी। चन्द्रसेन जाधव ने बालाजी विश्वनाथ को कैद करने की ठानी, परन्तु शाहू की सहायता से बालाजी बच गया। चन्द्रसेन जाधवशाहू को छोड़ करताराबाई के पक्ष में चला गया। अन्य सरदार भी शाहू को छोड़ने लगे। एसे समय में बाल जी विश्वनाथ ने अपने बुद्धिबल के सहारे शाहू के गिरते पक्ष को संभाला। चन्द्रसेन जाधव की बाग़ी सेना को छोड़कर, अन्य २०००

सिपाही सतारा में विश्वनाथ आ गये थे। वाला जी ने नए सिपाही भर्ती किए और शाहूजी की सैन्य शक्ति को संगठित किया। इस कार्य कुशलता के कारण बाला जी को 'सेना कर्ता' की उपाधि मिली। साथ ही वालाजी विश्वनाथ ने शाहू को सलाह देकर, परशुराम पंत को कैद से मुक्त कराकर उसे अपना प्रतिनिधि बनाया। बालाजी विश्वनाथ ने केवल शस्त्र बल का ही प्रयोग नहीं किया। कमज़ोरों को शस्त्र बल द्वारा महत्वकांक्षियों को ऊंचे पद देकर, तथा शक्ति शालियों के साथ सन्धियां कर अन्तः कलह को शान्त किया। दयाजीथोरात आदि वामियों का दमन किया। कान्होजी आंगरे मराठा मंडल की जलशक्ति का मुख्य सेनापति था। शिवा जी के समय से यह काम कर रहा था। इसका प्रभाव बहुत बढ़ा चढ़ा था। सीदी तथा युरोपियन लोग इसके नाम से थरथर कांपते थे। तारावाई ने कान्होजो को अपने पक्ष में कर लिया था। शाहू ने अपने कई सेनापतियों को इसका दमान करने के लिये भेजा। परन्तु कोई भी सफल न हुआ। आख़िर वालाजी विश्वनाथ नैकान में आया। वालाजी विश्वनाथ ने समय जांचकर कोंकण का प्रदेश कान्होजी को दे दिया। और कान्होजी को अपने साथ मिलाया। दैव ने वाला जी विश्वनाथ का साथ दिया. इसी समय ताराबाई के लड़के शिवा का देहान्त हो गया। इधर वाला जी विश्वनाथ ने राजाराम की दूसरी स्त्री राजसवाई और उसके पुत्र संभा जीको अपने प्रभाव में लाकर उनके दिल में यह बात बैठा दी कि तारावाई तुम्हें कैद कर अपने स्वार्थ को सिद्ध करने का यत्न कर रही है। यदि तुम शाहूजी महाराज का साथ दोगे तो तुम्हें अलग जागीर मिल जाएगी। वालाजी विश्वनाथ की यह युक्ति चल गई। ठीक इसी समय तारावाई को कैद करके वालाजी विश्वनाथ ने शाहू महाराज को मराठा मंडल का निष्कटक राजा बनाया। वाला जी विश्वनाथ ने अपनी योग्यता से शत्रुओं का दमन किया। वालाजी विश्वनाथ की इस योग्यता को देखकर १७१३ ई० में शाहू महाराज ने उसे अपना प्रधानामात्य या पेशवा बनाया। जिसने राष्ट्र की अड़चनों को दूर किया हो वही उसे संभाल सकता है।

इस समय मराठा मंडल में बाला जी विश्वनाथ को छोड़कर कोई ऐसा अनुभवी व्यक्ति न था जो मराठा मंडल को काबू में रख सके। शाहू ने बालाजी विश्वनाथ को पेशवा बनाया और अष्ट प्रधान मंडल को फिर से संगठित किया।

बालाजी विश्वनाथ ने केवल मात्र मराठा मंडल को ही संगठित नहीं किया; अपितु भारत में मराठा शक्ति के विस्तार का भी बीज डाला। बाला जी विश्वनाथ ने भारत में मराठा साम्राज्य का सूत्र पात किया। अन्तः कलह को शान्त करने के बाद यह प्रश्न उपस्थित था कि वीर मराठे सेनाओं की शक्ति को किस तरफ़ लगाया जाय।

(८)

❀ दिल्ली में मराठे ❀

मराठा मंडल में अदम्य शक्ति थी। बाला जी विश्वनाथ ने इस शक्ति को राज्य विस्तार के काम में लगाकर, दिल्ली दरबार तक मराठों को पहुंचाया था। बालाजी विश्वनाथ पहला व्यक्ति था जिस ने मुग़ली बादशाही की राजधानी में उनकी छाती पर बैठकर क्या संधिचक्र की शतरञ्ज में और क्या तलवारों के दाव पेच में उनके अभिमान को चूर चूर किया।

औरंगजेब की मृत्यु के बाद दिल्ली दरबार में नित नये झगड़े पैदा होने लगे। सरदार लोग अपनी महत्त्व काक्षाओं को पूरा करने के लिए कई तरह की दलबन्दियां बनाते थे। बालाजी विश्वनाथ ने इन परस्पर लड़ते झगड़ते सरदारों की कमज़ोरी से फायदा उठाकर दिल्ली दरबार में अपनी धाक बैठायी। बाला जी विश्वनाथ ने यह सब कुछ

कैसे किया इसका वर्णन करने से पूर्व तात्कालिक दिल्ली दरबार का संक्षिप्त वर्णन करना जरूरी हैं ।

१७१२ ई० में बहादुर शाह की मृत्यु हुई । बहादुरशाह के लड़कों में लड़ाई झगड़े होने लगे । जुल्लीकार खां की सहायता से बडा लड़का जहादारशाह गद्दी पर बैठा । परन्तु उस समय की राजनीति के मुख्य संचालक सय्यद बन्धुओ ने बादशाह का खून कर फरुख सैयद का १७१२ ई० में राजगद्दी पर बैठाया । औरंगजेब के दरबार में अब्दुलाखां (सय्यद मिया) नाम का एक योग्य शूर सरदार रहता था । उसके अनेक लड़कों में से हसनअली और हुसेनअली नाम के दो लड़के "सय्यद बन्धु" नाम से प्रसिद्ध हुए ।

हसनअली अब्दुलखांन नाम से प्रसिद्ध है । यह फौजदारी पर नियुक्त था । दूसरा भाई नीतिवान् और बुद्धिमान् था । बहादुरशाह के समय तक इन सय्यद बन्धुओं की विशेष पूछताछ नहीं हुई । परन्तु शाहजादा अजीमुश्शीन ने १७०८ ई० से हुसेनअली को बिहार प्रान्त की और १८११ ई० में अब्दुला को इलाहबाद की सूबेदारी दी । इन स्थानों पर रहते हुए इन्होंने फरुक सय्यर को सहायता देकर जहांदार शाह को गद्दी से उतार दिया । सयद बन्धु दिल्ली दरबार में चिरकाल से काम करते थे । अन्य सरदार उनसे ईर्षा करते थे । जब फरुख सैयर गद्दी पर बैठा तब अन्य सरदारों ने फरुख सैयद को इन सय्यद बन्धुओं के विरुद्ध भड़काना शुरू किया । दिल्ली दरबार की दशा शोचनीय थी । एक ओर मुसलमान सरदारों में पारम्परिक ईर्षा थी । दूसरी ओर राजपूताना के राजा भी अपनी २ बात चलाना चाहते थे । हरेक कोशिश करता था कि वह बादशाह के नाम से अपनी बात सिद्ध करे । सय्यद बन्धुओं के मुकाबले में उनका प्रतिद्वन्तद्वी निजाम मुल्मुक नाम का सरदार था । इसके पूर्वजों ने औरंगजेब के समय अपनी शूरता तथा चतुराई के लिये नाम कमाया था । इन्हीं में से मीर शहाबुद्दीन नाम का सरदार १७०७ ई० में औरंग–

जेब के नीचे इतिम्बपुर में सूबेदारी के काम पर कियुक्त हुआ था। औरंगजेब की मृत्यु के बाद बहादुरशाह ने इसे १७१० ई० में गुजरात का सूबेदार ननाया। इसी साल उसका देहान्त हो गया। इस शहाबुद्दीन का विवाह शाहजहां के वजीरम्तदुल्ला खां की लड़की के साथ हुआ। इस विवाह से, १६७१ ई० में कमरुद्दीन खां व निजाम मुल्मुल्क का जन्म हुआ था।

कुछ साल तक अयोध्या की सूवेदारी करने के सिवाय, इस सरदार ने अपने जीवन का बडा भाग दक्षिण की सूबेदारी में विताया। जबतक निजाम दक्षिण में रहा इसने शाहू महाराज को १० हजार की मनसव दिलवा कर अपने प्रभाव में रखा। शाहू से नाराज हो कर आए हुए चन्द्रसेन जाधव को अपने साथ मिला कर उसे वेदर के पूर्व का इलाका जागीर में दिया। इसी प्रकार अन्य सरदारों की मराठा मण्डल में जागीर देकर उनके द्वारा मराठा मंडल में खरू युद्ध शुरू करवाए। इतना ही नहीं चन्द्रसेन जाधव और निवालकराव रमा नाम नाम के सरदारों को साथ लेकर पूना पर १७१२ ई० में चढ़ाई भी करदी। इसी समय वालाजी-विश्वनाथ ने पूना की रक्षा करने के लिये लोहगढ़ और पुरेन्दर के किलों पर सैतन्य संग्रह शुरू किया। निजाम की ओर से आए हुए निवालकर सरदार को अपनी ओर मिला कर, निजाम की कुनीति को नहीं चलने दिया। इसी समय निजामकी बदली होकर मुरादावादकी सूवेदारी पर नियुक्ति हो गई।

दक्षिण की सूपेदारी पर हुसेनअली की नियुक्ति हुई। मराठों की बढ़ती हुई शक्ति को रोकने के लिये ही सय्यद बन्धुओं ने स्वयम् इधर आना जरूरी समझा था। दिल्लीदरबार में अब्दुल्ला काम देखता था। वाह्य शत्रुओं से वचाने के लिये हुसेनअली इधर आया था। फरुक संयद ने कई वार हुसेनअली को मरवाने की कोशिश की। जोधपुर के राजा अजीत सिंह पर आक्रमण करने के लिये हुसेनअली की अध्यक्षता से

सेना भेजी और साथ ही गुप्त पत्र द्वारा अजीतसिंह को लिखा कि इसे मरवा दो। इसी प्रकार जब दक्षिण में हुसेनअली आया तब फरुक सैय्यरने मराठों को लिखा कि वह इसका घात करें। गुजरात के सूबेदार दाउदखां पन्नी को भी इस काम के लिये भेजा। हुसेनअली को जब यह बातें पता चली तो उसने एक दम दिल्ली पहुचकर इस झगड़े को शांत करना उचित समझा। उसकी दिली ख्वाहिश यह थी कि वह मराठोंका दमन करता परन्तु अवस्थाओं से वाधित होकर उसने मराठों से संधि की। इस संधि की शर्तें वताती है कि दिल्ली दरबार का अन्तः कलह मराठों के लिये किस प्रकार सहायक सिद्ध हुआ। शर्तें यह हैं—

(१) शिवा जी के समय का सारा 'स्वराज्य' प्रदेश शाहू महाराज के आधीन किया जाय।

(२) खानदेश वर्हाड हैदराबाद कर्नाटक आदि प्रदेश जिन्हें मराठों ने हाल ही में जीता है मुगल लोग उन प्रदेशों को मराठों के आधीन कर दें।

(३) मुगल दरवार के दक्षिण प्रांतों में मराठे सरदेश मुखी और चौथाई को वसूल करे। सरदेश मुखी के बदले मराठों को चाहिये कि वह अपनी १५००० की सेना वादशाह की सहायता के लिए तय्यार रखें। चौथाई के एवज मराठे मुगलाई प्रदेशों में चोरी और डांकेजनी का प्रवन्ध करें।

(४) मराठे प्रति वर्ष वादशाह को १० लाख रुपया करदें।

(५) शाहू जी के परिवार को मराठा मंडल में सुरक्षित पहुंचाया जाय।

बाला जी विश्वनाथ ने हुसेनअली को इन्हीं शर्तों पर सहायता देनी स्वीकार की। सौभाग्य से इस समय राजपूत राजाओं की भी मराठों के साथ सहानुभूति थी। विरोध भाव न था। हुसेनअली ने यह शर्तें वादशाह का प्रतिनिधि वनकर स्वीकार की थी। इन शर्तों के अनुसार १७१२ ई० में

हुसेनअली खण्डेराव डा भाडे की अध्यक्षता में मराठी सेना लेकर दिल्ली की ओर चल दिया। दिल्ली दरबार में शोर मच गया। बादशाह ने इनका मुकाबला करने के लिये निजाम को मुरादाबाद से दरबार में बुला लिया। अजितसिंह को भी बुला भेजा। अब्दुल्ला ने हुसेनअली तक यह सब बातें पहुंचा दी। हुसेनअली ने शाहू की अधिक सेना भेजने लिये लिखा। बाला जी विश्वनाथ बाजीराव तथा बाला जी आदि मुख्य सरदारे शाहू की आज्ञा से दिल्ली की ओर चल दिये।

हुसेनअली ने बादशाह को लिख भेजा कि मेरे पास औरंगजेब के पुत्र अकबर का मुहउद्दीन नाम का राजपुत्र है। आप के दरबार में शाहू का परिवार है। आप उस परिवार को मराठो के हाथ सौंपदें। हम राजपुत्र को आप के यहा भेज देंगे। वास्तव में हुसेनअली के पास कोई राजपुत्र नहीं था। उसने इस खबर कोसच्चा साबित करने के लिए यह ढोंग शुरू किया कि जहां सेना ठहरे वहीं एक व्यक्ति को मुहउद्दीन बनाकर उसका राजपुत्र की तरह स्वागत किया जाय। धीरे २ हुसेनअली बन्हाडपुर तथा उज्जैन होता हुआ दिल्ली पहुंचा। बादशाह ने बहुत कोशिश की कि हुसेनअली किसी तरह लौट जाय। परन्तु मराठे शाहू के परिवार को लिए बिना कैसे लौटते। आखिर १७१६ ई० को सारी मंडली दिल्ली पहुंची। निजाम मुल्मुल्क ने बादशाह का साथ न दिया।

१७१६ की २३ फरवरी को हुसेनअली ने दरबारी बाड़े में बादशाह से भेंट की। अजितसिंह समीप था। बादशाह ने पूछा मुहउद्दीन कहां है? हुसेनअली ने कहा "शाहू के परिवार को छोड़ो तब मैं उसे तुम्हारे हाथ में दूंगा।" तदनुसार ३० साल से कैदी परिवार को मुक्ति मिली। दूसरे दिन घण्टों तक बात चीत होती रही लोगों की नजर में बादशाह तथा हुसेनअली का मामला सुलझ रहा था परन्तु एक दम भयंकर विक्षोभ पैदा हो गया।

बादशाह ने हुसेनअली का खून करने के लिए षड्यन्त्र रचा। यह बात खुल गयी। सय्यद अब्दुल्ला ने बादशाही सेना को लाहौरी दरवाजे पर हुकुमसिंग के अध्यक्षत्व में भेजकर, स्वय राज दरबार में प्रवेश किया। इधर हुसैनअली ने भी मराठी सेना को राजवाडे में तैनात किया। वहां आजितसिंग भी था।

बादशाह की तथा सय्यद बन्धुओं की गर्मागर्म बहस हुई। गाली गलौच तक की नौबत पहुंची। बादशाह को असह्य क्रोध आया। सय्यदों ने सारे शहर में मोर्चाबन्दी की हुई थी। २८ फर्वरी १७१९ ई० को दिल्ली शहर में भयंकर दृश्य था। शहर सेनायों का क्रीडा स्थान बना हुआ था। महम्मद अमीनखान वजीर राजवाडे की ओर जारहा था। रास्ते में मराठी सेना से उसकी मुठभेड़ होगयी। इस मुठभेड में मराठों के २०० आदमी काम आये। इधर सय्यद बन्धुओं ने बादशाह को कैदकर नए बादशाह को गद्दी पर बैठाया। दो मास के बाद फरुखसेयर का खून हो गया। जयसिंग आदि राजपूत सरदार सय्यदों के इस हत्याकांड को देखकर दंग रह गए। कहा जाता है कि केवल मात्र अजितसिंग ने अपने पूर्वजों का बदला लेने के लिये फरुखसैयर का खून करने में मराठों तथा सय्यदों को सहायता दी। बाला जी विश्वनाथ अपनी सब शर्तें पूरी कराकर जुलाई मास में सतारा लौट गया। दिल्ली की इस हलचल के सतय में निजाम मुल्मुल्क ने मराठों के साथ प्रेम पूर्वक व्यवहार रखने की कोशिश की। निजाम मुल्मुल्क मालवा का सूबेदार निश्चित किया गया। सय्यद बन्धुओं ने मराठों की सहायता से दिल्ली में क्रांति पैदाकर दरबारी सरदारो के दिलों पर मराठों का आतंक बैठा दिया। मराठों के दिल बढ़ गए। उनकी दिल्ली के शाही खजाने की ओर नजर गड़ गयी। इस यात्रा ने मराठों की विजय यात्रा का रुख बदल दिया। बाला जी विश्वनाथ का पुत्र बाजीराव स्वयं इस लड़ाई में उपस्थित था। इस सफलता के कारण शाहू महाराज तथा बालाजी विश्वनाथ का प्रभाव सब मराठे सरदारों पर छागया। लोग उनकी सत्ता तथा शक्ति को स्वीकार करने लगे। बालाजी विश्वनाथ ने मराठों की

आपस में लड़ती हुई सेनाओं को दिल्ली की विजय के लिये आतुर कर दिया।

दिल्ली से लौटकर बालाजी विश्वनाथ ने राष्ट्र के अन्तरीय शासन में कई सुधार किए। १७२० ई० में मानसिक तथा शारीरिक परिश्रम से थककर बालाजी बीमार हुआ और इस लोक से कूच कर गया। बालाजी विश्वनाथ ने मराठा मंडल में नयी क्रांति पैदा करदी। इस क्रांति ने मराठों के तेज को चमकाने में पर्याप्त सहायता दी।

—:•:—

(६)

❋"वीर पेशवा" का अदम्य साहस❋

बालाजी विश्वनाथ के बाद उसका बड़ा लड़का बाजीराव मराठा मण्डल का पेशवा नियुक्त हुआ। इसके छोटे भाई चिमणा जी आपा ने बड़े भाई का साथ दिया। बाजीराव का दिल वीरों का सा था। पिता के संग देखी हुई दिल्ली दरबार की रौनक तथा शान इसकी आंखों के सामने थी। पिता की नीति को यह भली भांति समझता था। मराठा मंडल में दो पक्ष थे। एक पक्ष स्वराज्य संरक्षा का पक्षपाती था। उसका यह कहना था कि हमें शिवाजी द्वारा स्थापित दक्षिण साम्राज्य की रक्षा करनी चाहिए। प्रतिनिधि आदि इसी पक्ष के थे। दूसरा पक्ष पेशवाओं का था। इनकी सम्मति में मराठा मंडल को अन्तःकलहाग्नि से बचाने का एक मात्र उपाय यही था कि मराठी सेनाओं की बागडोरें स्व-राज्य से बाहर मोड़ी जांय। पेशवाओं ने अपने विचार को कार्य रूप में परिणत करने का साहस दिखाया। उन्होंने बालाजी विश्वनाथ के पग चिन्हों पर चलते हुए दिल्ली के बादशाह का संरक्षक बनने का संकल्प किया। शाहू महाराज ने इस नीति को पसन्द किया। दुनिया में ऐसे राजा निराले ही होते हैं जो दूरदर्शिता से काम लेते हुए

विजय यात्राओं के प्रलोभन को जीत सकें। ऐसी हालत में तो इस प्रलोभन को दूर करना और भी मुश्किल हो जाता है जब नीचे के सेनापति इसके लिए आतुर हों। दिल्ली की अपार सम्पत्ति और अलौकिक ऐश्वर्य को देखकर किसका दिल नहीं डिगा। पठान, मुगल, राजपूत, सिक्ख तथा युरोपियन सब के दिलों को दिल्ली की लक्ष्मी ने चंचल कर दिया था। शाहू महाराज ने स्वीकृति दी और पेशवावाजीराव ने इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये तय्यारियां शुरू करदी। वीर पुरुष ही अपने दुश्मनों को भली प्रकार पहचानते हैं। वाजीराव ने १७२०—१७४० ई० तक शासन काल में निरन्तर लड़ाइयों की धूमधाम रही। दक्षिण में बसई की ओर, पोर्चगीज और युरोपियन लोग मराठा मंडल के दुश्मन थे। वाजीराव ने इन का दमन करने के लिए; चिमणाजी आपा को भेजा। चिमणाजी आपा का दक्षिण के इस भाग पर बहुत प्रभाव था।

आपा ने पराक्रम के साथ पुर्तगीजों पर कई आक्रमण कर १७३६ ई. में बसई का किला स्वाधीन किया। इस किले को सर करने में ब्रह्मेन्द्र स्वामी का भी काफी हाथ था। चिमणा जी आप्पा, दक्षिण की विजयों में व्यग्र रहा; वह उत्तर भारत की विजय यात्राओं में भाग न ले सका।

वाजीराव अपनी दिक्कतों को भली प्रकार समझता था। वह अच्छी तरह जानता था कि पुराने सरदारों के भरोसे यह नया काम नहीं चल सकता। वह यह भी समझता था कि जब तक गुजरात मालवा तथा मध्य भारत और बंगाल में अपने सरदारों को नियुक्त नहीं किया जाएगा तब तक दिल्ली तक पहुंचने का स्वप्न पूरा नहीं हो सकता।

दिल्ली में दो पार्टियों का ज़ोर था। एक वह पार्टी जो अफगानिस्तान तथा मध्य एशिया के तुराणी लोगों की सहायता से दिल्ली में अपना ज़ोर जमाना चाहते थे। दूसरी वह पार्टी जिसे हिन्दुस्थानी कहा जाता था। यह पार्टी राजपूत राजाओं की सहायता से दिल्ली दरबार में

मुगल वंश के बादशाहों की रक्षा करना चाहती थी। हिन्दुस्तान के भिन्न २ प्रांतों के सरदार लोग कभी किसी पार्टी का सहारा लेते थे कभी किसी का। बादशाह भी वज़ीरों का आश्रित बना हुआ आज इनका मुहताज है तो कल उनका। बाजीराव देखता था कि उसके पिता ने सैय्यद बन्धुओं की सहायता से तुरानी पार्टी को हैरान किया था। इसने भी यही उचित समझा कि इसे भारतवर्ष को अथवा दिल्ली सरकार को, विदेशी अफगानों के आक्रमण से बचाना है। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर बाजीराव ने भारत के भिन्न २ भागों में विद्रोह करने वाले सरदारों का दमन करने के लिए होलकर सिंधिया तथा गायकवाड आदि सरदारों को नियुक्त किया। राजपूताना के राजपूत राजाओं से प्रेम का नाता जोड़ा। मध्य भारत में बंगश आदि मुसलमान सरदारों के आक्रमण से; छत्रसाल के राज्य को बचाया। छत्रसाल की आयु ढल चुकी थी। उसने बाजीराव को इस सहायता के बदले अपना पुत्र मानकर अपने राज्य का तीसरा भाग इसके नाम कर दिया। बाजीराव ने इस स्थान पर गोविन्द पंत बुंदेले को नियुक्त किया। इन बुन्देले सरदारों ने मध्य भारत में विद्रोही मुसलमानों की एक नहीं चलने दी। स्वार्थी अफगानों को कदम २ पर रोका। इस प्रकार अनुकूल परिस्थिति पैदा करने के बाद बाजीराव ने स्वयं दिल्ली पहुंचना आवश्यक समझा।

बाजीराव के मार्ग में रुकावट डालने वाला मुसलमानों में एक ही वीर था। यह था निज़ाम मुल्मुल्क। फरुखसैयर के समय से इसकी यह कोशिश थी कि वह दिल्ली दरबार में मुख्यता प्राप्त करे। परन्तु सय्यद बन्धुओं ने इसकी एक न चलने दी। इसके बाद यह सरदार दक्षिण में चला गया। वहां जाकर इसने अपना स्वतन्त्र राष्ट्र स्थापित करना चाहा। सय्यद बन्धुओं ने अपने सरदार आलिम अली को भेजकर मराठों की सहायता से इसको पराजित किया। इतने में राजपूताना में छल कपट द्वारा सय्यद बन्धुओं का खून हो गया। अब दिल्ली दरबार में मराठों का पक्ष लेने वाला कोई न रहा। दूसरा पक्ष प्रबल होने लगा। इधर अंग्रेज़ लड़ाइयों में

व्यग्र होने के कारण बाजीराव कर्जाई हो रहा था। यही उचित समझा कि कर्जे को दूर करने तथा मराठाशक्ति को स्थापित करने के लिये दिल्ली पर आक्रमण किया जाय। दिल्ली में मराठों के राजदूत भी थे। पूरी तय्यारियों के साथ ८० हजार सेना साथ लेकर बाजीराव विजय यात्रा के लिए निकल पड़ा। शाहुजी महाराज ने सब सरदारों को इस यात्रा में सम्मिलित होने के लिए प्रेरित किया। जब इस सवारी की खबर बादशाह तक पहुंची तब वहां भी तय्यारियां होने लगीं। बादशाह ने निजाम मुल्मुल्क जैसे वीर सरदारों को एकत्रित करना शुरू किया। खान दौरान मुजफ्फरखान कामीरहुसेन और सादतखां आदि अपनी २ सेनाओं के साथ तय्यार हो गए। बाजीराव की सेना १७३७ ई० में यमुना के किनारे पहुंची। अयोध्या के सूबेदार ने दिल्ली दरबार में खबर भेजी कि मैंने सारी मराठी सेना को नष्ट भ्रष्ट कर दिया है। डरने की कोई बात नहीं। उधर बाजीराव की सेना धीरे २ दिल्ली की ओर बढ़ने लगी।

इधर निजाम मुल्मुल्क ४० हजार की सेना लेकर बादशाह की सहायताके लिए दुआवा में आया। निजाम, हैदराबाद में अपने पीछे अपने लड़के नासिर जंग को छोड़ आया। मराठों ने निजाम को लाचार कर भूपाल के स्थान पर घेर लिया। दिल्ली दरबार से तो सहायता आ नहीं सकती थी। नासिरजंग से मदद की आशा थी; परन्तु बाजीराव ने चिमणा जी आपा को ताकीद कर दी थी कि वह उधर से सहायता न पहुंचने दे। दोनों ओर से निराश निजाम देर तक मुकाबला नहीं कर सका। भूपाल में देरतक रहना मुश्किल हो गया। सेना में त्रास फैलने लगा। बेबस होकर निजामने आनन्द राव पण्डित के द्वारा सन्धि की। इस संधि द्वारा बाजीराव ने निजाम से मालवा आदि में मराठों के चौथे और देशमुखी के हक को स्वीकार कराया। चम्बल और नर्मदा के बीच में मराठों का बे रोक टोक प्रवेश हो गया। स्थान २ पर योग्य सरदारों को नियुक्त करके १७३८ ई० के जुलाई मास में बाजीराव पूना को लौट गया।

बाजीराव के लौठते ही नादिरशाह की विजय मात्रा के कारण दिल्ली दरबार में फिर सनसनी फैल गई। भूपाल की लड़ाई केबाद से निज़ाम का दम टूट गया। इसने कई बार दिल्ली दरबार में मुख्यता प्राप्त करनी चाही परन्तु हिन्दुस्तानी पार्टी ने उसकी एक भी न चलने दी। आखिर निराश होकर उसने नादिरशाह को भारत पर आक्रमण करने के लिये निमन्त्रण दिया। इन दिनों अयोध्या के सूबेदार दिल्ली दरबार में वज़ीर थे। उसकी इस निज़ाम से अनबन थी। नादिर ने अभी आक्रमण किया ही था कि हैदराबाद में नासिर जंग ने बिद्रोह कर दिया।

निज़ाम को उधर लौटना पड़ा। वृद्ध होने से वह नादिरशाह की पूरी सहायता भी नहीं कर सका। हां जब बादशाह ने उसे नादिर शाह का मुकाबला करने के लिए भेजा तो उसने नादिरशाह की सेना को आगे बढ़ने से नहीं रोका। इतना ही नहीं, अपितु अयोध्या के सूबेदार को भी विष देकर मरवा दिया। नादिरशाह ने निष्कंटक मैदान में प्रवेश किया।

बाजीराव तक यह सब समाचार पहुंचे। बाजीराव ने निज़ाम मुल्मुल्क के पुत्र नासिरजंग को अपनी ओर मिलाकर उस समय के राजपूतों तथा हिन्दुस्थानी मुसलमानों से अपील की कि हम सब को विदेशी नादिरशाह का विरोध करना चाहिए। बाजीराव की इस अपील का राजपूतों तथा दिल्ली के दरबारियों ने हां में जबाब दिया। अपने पुत्र को अपने विरुद्ध विद्रोही बनता देख कर, दक्षिण में अपनी सभा को बचाने के लिये निज़ाम बीचमें ही उधर लौटा। दिल्ली दरबारमें निज़ाम के बड़े लड़के गाजिउद्दीन ने मराठों की सहायता से शक्ति प्राप्त करनी शुरू की। इतने में समाचार आया कि नादिरशाह लौट गया। बाजीराव ने भी इस समाचार को सुनकर उत्तर की दूसरी यात्रा को स्थगित कर दिया। इसी समय १६४० ई० में बाजीराव का देहान्त हो गया। बाजीराव ने अपनी स्कीम को पूरा किया। इसने जहां एक ओर अपने

कर शत्रुओं को दबाया; वहां विदेशियों को पराजित करने का भी साहस दिखाया। बाजीराव ने दिल्ली दरबार में प्रभाव जमाकर भारत को उत्तरी विदेशी आक्रान्ताओं के अत्याचारों से बचाने का उपक्रम बांधा। उसने भारत के मुसलमानों में "हिन्दुस्थान हमारा है" का भाव संचारित करना चाहा। परिणामतः कुछ अंश तक इस में सफलता भी हुई। इसी प्रकार दक्षिण में भी चिमणाजी ने युरोपियन तथा अरब के विदेशियों को भारत में नहीं बैठने दिया। इस दृष्टिसे दोनों भाइयों का साहस सराहनीय है।

(१०)

❋ सतारा से पूना ❋

मराठा मंडल की राजधानी सतारा थी। शाहू महाराज के मुख्य दफ्तर यहीं थे। परन्तु बाजीराव पेशवा के समय से सरकारी दफ्तर सतारा से उठकर पेशवाओं के साथ पूना में आगए। पेशवाओं ने पूना को राजधानी बनाया। देश में दो राजधानियां बन गयी। एक छत्रपतियों की; दूसरी पेशवाओं की। इन दो राजधानियों ने मराठा मंडल के पराक्रमी सरदारों में ईर्ष्या के भावों को जागृत किया। बाजीराव पेशवा ने जिन नए २ सरदारों को खड़ा किया था उन्होंने अपने २ प्रान्तों में अलग २ शानदार राजधानियां बनाली। जब तक बाजीराव पेशवा जैसे क्रान्तिकारी शूर पुरुष रहें, तब तक ये सरदार स्वतन्त्र सरदार नहीं बने। अन्य सरदार भी पेशवाओं के पूना के आलीशान दरबारों को देखकर मौका देखते थे कि कब स्वतन्त्र हों। बाजीराव पेशवा जिन सरदारों की सहायता से विजययात्राओं में सफल हुआ था वे सरदार अपनी २ शक्ति को पहचानने लगे। जबतक पेशवा के अलग दफ्तर नहीं खुले थे, और वह छत्रपति के नीचे काम करते थे; तबतक सब

सरदार यही समझते थे कि हम सब छत्रपति के सेवक हैं। छत्रपति के सिंहासन के लिए लड़ाई झगड़े होते थे तो राज-घराने के सभ्यों में। ऐसी दशा में बाहर से होने वाले भयंकर आक्रमणों को रोकने के लिए छत्रपति के भगवा झंडे की रक्षा करने के लिये सब सरदार एक होजाते थे। परन्तु अब अन्तःकलह का नया और विस्तृत क्षेत्र पैदा होगया। पूना के पेशवाओं के अनुकरण में अन्य सरदारों के दिल में ईर्ष्या की आग सुलगने लगी। रामदास या शिवाजी जैसे निष्काम राष्ट्र सेवक उठते हुए सरदारों के दिलोंको विनय द्वारा शान्त कर सकते थे; परन्तु पेशवाओ जैसे शानदार महत्वकाङ्क्षी लोग इस आगको शान्त नहीं कर सके।

बालाजी विश्वनाथ ने जिस कलहाग्निको शान्त करने का यत्न किया था वह इसमें पूर्ण सफल न हो सका। कुछ समयतक बाजीरावके नेतृत्व में मराठी सेनाएं एक भावसे प्रेरित होकर दिल्ली की ओर बढ़ती गई। परन्तु वह शान्त कलहाग्नि शीघ्र ही महत्वाकांक्षियों के दिलों में ईर्ष्याग्नि के रूप में परिणत होगयी। इस ईर्ष्याग्नि के प्रचण्ड होने का मुख्य कारण बाजीराव पेशवा में राजनैतिक प्रबन्ध की योग्यता का न होना था। देश जीते परन्तु उनका प्रबन्ध नहीं किया। शिवाजी महाराज ने महाराष्ट्र के प्रदेशों को भिन्न २ सरदारों से छीनकर, उन्हें महाराष्ट्र के योग्य व्यक्तियों के हाथ में सौंप दिया था। वही सरदार उसका प्रबन्ध करते थे। अष्टप्रधान मंडल ने मराठा सरदारों को एक सूत्र में ग्रथित किया था।

उत्तरी भारत, मध्य भारत तथा मालवा, गुजरात, इन्दौर आदि में नये २ सरदारों और राज्यों को स्थापित किया गया; परन्तु इन सरदारों तथा राज्यों को एक सूत्र में ग्रथित करनेवाला कोई कानून बाजीराव पेशवा को नहीं सूझा। मराठा मंडल के प्रधान मंडल के नीचे ही इन भिन्न २ प्रान्तों का प्रबन्ध रखा गया। पूना दरबार ही इन भिन्न २ मराठा सरदारों और राज्यों का भाग्य विधाता बना, इन सरदारों की पूना दरबार में [illegible]

आई न थी। वह सरदार राजकारोबार में हिस्सा नहीं ले सकते थे, वह एक तरह से अपने आपको पूना दरबार का आधीन राजा समझते थे। जिस प्रकार युरोप में रोम नगरी देरतक रोम साम्राज्य के भिन्न २ प्रान्तों के शासकों को नियन्त्रण में नहीं रख सकी, उसी प्रकार पूना शहर भी इन सरदारों को देरतक अपने प्रभाव में न रख सका। परिणाम यह हुआ कि मराठा मंडल को बनानेवाले सरदार ही इसके दुश्मन—या विदेशियों के कठपुतली बने। पूना में राज दरबार के आते ही छत्रपतियों की रही सही [illegible] भी जाती रही। बाजीराव पेशवा की इस राजनैतिक अयोग्यता के कारण मराठा जाति को भयकर आपत्तियों का सामना करना पड़ा। यदि बाजीराव ठीक समय पर सब सरदारों को पूना दरबार के मंडल का सभ्य बना लेता तो सेंधिया और गायकवाड़ के महाराजा विदेशियों का सहारा न लेते। ख़ैर जो होना था वह हो चुका। साहसी महत्वाकाक्षी बाजीराव ने 'पूना' में पेशवा का शनिवार बाड़ा कायम कर महाराष्ट्र मंडल पर शनिचर के ग्रह को निमन्त्रित किया।

(११)

❀ बालाजी बाजीराव व नाना साहेब ❀

बाजीराव पेशवा की मृत्यु पर, उसका बड़ा लड़का बालाजी बाजीराव व नाना साहेब १८ साल की उमर में महाराष्ट्र का पेशवा बना। नाना साहेब का जन्म १७२१ ई० में हुआ था। इनके दो छोटे भाई थे। रघुनाथराव और जनार्दन पंत। जनार्दन पन्त योग्य और होनहार था। परन्तु वह बाल्यकालमें ही इस लोक से चल बसा। रघुनाथराव पराक्रमी, परन्तु अदूरदर्शी था। नाना साहेब का विवाह बाल्यकाल में ही गोपिका बाई के साथ हो गया था। विवाह के [illegible] वर्ष बाद उत्तर भारत की विजय यात्रा के [illegible] हुआ। नाना साहेब में अपने

दादा के सब गुण पूरे उतरे थे। नाना साहेब में बालाजी विश्वनाथ की तरह राजनीतिज्ञता और वीरता की यमुना और गंगा का पवित्र मेला था। नाना साहेब की दादी राधाबाई ने नाना साहेब के शिक्षण तथा रहन सहन पर विशेष ध्यान दिया था।

नाना साहेब यद्यपि अपने पिता बाजीराव की तरह उनके साथ युद्ध के मैदानों में नहीं गया; परन्तु दक्षिण भारत में अपने चाचा चिमणा जी आप्पा के पास रहकर; वसई आदि के युद्ध प्रसंगों में उसने काफ़ी अनुभव प्राप्त किया।

नाना साहेब की अपने पिता से नहीं बनती थी। इसका कारण यह था कि बाजीराव पेशवा का मध्यभारत से लाई हुई मस्तानी रखेली के साथ अनुचित सम्बन्ध था। नाना साहेब ने जो कुछ सीखा था वह सब चिमणा जी आपा से। नाना साहेब बाल्यकाल की शिक्षा के महत्व को अच्छी तरह समझता था। समय २ पर उसने रघुनाथराव और जनार्दन को जो चिट्ठियां लिखी हैं उनसे हमारे पाठकों को निम्नलिखित उद्धरणों से उस समय की शिक्षा पद्धति का पता चलेगा है। १७४२ में नाना साहेब ने रघुनाथ राव को इस प्रकार लिखा:—

"मेरा आशीर्वाद बांचना। चलते समय जिन बातोंकी ओर विशेषध्यान आकृष्ट किया था उन्हें याद रखना। रघुवंश, विदुरनीति, चाणक्यनीति का नियमपूर्वक चिन्तन किया करो; विराट् पर्व से आगे महाभारत का खाली पाठमात्र बांचते रहना। केवल घुड़सवारी में ही न लगे रहना, बड़े भाऊ (सदाशिवराव भाऊ) की आज्ञा में रहना। भाऊ के साथ ही भोजन आदि करना। क्षुद्र मनुष्यों के साथ कभी सहवास मत करना, शरीर के स्वास्थ्य का ख्याल रखना। भाऊ के साथ ही घुड़सवारी आदि के काम सीखने समय के अनुकूल, आयु के योग्य वेष धारण करना। देवपूजा एकान्त में मौन व्रत धारण करके थोड़े समय तक करनी। सावधान होकर रहना। राधाबाई औरकाशीबाई के पास शिक्षा के लिए जाते रहना।" *

जिस समय यह चिट्ठी लिखी थी उस समय रघुनाथ की आयु ८ वर्ष की थी। इस प्रकार की गृह शिक्षा द्वारा बालकों के हृदयों को संस्कृत किया जाता था। धार्मिक और व्यावहारिक शिक्षा को परस्पर सम्बद्ध बनाया गया था। आजकल की शिक्षा पद्धति की व्यवहार हीनता को देखते हुए इस शिक्षण पद्धति की प्रशंसा किए बिना हम नहीं रह सकते।

नाना साहेब के मुख्य सहायक कार्यकर्ताओं में सदाशिवराव भाऊ भी था। यह चिमणाजी आपाका लड़का नाना साहब का भाई था। चिमणाजी आपा के साथ दक्षिण की कई लड़ाइयों में उपस्थित रहा था, १७४२ ई० में चिमणाजी आपा की मृत्यु के बाद दक्षिण का काम इसीको सौंपा गया। सदाशिवराव भाऊ ने १७४६ ई० में १६ वर्ष की आयु में कर्नाटक प्रांत पर चढ़ाई कर विजय प्राप्त की। नाना साहब पेशवा बना; इसके सामने कई अड़चन थी। दिल्ली दरबार की अड़चन तो थी ही, परन्तु असली अड़चन अपने भाइयों की ओर से थी। यह बालाजी बाजीराव पेशवा के सामने दबना नहीं चाहते थे।

नागपुर के भोंसले—समय २ पर स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करने के लिए मुसलमान सरदारों तक से सहायता लेने में संकोच नहीं करते थे। बंगाल के अलीवर्दी खां आदि सरदार दिल्ली दरबार के इशारे पर मराठा मंडल में फूट पैदा करने में कमी नहीं करते थे। इस अन्तः कलह के साथ २ नाना साहेब के ऊपर ऋण का भारी बोझा था। बाजीराव पेशवा ने बीसियों लड़ाइयां लड़ी, अनेक प्रादेश जीते—परन्तु किसी का स्थिर प्रबन्ध नहीं किया। ऋण लेकर लड़ाइयां की गईं; परिणाम यह हुआ कि जब बाजीराव का देहान्त हुआ तब पेशवा पर भारी कर्ज था। उत्तमर्ण लोग निरन्तर तकाजा करते थे। नाना साहेब ने सबसे पहले इसे दूर करना आवश्यक समझा। इसका एक मात्र उपाय यह था कि पेशवाओं के आधीन प्रादेशों में वसूली ठीक तरह की जाय। नाना साहेब हिसाब किताब में पक्का था। वह यद्यपि अपने पिता की तरह भारी योद्धा था

परन्तु प्रबन्ध करने में विशेष कुशल था। सबसे पूर्व गायकवाड़ आदि प्रदेशों की वसूली को नियतकर, ऋण को दूर करने की कोशिश की चतुराई के साथ शाहू जी की मध्यस्थी से, महाराष्ट्र में कोल्हापुर और सतारा के राजाओं को एक राजधानी बनाने की कोशिश की। कुछ समय बाद इसमें सफलता भी हुई। नाना साहेब के २० वर्ष के कार्य को दो भागों में बांट सकते हैं। प्रथम भाग १७४९ ई० तक है। दूसरा १७५०—१७६१ तक। पहले ९ वर्षों में नाना साहेब शाहू महाराज की ओर से काम करता था। शाहू महाराज की मृत्यु के बाद ताराबाई ने फिर से रामराजा को आगे करके झगड़ा शुरू करना चाहा। इसके लिये गायकवाड़ के महाराज से भी सहायता ली। गायकवाड़, पेशवा से नाराज़ था। क्योंकि पेशवा ने राष्ट्रीय कर्ज़ को पूरा करने के लिए उसके गुजरात प्रदेश की आमदनी को अपने अधिकार में किया था।

इसी समय पेशवा ने गायकवाड़ को कैदकर उससे शर्तें स्वीकार कराई। इतने में ताराबाई का देहान्त हो गया। इस प्रकार अन्तःकलह तथा कर्ज़ के बोझ को दूरकर पेशवा ने उत्तर भारत की ओर ध्यान दिया। जो विजय प्राप्त कीगई थी, वह नाना साहबकी सम्पत्ति थी। मराठों की शक्ति तबतक स्थिर नहीं हो सकती जब तक पंजाब की सरहद पर अफगानिस्तान के आक्रमण को रोकने का उचित प्रबन्ध न किया जांय। बाजीराव पेशवा के वीर मराठे दिल्ली तक पहुंचे थे। नाना साहेब ने उन्हें अटक तक भेजा। उत्तरी भारत की इन विजय यात्राओं के लिये अपने छोटे भाई रघुनाथ राव को सेनापति नियुक्त किया। पेशवा स्वयं पूना में रहा। सदाशिवराव भाऊ को दक्षिण कर्नाटक में उठते हुये शत्रुओं को दबाने के लिये नियुक्त किया। नाना साहेब ने पूना में रहकर मध्य हिन्दुस्तान मालवा झांसी तथा निजाम के राष्ट्रों में शत्रु को उठने नहीं दिया। इस प्रकार १७४१—४२ और ४३ के सालों में मध्य भारत में अपना प्रभाव जमाकर नाना साहेब ने धर्मस्थानों तथा तीर्थों की रक्षा करनी शुरू की। नाना साहेब समझता था कि जबतक हिन्दुओं के या उसकी प्रजाओं के तीर्थ स्थान सुरक्षित नहीं हैं उन्हें आराम नहीं मिल सकता। नाना साहेब

धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति था। यद्यपि नाना साहेब की ब्रह्मेन्द्र स्वामी से नहीं बनी। क्योंकि ब्रह्मेन्द्र स्वामी दरबार का उत्तमर्ण था। परन्तु नाना साहेब ने नारायण दीक्षित नाम के काशी के प्रसिद्ध सन्यासी को अपना धार्मिक गुरू बनाया था। नारायण दीक्षित वाला जी विश्वनाथ के समय से सन्त मंडली के सिद्ध साधु थे। इन्हीं की आध्यात्मिक शिक्षा द्वारा नाना साहब ने अपनी आत्मिक उन्नति की। इस प्रकार घरेलू मामलों की ओर से शीघ्र ही निश्चिन्त हो, नाना साहेब तत्परता के साथ उत्तर भारत की ओर बढ़ने के लिए कटिबद्ध हो गया।

(१२)

❀ अटक पर भगवा झंडा ❀

हम देख चुके हैं कि किस प्रकार, १७३८ ई० में अफगानिस्तान की ओर से नादिरशाह ने आक्रमण किया था। यह भी देख चुके हैं कि दिल्ली दरबार में किस प्रकार दो पार्टियां बन गई थी। तुरानी पार्टी ने स्वार्थों को सिद्ध करने के लिए विदेशी राजा को निमन्त्रित करने में भी संकोच नहीं किया। इसी पार्टी के कुछेक व्यक्तियों ने निजाम मुल्मुल्क तथा रुहेले सरदार नजीबुदौला तथा रुहेलखंड के रुहेलों ने नादिरशाह के उत्तराधिकारी अब्दाली को भारत में आक्रमण करने के लिये निमन्त्रित किया। इस वीर अफगान बादशाह ने मुगल बादशाही को हथियाने के लिए क्रमशः १७४८, १७५१, १७५६, १७५७ और १७५९ और १७६१ में भारत पर पांच चढाइयां की। उत्तर हिन्दुस्तान में सिक्ख लोगों ने इस विदेशी बादशाह को काफी तंग किया; परन्तु वे लोग संगठित न थे अतः इसका देर तक मुकाबला न कर सके। दिल्ली दरबार के बादशाहों में जीवन ही न था। सदियों से पराश्रित होने के कारण राजपूताना के राजपूत राजाओं के दिल टूट चुके थे। इस विदेशी

आक्रमण से स्वदेश को बचाने की यदि किसी जाति में शक्ति थी तो केवल मात्र मराठों में। यदि किसी जाति के दिल में अटक तक अपने एक छत्री राज्य को स्थापित करने की उमंग थी तो इसी जाति के वीर सिपाहियों में। इस समय देश में एक ही जाति थी जो दक्षिण और उत्तर में एक साथ विदेशियों का मुकाबला कर रही थी। हिन्दुस्तान में रहने वाले सब लोग आत्मरक्षा के लिए इसी ओर टकटकी लगाए हुए थे। दिल्ली के बादशाह ने अपने सिंहासन की रक्षा करने के लिए इन्हें ही निमन्त्रित किया।

नाना साहेब ने राष्ट्र की इस आवाज को सुना और अपने छोटे भाई रघुनाथराव को इस काम को पूरा करने के लिये भेजा। वीरता की उमंग में अलौकिक साहस और पराक्रम के साथ यह वीर पुरुष २०-१२-१७५२-१७५३; १७५३-१७५५ लाहौर तक पहुंचकर १७५६-१७५८ ई० में तीसरी चढ़ाई अटक तक की। इन लड़ाइयों में कई वीरपुरुष काम आए; कई वार मित्रों ने भी धोखा दिया परन्तु वीरता के आवेश में आविष्ट रघुनाथ राव ने १७५८ ई० के दिन नाना साहेब की सेवा में यह पत्र लिखकर अपने दिल को सन्तुष्ट किया:—

"सरहिन्द आदि स्थानों के अफगान सूबेदारों का दमन करके, रघुनाथ राव १७५८ ई० में लाहौर पहुंचा। सर हिन्द में अब्दाली के पक्षपाती, अब्दुस्सयदखान रुहेले को कैदकर रघुनाथराव ने अफगान सरदारों पर आतंक बैठा दिया।"

लाहौर के अफगान सरदारों ने देखा कि उनमें मराठों के साथ लड़ने की ताकत नहीं है। यह देखकर जहानमाज, तैमूरशाह को अपने साथ लेकर, अफगानिस्तान की ओर चल दिया। रघुनाथ राव ने अटक तक उसका पीछा किया। उसकी भागती हुई सेना का पीछा किया और सामान सम्पत्ति लूटी तथा सिन्धु नदी तक का सारा देश अपने हाथ में किया।

७५ लाख रुपये लेने का इकरार कर पंजाब प्रांत अदीनाबेग के हाथ में सुपुर्द किया। वर्षा शुरू होने पर रघुनाथराव अपने देश को लौटा।

१७५८ ई० के अप्रैल मास में रघुनाथराव ने मराठा मण्डल के सब मुख्य सरदारों को यह लिख भेजा। लाहौर मराठों का होगया। जहानबाज़ मैदान छोड़कर, अफगानिस्तान की ओर भाग गया। हमारी सेनाएं उसका पीछा कर रही है। पेशवा को भी इसी तरह का पत्र लिखकर उसके सामने काबुल तथा अफगानिस्तान को जीतने का प्रस्ताव उपस्थित किया।

परन्तु रघुनाथराव की यह विजय यात्राएं क्षणिक थी। उत्तरी हिन्दुस्तान के प्रदेशों को जीत तो लिया था परन्तु वह उनका उचित प्रवन्ध नहीं कर सका था। मराठा सरदारों में ही कई सरदार लूट तथा सम्पति के प्रलोभन को न रोक सके। उनके पारस्परिक झगड़ों तथा ईर्ष्या को निपटाने वाले कोई न था। रघुनाथराव के उग्र स्वभाव ने राजपूतों को सहानु भूति को खो दिया। जिस प्रकार बाजीराव पेशवा ऋणी हो गया था उसी प्रकार विजित प्रदेशों में सुप्रबंध तथा व्यवस्था न होने के कारण नाना साहिब की अभिलाषाएं भी पूरी न हो सकी। दिन प्रतिदिन राष्ट्र पर कर्ज़ बढ़ता गया। उत्तरी भारत के मराठा सरदारों में अफगान द्रोहियों के सम्पर्क के कारण देश द्रोहिता कीबी मारी फैलने लगी। रघुनाथ राव न तो इस बीमारी को पहचान सका और नहीं उसमें इतनी योग्यता थी कि वह इस का इलाज करे।। क्षणिक विजय की प्रसन्नता के आवेशमें अपने आप को सन्तोष देकर धन्यमाना दिया। परन्तु अदूरदर्शिता के स्वभाव के कारण राष्ट्र के भविष्य की ओर ध्यान नहीं दिया।

रघुनाथराव की इस असावधानी के कारण मराठा मंडल तथा भारत राष्ट्र पर आपत्ति के पहाड़ टूट पड़े। रघुनाथराव ठीक समय पर द्रोहियों का दमन न कर सका; फल यह हुआ कि—वह स्वयं भी उनके चंगुल में फंस गया।

—:०:—

(१३)

❀ राष्ट्रभक्त—और राष्ट्रद्रोही ❀

Even the bettle of Panipat was a triumph and a glory for the Marathas. They fought in the cause of "India for the Indians"

While the great Mohamden Prinees of Delhi, of Oud and the Deceen stood aside, intriguing, and trimming: And though the Marathas were defeated Vietorious Afgaus retired and never again interefared in the affairs of Indis.

Major evens well.

इस समय तक प्रायः जितने भी भारतीय इतिहास लिखे गए हैं उन में यही लिखा जाता है कि पानीपत की लड़ाई भारतीय मुसलमानों और भारतीय हिन्दुओं में थी। भारतीय बालकों को बाल्पकाल से ही सिखाया जाता है कि तुम्हारे पूर्वज सदा से परस्पर लड़ते आए हैं। उनमें कभी समझौता हो ही नहीं सकता। भारतीय सरकारी विद्यालयों तथा महा विद्यालयों में इसी दृष्टि से इतिहास पढ़ाया जाता हैं।

ऊपर जो उद्धरण लिखा गया है उससे पता लगता है कि निष्पक्ष पात युरोपियन एतिहासिक की दृष्टि में पानीपत की लड़ाई राष्ट्र भक्तों और राष्ट्र द्रोहियों का युद्ध था। लेखक की सम्पति में मराठे केवल हिन्दुओं के प्रतिनिधि नहीं थे; अपितु इन सब शक्तियों और सरदारों के प्रतिनिधि थे जो भारत वर्ष को तथा भारतवर्ष की राजधानी दिल्ली को विदेशी अफ़गानों के आक्रमण से बचाना चाहते थे। इस प्रसंग में हम पानीपत के उद्योग पर्व का वर्णन करते हुए बताएंगे कि कौन २ वीर देश भक्त थे और कौन २ देश द्रोही। इस भाव को स्पष्ट करने के

लिए अब्दाली की पूर्व विजय यात्राओं का संक्षिप्त वर्णन करना आवश्यक है।

नादिरशाह ने दिल्लीपर आक्रमण कर, कमजोर मुगल बादशाहों को अपने आधीन कर, सिन्धु नदी तक अधिकार कर लिया था। इसके बाद अहमदशाह दुर्रानी अब्दली ने पंजाब प्रान्त पर आक्रमण कर अपना अधिकार जमाना चाहा। भारतवर्ष में फिर से अफ़गान वंश की स्थापना करने के लिए इस अफ़गान सरदारने ५ चढ़ाइयां कीं। भारत में रहने वाले पठान अफ़गानों ने इसे समय समय पर पर्याप्त सहायता दी।

अहमदशाह दुर्रानी का जन्म १७२४ ई० में हुआ था। दुर्रानी ने शुरू से ही नादिरशाह की सेना में चाकरी की। १७४८ ई० में नादिरशाह की मृत्यु के पीछे अफ़गानिस्तान का राज्य अहमदशाह दुर्रानी को मिला। इसने शहानवाजखां को शहावल्लीखान का खिताब देकर, अपना वजीर बनाया। पानीपत की लडाई में यह शहावल्लीखा दुर्रानीका दायां हाथ था। नादिरशाह की कमाई हुई सारी सम्पत्ति दुर्रानी को मिली अत: उसे विजय यात्रा करने के लिए रुपयों की अड़चन नहीं हुई। खाली सेना को काम में लगाने के लिए पेशावर पर हमला किया और लाहोर के देशद्रोही अधिकारियों के निमन्त्रण पर पंजाब की ओर कूच किया।

दिल्ली दरबार के वजीरखानडौरान को मृत्यु के पीछे कमरुद्दीनखान बादशाह का वज़ीर बना। इस वजीर ने शहीनवाजखान के सरदार को पंजाब का सूबेदार बनाकर भेजा। शहानवाजखां तथा उसके भाई की आपसमें नहीं बनी। इस पारस्परिक लड़ाईसे फायदा उठाकर, अदीनाबेग नाम के सरदार ने अपना काम सिद्ध किया। इसी ने अब्दाली को भारत में निमन्त्रित किया। यह लाहौर के पास सड़कपुर गांव का रहने वाला था। धीरे२ दरबार में उन्नति कर रहा था। नादिरशाह के आक्रमण के समय अदीना-बेग सुलतानपुर में हाकिम था। सरहद के धन्यों से इसे काफी परिचिति थी। इस अदीनाबेग ने पंजाब के अधिकारी दोनों भाइयों में से बड़े को

अब्दाली की सहायता द्वारा सूबेदार बनाने की आशा दिलाकर इसकी सूचना दोनों तरफ भेजदी। कमरुद्दीनखां ने इसका विरोध किया। परन्तु अब्दाली मौका देख रहा था। उसने एकदम १७४८ ई० में पेशावर से आगे बढ़ कर मुलतान प्रान्त का अपने आधीन कर लिया। शहानवाजखान इसका विरोध करने के लिये आगे बढ़ा, परन्तु पराजित होकर लौटा। १२ जनवरी को अकाली ने लाहौर अपने आधीन कर लिया। कमरुद्दीन खां ने शाहजादा अहमदशाह की सहायता से सर हिन्द स्थान पर अब्दाली को हराया। इसी स्थान पर अचानक तम्बू में तोप का गोला गिरा। कमरुद्दीन खां निमाज पढ़ रहा था, वह यमलोक को पहुंचा दिया गया। इतने में कंधार के झगड़ों के कारण अब्दाली स्वदेश को लौट गया। पंजाब का काम कमरुद्दीन खां के लड़के मीरमन्नू को मिला। उसने अन्तिम दम तक अब्दाली को भारत में आगे नहीं बढ़ने दिया। इधर बादशाह की मृत्यु का समाचार सुन कर शाहजादा दिल्ली की ओर आया। उसने निजाम मुलमुल्क को दक्षिण से दिल्ली बुलाया। परन्तु २१ मई १७४८ ई० को निजाम का देहान्त हो गया। तब लाचार होकर सफ़दर जंग को अपना वज़ीर बनाया और गाजीउद्दीन को दरबार में बख्शीगिरी का अधिकार दिया।

इधर मराठे वीर भी दरबार में अपना अधिकार बढ़ा रहे थे। पठान लोग गंगाजमुना के बीच में अयोध्या लखनऊ आदि प्रादेशों में अली-मुहम्मद के नेतृत्व में उत्पात मचाते थे। सफदरगंज ने मराठों के साथ मिल कर अलीमहम्मद के तीनों लड़कों की पारस्परिक अनबन से फायदा उठा कर रुहेलखण्ड में अपना अधिकार जमाया। इसी समय महम्मद शाह की मृत्यु हो गई। बादशाही की रक्षा कैसे हो? अदोनाबेग तथा रुहेले पठान सरदार दिल्ली में फिर से पठान वंश को स्थापित करना चाहते थे। सफदर जंग तथा गाजीउद्दीन पठानों के शासन को नही चाहते थे। दोनों ने भारत को इन बिदेशी पठानों के आक्रमण से बचाने के लिये १७५० ई० में मराठों के साथ एक अहदनामा किया।

मराठों की ओर से इस पर हस्ताक्षर करने वाले जयापा सिंदे और मल्हार राव होलकर थे। इसकी दोही शर्तें थी:-

१. ठठा मुलतान पंजाब राजपूताना रोहेल खण्ड में मराठी फौज के खर्च के लिये मराठों को चौथाई वसूल करने का अधिकार दिया जाय।

२. मराठों को चाहिये कि वह दिल्ली की बादशाही को अब्दाली तथा सिन्ध के अमीरों और रुहेलों के आक्रमण से बचाए।

इस इकरार के कारण मराठों और अब्दाली का प्रत्यक्ष मुकाबला ठन गया। दरबार में भी दो पक्ष हो गए। एक पक्ष इस अहदनामे को मानता था, दूसरा इसके विरुद्ध था। मराठों ने शिन्दे की सहायता से रुहेलखण्ड को जीत लिया। पंजाब के उत्तर भाग में रुहेलों तथा पठानों की नहीं चलने दी। अब्दाली ने कईवार चढाइयां करके अपना अधिकार जमाना चाहा, परन्तु सिक्खों तथा मराठों की जंगलों तथा पहाड़ों में रहने वाली सेनाओं ने उसके पैर नहीं जमने दिए। मल्हारराव होलकर तथा शिन्दे ने सफदर जंग तथा गाजीउद्दीन के साथ मिल कर, सारे उत्तर भारतवर्ष में अपना तेज प्रकट किया। परन्तु मराठों की इस विजय यात्रा में एक ही कमी थी। वह कमी अव्यवस्था की थी। अन्नजी हिंगणे, मल्हारराव होलकर, तथा शिन्दे आदि में अनबन हो गई। इनकी अड़चनों को सुलझाने वाला कोई न था। पेशवा दक्षिण की लड़ाइयों में व्यग्र था। उत्तर भारत में प्रभावशाली नेता के विना काम नही चल सकता था।

इस सुलगती आग को शान्त करने के लिए रघुनाथ राव को १७५२ ई० में पेशवा ने उत्तर हिन्दुस्थान में भेजा। रघुनाथ राव का स्वभाव तीव्र था, वह इस झगड़े को न निपटा सका, जाटों तथा राजपूतों से भी अनबन हो गई। जबतक रघुनाथ राव स्वयं दिल्ली में रहा तबतक जाट तथा राजपूत चुप रहे, परन्तु उसके जाते ही वे लोग भी मराठों के विरोध

में खड़े हो गये। मराठी सेना की कम संख्या को देखकर, अफगान पक्ष ने अब्दाली को निमन्त्रण दे दिया। इसबार निमन्त्रण देने वाले सरदार का नाम नजीबुद्दौला था। दूसरी ओर गाजीउद्दीन तथा अवध के वज़ीर दक्षिण के मराठों की सहायता से दिल्ली दरबार की रक्षा कर रहे थे। इस चहल पहल में एक वीर के वलिदान ने चिरकाल से दूर दूर रहकर, मुकाबला करने वाली सेनाओं को पानीपत की लड़ाई में आमने सामने ला खड़ा किया। यह वीर था "दत्ता जी शिंदे।" १७६० ई० में अब्दाली से लड़ाई करते हुये यह सरदार मारा गया। रोमांचकारी वलिदान का समाचार सुनकर सारा हिन्दुस्तान कांप गया। सारे देश ने एक स्वर से मराठों के भगवे झंडे के नीचे, पानीपत के मैदान में सदा के लिये अफगानों का अन्त करने का संकल्प किया।

दत्ताजी शिंदे के वध के कारण पेशवा का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ। दत्ता जी शिंदे जैसे वीर पुरुष की मृत्यु छोटी मोटी बात न थी। नाना साहेब ने रघुनाथ राव के सारे कारगुज़ार की पड़ताल की और निश्चय किया कि भविष्य में उत्तर भारत की विजययात्राओं में सेनापति का पद कर्नाटक के विजयी चिमणा जी आप्पा के पुत्र सदा शिवराव भाऊ को दिया जाय। उत्तर भारत के विजित प्रदेशों की व्यवस्था को ठीक करने तथा छोटे मोटे सरदारों पर दबदबा बैठाने के लिए पेशवा ने अपने १६ साल के लड़के विश्वास राव भाऊ को भी उत्तर भारत में भेजना उचित समझा। मराठों ने निश्चय किया था वो सदाके लिए इसका फैसला करेंगे अथवा मर मिटकर दुनियां के इतिहास में अमर हो जायेंगे। वीरों के यही ढंग होते हैं। जब एकबार कुछ करने का निश्चय कर लिया फिर कोई शक्ति नहीं जो उन्हें विचलित कर सके। मराठी सेनायें वीर हत्या का बदला लेने के लिये चल पड़ी। इन सेनाओं के वीर नाद को सुनकर, शत्रु पक्ष भी जी जान से तय्यारियां करने लगा। पाठकगण याद रखिये। यहां दो ही पक्ष हैं। एक मुगल बादशाही के रक्षक, भारत को विदेशी आक्रमण से बचाने वाले राष्ट्रभक्तों का और दूसरे अफगानस्तान के बादशाह को भारत पर आक्रमण करने के लिए बुलाने वाले देशद्रोही—राष्ट्र शत्रुओं का।

(१४)

❀ पानीपत की ओर सेनाओं का प्रस्थान ❀

पानीपत का मैदान भारतीय इतिहास में विशेष महत्व का है। कुरु पांडव, पृथ्वीराज, महम्मद गौरी, पठान मुगल मराठे सब विजेताओं ने इस मैदान में ही विजय प्राप्त करके दुश्मन को सदा के लिये समाप्त करने का यत्न किया। पानीपत के इस मैदान में आजतक सात साम्राज्य तबाह हो चुके हैं। अंग्रेज़ी शासनकाल से पहले पानपत का मैदान भारतीय शासन का केन्द्रस्थान बना हुआ था। उत्तर तथा दक्षिण की राजशक्तियों की शक्ति परीक्षा का यही स्थान था। जो कोई शक्ति भारत में अपना एक छत्री राज स्थापित करना चाहती थी, उसके लिये जरूरी था कि वह सारे भारत पर दबदबा रखने के लिए; इस केन्द्र स्थान पर अधिकार करे। वहां स्थिर होकर, उत्तर दक्षिण तथा मध्य भारत के साथ २ राजपूताना के मैदानों पर भी आंख रखी जा सकती थी। यह मैदान सदा से बलशाली शक्तियों से आवृत रहा है। उत्तर में पजाबी वीर, आस पास पश्चिम में राजपूत वीर; पूर्व तथा उत्तर के रुहेले और पुरविये, दक्षिण में मराठे वीर, इस रण मैदान में अपने करतब दिखाने को तैयार रहते थे। इन वीर जातियों को अपने प्रभाव में रखने के लिये यही स्थान उपयुक्त था। अपनी इस स्थिति विशेषता के कारण ही यह मैदान वीरों के रक्त से सींचा जाकर, दुनिया के इतिहास में अमर होगया है। आज अंग्रेज भी पानीपत के पास के मैदानों में नए किले खड़े कर, प्राचीन इतिहास को दोहरा रह हैं। स्वतन्त्र अफगानिस्तान का मुकाबला कलकत्ते बैठकर नहीं हो सकता था। स्थान की सैनिक योग्यता को देखकर इनको भी यहां आना पड़ा है। देखें दैव की यह करनी अंग्रेज वीरों को किधर ले जाती है। ज्योतिषी इस आठवीं सल्तनत की तबाही के सम्बन्ध में भी भविष्य वाणियां कर रहे हैं। प्रस्तुत कथा प्रसंग में इस भूमि ने वीर मराठों को अपने अभिषेक के लिए निमंन्त्रित किया।

मराठे वीरों ने वीर भूमि के आह्वान को सुना और विदेशियों के पादाघात से मातृ भूमि की रक्षा करने के लिए शुभ मुहूर्त में सदा शिवराव भाऊ के नेतृत्व में उत्तर की ओर प्रस्थान किया।

-:०:-

(१५)

❋ रंगपञ्चमी से रणरंग में ❋

अब्दाली की दिल्ली पर चढ़ाई सुनकर, दिल्ली के बादशाह ने पेशवा को बुलाया। सब अवस्थाओं की ऊंच नीच देखकर, पेशवा ने १४ मार्च को १७६० को पटदूर स्थान में रंगपञ्चमी का त्यौहार मनाकर उत्तर की विजय यात्रा करने के लिए सब सरदारों को रंगपञ्चमी के रंग गुलाल से अभिनन्दित कर, विदा किया। सदाशिवराव भाऊ मुख्य सेनापति नियत हुआ। पेशवा का पुत्र विश्वासराव भाऊ साथ था। ५० हजार रुपया तथा ५ हज़ार की सेना साथ थी। इब्राहीम गारदी अपने तोपखाने के साथ सेना के साथ था। दक्षिण कर्नाटक में युरोपियनों का मुकाबला करने के लिए सदाशिवराव भाऊ ने इब्राहीम गारदी के आधीन युरोपियन ढंग पर विशेष सेना तय्यार कराई थी। इस सेना के भरोसे, सदाशिवराव भाऊ को अपनी विजय में पूरा विश्वास था।

विश्वास के साथ सेनाओं ने कूंच किया। मार्ग में रूठे हुए सरदारों को प्रसन्न करते हुए, अव्यवस्थित सरदारों को सुव्यवस्था करने के लिए प्रेरित किया। पेशवा के प्रतिभाशाली प्रतिनिधि को आता देखकर, सब सरदार सावधान हो गए।

दयाजी गायकवाड़ पेशवाओं के प्रभाव से अलग हो रहा था और पहिले रीति रिवाज के विपरीत पेशवा के प्रतिनिधि को बांये हाथ से अभिनन्दित करने लगा था। सदाशिवराव भाऊ ने उसे कहा कि पानी

पत से लौटकर तुम्हें गुजरात मालवा का अखण्ड अधिकार दिया जायेगा। इससे प्रसन्न होकर; वह भी पूर्ववत् पेशवा के प्रति सन्मान पूर्वक व्यवहार करने लगा और दांये हाथ से प्रणाम करना शुरू कर दिया।

इब्राहीमखां गारदी को संदेह थ कि कहीं मराठे लोग गनिमी युद्ध पद्धति (छापे डालकर शत्रु को हैरान करना) का अवलम्बन कर मुझे तोपखाना सहित, मैदान में अकेला छोड़कर न भाग जाय। सदाशिवराव भाऊ ने उसे विश्वास दिलाया कि युद्ध के मैदान में मैं अन्त तक तुम्हारे साथ रहूंगा-दोनों एक दूसरे का अन्ततक साथ देंगे। इस प्रकार वीर पुरुषो को अपनाकर, सदाशिवराव भाऊ आगे बढ़ने लगा। मराठों की इस भारी सेना में ब्राह्मण, प्रभु मराठे-सब जातियों के लोग थे। सदाशिवराव भाऊ ने बुंदेलखंड के मराठे सूबेदार बुंदेल पन्त को शत्रुओं की स्थिति जानने के लिए लगातार सैकडों पत्र लिखे। इन पत्रो से प्रकट होता है कि सदाशिवराव भाऊ कितनी सावधानी तथा दूरदर्शिता के साथ शत्रु के गढ़ को सामदान दण्डभेद आदि उपायों से फोडकर आगे बढ़ रहा था। सदाशिवराव भाऊ केवल वीर ही नहीं था; अपितु अपने पिताकी तरह नीति कुशल भी था। दूसरी ओर अब्दाली अनुभवी सेनापति था। बाल्यकाल से युद्धों में ही खेला था। दोनों पक्षों के सेनापतियोंने एक दूसरेको उस पार पहुंचा कर ही लौटने का निश्चय किया था। दोनों अपने पूरे यौवन पर थे।

दोनों के दिलों में यौवन मद से सींची जा रही महत्वाकांक्षा तथा विजयाभिलाषा की ज्वाला जल रही थी। दोनों ने निश्चय किया हुआ था कि एक दूसरे को हरा कर ही लौटेंगे। सदाशिवराव भाऊ की आयु इस समय ३० वर्ष की थी। अहमदशाह अब्दाली ३६ वें वर्ष में प्रवेश कर चुका था। पानीपत के मैदान में पहुंचने से पूर्वतक दोनों ने राज दूतों तथा भेदियों द्वारा नीति चक्रों की शतरंज के दाव पेंच खेले। कोई किसी को पकड़ न सका। यदि कोई जीतने लगता था तो भाग्य उसके विपरीत हो जाता। अन्त तक दोनों डटे रहे।

दोनों ने एक दूसरे का रास्ता रोक लिया। सब दृष्टियों से दोनों तुले हुए थे। कोई किसी से कम नहीं था।

सदाशिवराव भाऊ ने बुंदेले सरदार को लिखा कि तुमने शुजा को मलका जमानी द्वारा अपनी ओर मिलाने की कोशिश करनी। उसे कहना कि मराठे लोग शाहआलम को दिल्ली की गद्दी पर बैठा कर तुम्हें उसका वजीर बनाएंगे। उसे यह भी लिखा कि नजीबुद्दौला को छोड़ कर अन्य मुगल सरदारों हाफिज रहमत खां आदि को भी अपनी ओर मिलाने की कोशिश करनी।

दूसरी ओर मलका जमानी ने नजीबुद्दौला के प्रभाव में आकर; सब मुसलमानों को इकट्ठा करना शुरू किया। सेनाओं का जमाव कर दिल्ली में मुसलमानों की छोटी मोटी सेना को ढबलपुर की ओर भेज दिया। मुसलमानों ने दिल्ली से काशी तक अपना प्रभाव जमाया। उत्तर में हिमालय तक अब्दाली की सेना फैली हुई थी। रुहेल खण्ड में शुजा की उदासीन सेना थी। इटावा तथा यमुना के आसपास बुंदेल खंड में मराठों का थोड़ा बहुत जोर था। अनुभवी गोविन्द पन्त बुंदेले ने मराठों की शक्ति को संभाल रखा था। परन्तु यहां के मराठे सरदारों में आपस में अनबन थी। आखिर ३० मई को सदाशिवराव भाऊ ग्वालियर पहुंचा। इस सारी यात्रा में सदाशिवराव भाऊ ने होलकर; तथा बुंदेले को इसी आशय के पत्र लिखे कि कर वसूल करो और शत्रु पक्ष में फूट पैदा करो। अब्दाली के भक्त सरदारों को अपनी ओर मिलाओ। शुजा पर दोनों पक्ष जोर लगा रहे थे। नजीबुद्दौला तथा बुंदेले दोनों इसको अपनी ओर मिलाने की कोशिश कर रहे थे। इतने में जून का महीना आगया। वर्षा के कारण आगे बढ़ना मुश्किल था। भाऊ ने जनकोजी को लिखा कि मराठी सेना १० जुलाई तक आगरे पहुंच जायगी। इधर शुजा पर अब्दाली का जादू चल गया। अब्दाली और शुजा एक हो गए।

विचार यह था कि आगरे के पास से मराठी सेना यमुना लांघ कर,

बुन्देले की सेना के साथ मिल कर सकुराबाद में अब्दाली की सेना पर छापा डाल कर, शत्रु को उत्तर की ओर धकेल दे। इस हालत में शुजा को मराठों के साथ लाचार होकर सन्धि करनी पड़ेगी। परन्तु यमुना का पूर चढ़ा हुआ था। सेना का पार उतरना मुश्किल था। अतः निश्चय किया गया कि उधर न जाकर दिल्ली पर अधिकार किया जाय। वहां से मथुरा की ओर चले। मथुरा में उनको जी शिंदे तथा होलकर की मध्यस्थी से सदाशिवराव भाऊ ने जाटों के राजा सूरजमल को अपने साथ मिलाया। सदाशिवराव भाऊ ने एक कोस आगे जाकर, राजा सूरजमल की अगवाई की। यमुना को साक्षीकर, दोनों ने एक दूसरे की सहायता करने की प्रतिज्ञा की। इस प्रकार राजपूताना की ओर से रसद पहुंचाने का प्रबन्ध कर सदाशिव राव भाऊ निश्चिन्त हुआ।

इसके बाद शिंदे, होलकर, तथा बलवन्त राव आदि मराठे सरदारों को इब्राहीम खान गारदी के तोपखाने के साथ दिल्ली शहर सर करने के लिये भेजा। देखते देखते २२ जुलाई को दिल्ली मराठों के अधिकार में आगयी। सदाशिव राव भाऊ ने विश्वास राव भाऊ को आगे करके दिल्ली में प्रवेश किया। विश्वासराव भाऊ ने शान के साथ किले में प्रवेश किया। बादशाही दरबार की सम्पत्ति तथा वैभव को देख कर सब को आनन्द हुआ। सदाशिव राव भाऊ ने किले तथा दिल्ली शहर का प्रबन्ध नारोजी शंकर को सौंपा। दिल्ली में टिक कर अब्दाली की सेना तथा सरदारों में फूट फैलानी शुरू की। दिल्ली में मराठों को अधिकार प्राप्त करते देख कर, शुजा तथा रहमत खां आदि सरदारों को अब्दाली के साथ मिलजाने का दुःख हुआ। उनके दिल टूट गए। सदाशिव राव भाऊ के यहां शुजा का भवानीशंकर नाम का वकील रहता था। उसने शुजा की ओर से सन्धि की बातचीत भी शुरू करदी। इस समय यदि सदाशिवराव भाऊ इटावा की ओर से बुन्देले की सेना के साथ मिल कर, अब्दाली की सेना पर आक्रमण करदेता तो निश्चय ही शुजा को मराठों के साथ सन्धि करनी पड़ती।

परन्तु सदाशिवराव भाऊने ऐसा नहीं किया। डेढ़ महीना संधिकी बातचीत करने में बिता दिया। इतने में नजीवुद्दौला ने कई तरह की अफवाहें फैला कर, मुसलमानमात्रको मराठोंके विरुद्ध भड़काया। उसने अफवाह फैलादी कि मराठों ने बादशाह के सिंहासन पर अपना अधिकार कर लिया है। विश्वासराव बादशाह बना दिया गया है। खास दीवान की सुनहरी छतों को तोड़ लिया है। इन अफवाहोंको फैलाकर इस्लामके नाम पर; उसने स्वपक्ष से विचलित होते हुए मुसलमान सरदारों को अपने साथ रखा। नजीवुद्दौला ने विदेशी दुश्मन के आक्रमण को मुसलमान और हिन्दुओं का प्रश्न बना दिया। मराठों ने इन भ्रम पूर्ण समाचारों को दूर करने की काफी कोशिश की। उन्होंने शाहआलम के पुत्र वलीवद के नाम से शासन कार्य किया। शाह आलम की छाप के सिक्के चलाए।

परन्तु साम्प्रदायिक कट्टरपन से आविष्ट हुए दिमाग जल्दी ठीक नहीं हुए। आज हम भारत में देख रहे हैं कि किस प्रकार स्वार्थी लोग तीसरी विदेशी शक्ति के कठपुतली बनकर हिन्दुओं तथा मुसलमानों को आपस में लड़ा रहे हैं।

उस समय अफगानिस्तान के विदेशी राजा के कठपुतली बने हुए नजीवुद्दौला ने इस राष्ट्रीय प्रश्न को मज़हबी रूप दे दिया। इस देश द्रोह का परिणाम यह हुआ कि मुगल बादशाहों की रक्षा न हो सकी। अच्छा होता यदि सदा शिवराव भाऊ एक दम आक्रमण कर ऐसे स्वार्थी देश द्रोहियों के विचारों को फैलने न देता। सदाशिवराव भाऊकी इस गलती के कारण युद्ध का रंग ढंग ही बदल गया। अब यह प्रश्न हिन्दुओं और मुसलमानों का हो गया। परिणाम यह हुआ कि मजहबी जोश में आकर हिंदुस्तानी भाई भाई--आपसमें लड़ पड़े। दोनोंको लड़ाकर महत्वाकांक्षी अफ़गानी अब्दाली स्वदेश को लौट गया।

डेढ़ मास बीत गया, यमुना का चढ़ाव नहीं उतरा। बुंदेले की अकेली टुकड़ी कुछ नहीं कर सकती थी। आखिर यह निश्चय किया गया कि

उत्तर की ओर कुंजपुरा स्थान की ओर पहुंचकर अब्दाली की सेना को यमुना तथा बुंदेलेकी सेनायोंके मध्यमेंघेरा जाय। कुंजपुराकी ओर सिंदे होलकर, आदि सरदारों को मुकाबला करने के लिए भेजा। स्वयं पीछे २ तोपखाने के साथ प्रस्थान किया। इस समय सदाशिव भाऊ की सेना ने यमुना के पश्चिम तटवर्ती २०० मील के मैदान की रक्षा करनी थी। दिल्ली से उत्तर की ओर यमुना के पश्चिम में बागवत २० मील, सोनपत २६ मील गनोरि ३६ मील, पानीपत ५४ मील, और कुंजपुरा ७८ मील पर है।

दिल्ली से नीचे दक्षिण की ओर मथुरा ६० मील पर है। आगरा ५० मील है। यमुना के इस पश्चिमी २०० मील के मैदानकी मराठों ने देखरेख करनी थी। यमुना के पश्चिमी तट पर बागपत तथा सोनपत के सामने दूसरे किनारे पर अब्दालीकी सेना थी। बुंदेलखंडकी ओर बुंदेलेके वीर थे। उत्तर की ओर मराठे आगेबढे। दयाजी गायकवाड़ आदि मराठोंको रोकने के लिए अब्दाली ने कुतुबशाह तथा अब्दुस्समाद खान को भेजा। इस कुतुबशाह ने ही दत्ताजी शिंदे का वध किया था। इसको देखते ही मराठों का खून खौल गया। भयंकर लड़ाई हुई, दोनों सरदार मराठों के हाथ में आ गये। सदाशिवराव भाऊ के पास भेज दिए गये। सदाशिवराव भाऊ ने दोनों का शिरच्छेद करने की आज्ञा दी, शिरच्छेद किया गया। दत्ताजी के खून का बदला लिया, रक्त का रक्त से तर्पण किया गया। इस समाचार को सुनकर अब्दालि के रोंगटें खड़े होगये, इस प्रकार शत्रु का दमन कर मराठों ने १६ अक्टूबर को १७६० में कुंजपुरा में विजयदशमी का त्यौहार धूमधाम के साथ मनाया। शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके ही असली विजय दशमी मनाई जासकती है। आज हम लोगों ने विजयदशमी जैसे वीरतापूर्ण त्यौहारों को नाटक तथा लीला का रूप देदिया है। देशभाइयो! यदि असली विजयदशमी मनानी है तो मराठे वीरों की तरह देशद्रोहियों का मान मर्दन करके राम का नाम जपो। यही सच्ची विजयदशमी है।

इसी समय सदाशिवराव भाऊ ने गोविन्द पंत बुन्देले को लिखा था कि तुम बुन्देलखंड की ओर से अब्दाली की सेना की रसद को रोको तथा

गनिमी की युद्धपद्धति का सहारा लेकर, अब्दाली की सेना को अपनी ओर लगाए रखो। परन्तु बुन्देले की सेना थोड़ी थी, उसने इस थोड़ी सेना के द्वारा रसद तो रोकी परन्तु अब्दाली की सेना को वह अपनी ओर न खींच सका। इतने में अब्दाली ने अपने आपको चारों ओर से घिरा हुआ देखकर यमुना पार करने का निश्चय किया। रसद के बन्द होजाने से उस सेना में महंगी की बीमारी फूट पड़ी। आखिर २५ अक्टूबर को सदाशिवराव भाऊ को खबर मिली कि अब्दाली की सेना यमुना के पश्चिमी किनारे परे, बागपत के सामने उतर रही है।

अब्दाली ने यमुना पार करने का निश्चय कर लिया था। चांदी के पत्रों पर कुरान की आयतें लिखकर, यमुना में प्रवाहित कीं। छाती तक गहरे पानी में हाथियों की पंक्ति खड़ी कर उनपर सारा सामान नदी से पार उतारा। स्वयं घोड़ी पर सवार होकरे यमुना पार की, सिपाहियों ने भी वीर सेनापति का अनुकरण किया। देखते २ बागपत के मैदान में अब्दाली एक लाख सेना के साथ पहुंच गया, इस सेना में २४ हजार सेना अब्दाली की थी। ३० हजार शुजा की और शेष देशी सेना थी। बागपत में मराठों की छोटीसी टुकड़ी थी। अब्दाली की सेना को सिरपर आया देखकर वह टुकड़ी कुञ्जपुरा की ओर झुकी। सदाशिवराव भाऊ ने एकदम पानीपत की ओर बागडोर मोड़ी और गोविन्द पंत बुन्देले को लिखा कि वह शीघ्र ही अपनी सेना लेकर, बागपत में अब्दाली सेना का पीछा करे।

इस समय रसद बन्द हो जाने से अब्दाली की सेना की बुरी हालत थी। कीमतें मंहगी होरही थी। पीठी तीन सेर, चने चार सेर, घी ८ छटांक के भाव बिक रहा था। मराठी सेना में गेहूं १६ सेर, चने १२ सेर, घी डेढ़ सेर के भाव बिक रहा था। बुन्देले पंत की छोटी सी सेना यमुना पार न उतर सकी। इतना ही नहीं; अब्दाली ने शाहवलीखान के लड़के अताईखाने को ४ जनवरी के दिन बुंदेले पर आक्रमण करने के लिये भेजा। इस युद्ध में गोविन्द पन्त बुंदेले की पुत्र के साथ मृत्यु हुई।

इस घटना से पहले मराठों की स्थिति सब प्रकार से अच्छी रही। बुंदेले के मरते ही अब्दाली का रसद का द्वार खुल गया। अब्दाली सेना का अन्न कष्ट कम होने लगा। दूसरी तरफ मराठों के यहां कुटिल ग्रह अपना कोप करने लगे।

पानीपत के मैदान में मराठों ने अपना जमाव किया। मराठों में दो पक्ष होगए। एक पक्ष का कहना था कि हमें शत्रु की सेना पर धावा डालकर उसे हैरान करना चाहिये। दूसरे पक्ष का कहना था कि हमें पानीपत में मोर्चाबन्दी करके शत्रु की सेना का प्रत्यक्ष मुकाबला करना चाहिये। मल्हाराराव होलकर छापा डालकर लड़ाई करने के पक्ष में था। इब्राहीम खां गार्दी मोर्चाबन्दी करके लड़ने के पक्ष में था। सदाशिव राव भाऊ ने इब्राहीम खान गारदी के तोपखाने के भरोसे पर मोर्चाबन्दी करके लड़ने का निश्चय किया। चारों ओर बड़ी भारी खंदक खोदी गई। मोर्चाबन्दी की गई। इधर पानीपत से तीन दिन की दूरी के फासले पर अब्दाली की सेना थी। कुछ दिनों तक मराठी सेना की हालत अच्छी रही, परन्तु बुंदेले की मृत्यु के बाद अब्दाली प्रबल होने लगा। सदाशिवराव को भरोसा था कि दक्षिण से उसे सहायता पहुंचेगी। सदाशिवराव भाऊ के गोविन्द पंत बुंदेले के नाम लिखे हुए नवम्बर तथा दिसम्बर मास के पत्र नहीं मिलते।

यह पत्र शत्रु के हाथ में चले गए। शत्रु ने इन पत्रों का प्रयोग कर दक्षिण तथा उत्तर की ओर से रसद रोकने की कोशिश की। परिणाम यह हुआ कि मराठी सेना में महंगी के साथ २ बीमारी फूट पड़ी। सदाशिव राव भाऊ को आशा थी कि दिल्ली से २० लाख का खजाना आएगा वह आशा भी पूरी नहीं हुई। जाटों तथा राजपूतों की ओर से भी पर्याप्त सहायता नहीं मिली। आखिर भाऊ ने दादा जी को ३०० सवारों को ५००) की थैलियां लाने के लिए दिल्ली भेजा। रक्षा के लिए ५०० सरदार भी साथ भेजे। यह लोग रुपया लेकर रात को लौट रहे थे कि अंधेरे में शत्रु के डेरे में भूल से भटक गए।

दोनों सेनाएं महीनों निश्चेष्ट होने के कारण थक गयी थी। दोनों सेनाएं एक दूसरे की स्थिति को नहीं जानती थी। शुजाउद्दौला तथा रुहेले सरदारों ने अब्दाली को कहा कि मराठों पर आक्रमण करो।

अब्दाली ने कहा तुम अपना काम करो। लड़ाई का मैदान मेरे लिये है। इधर महगी तथा बीमारी से तंग आकर मराठी सेना ने संधि करने की इच्छा प्रकट की। अब्दाली ने कहला भेजा कि मैं तो युद्ध करना ही जानता हू—मुझे नहीं पता संधि किसे कहते हैं। यदि कभी सन्धि की सम्भावना होती थी तो नजीबुद्दौला बीच में पड़कर फिर से अब्दाली को युद्ध के लिए तय्यार करता था। आखिर १०-१०-१७६१ के दिन मराठी सेना अधीर हो उठी और उसने सदाशिवराव भाऊ से कहा कि अब हम बहुत देर तक नहीं ठहर सकते। अब लडाई की तैयारी करो। रंगपंचमी में रंगगुलाल की खेल करने वाली मराठी सेना—कुंभपुरे में विजयदशमी का त्यौहार मनाकर १०-१०-१७६१ ई० के दिन रणारंग में तलवारों के साथ शत्रुओं के लहू से रंग गुलाल खेलने के लिर उतावली हो उठी। इस उतावली सेना को कोई नहीं रोक सका।

(१६)

❀ वीरों का बलिदान ❀

१०—१०—१७६१ शनिवार के दिन मराठी सेना ने मकर संक्रान्ति का दिन आनन्द पूर्वक मनाया। अगले दो दिनों में अन्तिम बलिदान की तय्यारी की। निश्चय किया गया कि बुधवार के प्रातःकाल शत्रु सेना पर अन्तिम धावा बोला जाय। चारों ओर बड़े २ सरदारों को तैनात कर के तोपखाने की रक्षा में बीच में सुरक्षित मंडलियों स्त्री समुदाय को रखकर शत्रु की सेना को बीच में से फोड़कर निकलने का संकल्प किया। मध्यरात तक सब तय्यारियां हो गयी। रात के अन्तिम

प्रहर में सदाशिवरायने काशीराय के हाथ एक चिट्ठी भेजी इसमें लिखा था।

"अब तुम्हारे पापों का प्याला लबालब भर चुका है। अब अधिक नहीं सहा जा सकता। यदि कोई संधि चर्चा करनी हो तो एक दम करलो।" जब यह चिट्ठी अब्दाली के पास पहुंची तो उसने कहा आज आराम करो कल यात्रा की तयारी करेंगे। कलका दिन आ पहुचा।

अन्तिम घड़ी आ पहुंची। तीसरे पहर तक दोनों ओर से भयंकर मारकाट मची। अब्दाली अपने डेरे में बैठा सारी स्थिति को देख रहा था। अब्दाली ने अपनी सेना की छावनी के सामने कुछ दूरीपर अपना लाल तम्बू लगवाया था। इस स्थान पर वह प्रतिदिन प्रातःकाल निमाज करने तथा सांयकाल भोजन करने आता था। दिनभर घोड़ी पर सवार होकर, सेना में दौड़ लगाता था। रातको ५००० हजार सेना की टुकड़ी को शत्रुपर आंख रखने के लिये भेज देता था और एक टुकड़ी को छावनी के चारों ओर पहरे पर नियुक्त किया जाता था। अपने दोस्तों को आनन्द की नींद सोने की अनुमति देकर स्वयं दौरा लगाता। पानीपत में डेढ़ मास तक मोर्चा बन्दी लगा, अब्दाली ने आखिर मराठों की रसद बन्द करने में सफलता पाई।

सदाशिवराव भाऊ विश्वासराव भाऊ तथा इब्राहीम खान गारदी निश्चित की गई स्कीम के अनुसार शत्रु पक्ष को पीछे हटाते हुए आगे बढ रहे थे। इतने में ठीक दुपहर को विश्वासराव के गोली लगी। वह धराशायी हुआ। सेना में खलबली मच गयी। सदाशिवराव भाऊ आपे से बाहर होगया। पूर्वकृत निश्चय को एक दम बदल दिया। सेना हैरान होकर मैदान छोड़ भागी। जनकोजी सिंधे तथा सदाशिवराव भाऊ ने अन्तिम दम तक मैदान नहीं छोड़ा। इब्राहीम खान गारदी शत्रु सेना द्वारा घेरा जाकर शत्रु के हाथ में कैद हुआ। इसी समय अब्दाली ने अपनी विशेष सेना द्वारा आक्रमण करके प्रातःकाल से भूख प्यास की परवाह किए बिना लड़ती हुई मराठी सेना को तीन तेरह कर दिया। सदाशिवराव

भाऊ भी वहीं खेत रहा। मलहार राव आदि वीर वहां से बच निकले। नाना फडनवीस तथा महादजी सेंधिया वेश बदल कर दक्षिण पहुंचे। इस पराजय का हाल सुनकर, दिल्ली की मराठी सेना भी दक्षिण को भाग निकली। राजपूताना के मैदानों में से होते हुए मराठे वीर जैसे तैसे दक्षिण की ओर भागे। दक्षिण में हाहाकार मचगया। अगले दिन शुजान अब्दाली की अनुमति से सदाशिवराव भाऊ तथा विश्वासराव भाऊ का देहान्त संस्कार आर्य पद्धति के अनुसार कराया। वीरों ने देश रक्षा के लिए महीनों से जिस वलिदान की तय्यारी की थी आज उसकी पूर्णाहुति हो गई। कुछ समय के लिए मराठों की आशाएं टूट गईं। नानासाहेब इस समाचार को सुनकर शोकाकुल होकर दिनप्रतिदिन क्षीण होने लगे। इसी शोक में वह इस लोक से चल बसे। इस युद्ध से मराठों की वढती शक्ति को भारी धक्का पहुंचा। परन्तु विजयी शत्रुपक्ष को भी कुछ लाभ नहीं हुआ।

—:o:—

(६७)

किसको क्या मिला ?

पानीपत का भयंकर युद्ध समाप्त हो गया। दोनों पक्षों में भयंकर जन नाश धन नाश तथा शक्ति नाश हुआ। प्रश्न यह है कि दोनों में से किस को क्या मिला ? दिल्ली की बादशाही को किसने संभाला ? दोनों शक्ति लड़ती २ घायल होकर, क्षीण हो गईं। मराठों का दम टूट गया। अब्दाली विजेता बना, परन्तु उसे कुछ नहीं मिला। युद्ध के बाद भारत में बसे हुये मुसलमान अब्दाली को घृणा की दृष्टि से देखने लगे। अफगानी सिपाहियों ने भी स्वदेश लौटने के लिये जोर दिया। उधर कंधार में अब्दाली को थका हुआ देखकर बाकी सरदारों ने बगावत के झंडे खड़े कर दिये। लाचार होकर, अब्दाली को भारत छोड़ना पड़ा।

विजय और पराजय में कोई भेद न रहा। दोनों ने भारी नुकसान उठाया। मराठों की शक्ति कम हो गई। अब वे दिल्ली दरबार में अपना ज़ोर न जमा सके। गाज़ीउद्दीन दक्षिण होता हुआ वर्मा की ओर भाग गया। दिल्ली दरबार पूर्ववत असुरक्षित रहा। इसी समय भारत के इतिहास में एक तीसरी शक्ति ने अपने करतब दिखाने शुरू किए। पानीपत की इस लड़ाई से चार साल पूर्व इस नई शक्ति के प्रतिनिधियों ने १७५७ ई० में प्लासी की लड़ाई के बाद दिल्ली दरबार से बंगाल और बिहार की दीवानी प्राप्त की। इस शक्ति का विरोध करने का दम रखने वाले दक्षिण में मराठे ही थे। परन्तु अभाग्यवश पानीपत की लड़ाई में मराठों की कमर टूट गई। मराठा मंडल में फिर से अन्तःकलह की आग फैलने लगी। पानीपत की लड़ाई में दो शक्तियों ने आपस में लड़कर इस तीसरी शक्ति के लिये रास्ता साफ कर दिया। दिल्ली दरबार का बादशाह शाह आलम महत्वाकांक्षियों का कठ पुतली बन गया। उसने कहा, जो हमें दिल्ली पहुंचाएगा उसपर ही हम कृपा करेंगे। मराठों और अंग्रेजों ने कोशिश की। मराठे थक चुके थे। उत्तर भारत में उनका प्रभाव कम हो रहा था। सरदारों में ईर्ष्याग्नि धधकने लगी। इस समय इस तीसरी शक्ति ने मराठों के जयचन्द्र 'राघवोदादा' का सहारा लेकर, पानीपत के युद्ध का फायदा उठाया। इतिहास कह रहा है कि यदि पानीपत के मैदान में मराठे न हारते तो भारत में युरोपियन शक्तियों का प्रवेश न होता। पानीपत की रक्त नदी की तरगें कह रही हैं कि यदि देशविद्रोही नजीबुद्दौला ने विदेशी अफगानों को निमन्त्रित न किया होता तो आज भारत युरोपियन जातियों के पैरों तले न रौंदा जाता। परन्तु देशद्रोहियों को जन्म देने वाले देशों को पराधीनता रूपी भयकर दण्ड मिलता ही है। आज भारत वही दंड फल भुगत रहा है। आज भारत उसी पाप का फल पा रहा हैं। इस पाप का प्रायश्चित यही हैं कि हम सब फिर से राष्ट्र प्रेम की पवित्र नदी में स्नान कर, "भारत, भारतवासियों का है; वही उसके मालिक हैं" के नारों को कार्य रूप में परिणत करें।

भारत के हिन्दुओ ! और मुसलमानो ! पानीपत के युद्ध के कारणों का मनन करो, राघोबा की देश द्रोहितापूर्ण हरकतों का गम्भीर आलोचना करो और प्रण करो कि हम नजीबुद्दौला की तरह विदेशियों से बहकाए जाकर अपने देश भाइयों को मज़हबी लड़ाई झगड़ों के लिए उत्तेजित नहीं करेंगे। पानीपत के मैदान में धराशायी हुए वीर पुरुष भी यही कह रहे हैं कि इस देश में जन्म लेनेवाले को अपना भाई समझो ! विदेशियों के इशारे पर आपस में लड़ने वाले लोगों को कुछ नहीं मिलता। पारस्परिक कलहों का फल दोनों के लिये हानिकारक होता है। विजित और विजेता दोनों का सर्वनाश होजाता है। तीसरी शक्ति सर पंच बनकर फायदा उठाती है।

आज भी भारत में यही प्रथा है, हिन्दु तथा मुसलमान आपस में लड़ रहे हैं। एक दूसरे को पराजित करने की कोशिश कर रहे हैं।

आपस में लड़ते हुए हिन्दुओ और मुसलमानो ! ब्राह्मणों और नानब्राह्मणो ! और किसी की नहीं तो अपने पूर्वजों की बात तो सुनो ! देखो पानीपत के मैदान में दिल्ली दरबार के मुसलमान सरदारों तथा मराठे हिन्दुओं की आत्माएं पुकार २ कर कह रही हैं कि भविष्य में उत्तर या दक्षिण से आनेवाली विदेशी शक्तियों का विश्वास मत करना। उनका साथ देने में किसी भारतवासी का भला नहीं है। आशा है स्वतन्त्रता के लिए उतावले देशभक्तों के हृदय पूर्वजों की इस बात को ध्यान से सुनेंगे।

—:०:—

(१८)

❁ बिजली की चमक ❁

पानीपत की लड़ाई के बाद महाराष्ट्र में चारों ओर निराशा छागई। नाना साहेब की मृत्यु के बाद कोई भी अनुभवी योग्य पथदर्शक न था, कुछेक थे परन्तु पुराने महत्वाकांक्षी सरदार उन्हें कार्यक्षेत्र में आने नहीं

देते थे। नाना साहेब की मृत्यु के बाद माधवराव को पेशवाई के पद पर नियुक्त किया गया। इस समय इसकी आयु १६ वर्ष की थी। राधोबा दादा को पेशवा का संरक्षक नियत किया गया, माधवराव में अपने पिता के सबगुण थे। थोड़े समय में ही इसने राज दरबार के सब काम संभाल लिए, तात्कालिक मराठा इतिहास का अनुशीलन करके पेशवा इस परिणाम पर पहुंचा कि जबतक देश में तथा मराठा मंडल में व्यवस्था का ठीक प्रबन्ध नहीं होगा तब तक मराठा शक्ति स्थिर नहीं हो सकती। पुराने महत्वाकांक्षी, नए महत्वाकांक्षियों की उन्नति को नहीं सह सकते। बहरामखां ने अकबर के रास्ते में अनेक अड़चने खड़ी की थी। राधोबादादाने भी माधवराव के रास्ते में रुकावटें डालीं। माधवरावने सखाराम बापू तथा नानाफड़नवीस आदि योग्य सलाहकारों की सहायता से राधोबा को प्रतिबन्ध में रखा।

माधवरावने प्रथमतः गायकवाड़, सेंधिया आदि सरदारों को दायित्व पूर्ण काम देकर, मराठा संघ (Maratta confedureasy) संगठित करना शुरू किया। इसमें उसे सफलता भी प्राप्त हुई। तुलजा की प्रसिद्ध लड़ाई में निजाम का पराभव किया और इस कंटक को दूर किया। इतना ही इन्हीं दिनों दक्षिण मैं हैदरअली का दमन करके, उस पर अपनी धाक बैठायी। पेशवा की इस कर्तृत्व शक्ति को देखकर, सब के दिलों में फिर से आशाएं बंधने लगी। उत्साहित—मराठे सरदारों ने फिर से एक बार, १७६५--१७६९ ई० में उत्तर भारत पर धावा बोल दिया। नजीबखां आदि का गर्वगलित कर अपना प्रभाव बैठाया।

पेशवा माधवराव के समय जो नयी प्रसिद्ध रियासतें बनी उनके नाम स्मरणीय है। सेंधिया और मल्हारराव होलकर के वंशजों ने गवालियर तथा इन्दौर में मराठों का नाम अमर कर दिया। इन्दौर की महाराणी अहल्याबाई आज भी राजनीतिज्ञों की आराध्य देवी है। यह सब कुछ था। चारों ओर से आशायों की सुनहरी झलक छिटक रही थी। उत्तर

भारत में मराठों की विजली सी चंचल तलवारें अपनी ज्योति से राजपूत जाट तथा मुसलमानों को चकाचौंध कर रही थी--ठीक इस समय माधव-राव ने अल्पकाल में १७७१ ई० में २६ वर्ष की उमर में इस लोक से पयान कर दिया। रमाबाई भी साथ ही सती होगई। माधव कुछ समय के लिए ही प्रकट होकर विलीन हो गया। बिजली-छिन भरके लिए चमक कर मिटगयी। चारों ओर अंधकार छा गया।

माधवराव की इस अकाल मृत्यु के कारण महाराष्ट्र की उठती हुई आशाएं टूट गयी। वनी बनाई वाटिका उजड़ने लगी। माधवराव की योग्यता--अभी अपना रंग जमा ही रही थी बीच में सब कुछ अधूरा रह गया। माधवराव ने इतने अल्पकाल में जो कुछ किया वही बहुत है। अपने पिता के उद्देश्य को पूरा करने में किसी प्रकार की कमी नहीं। उसके निष्पक्षपात स्वभाव तथा नियम पालन कराने में कठोर स्वभव को जनता नहीं भूली। इसी स्वभाव का परिणाम था कि राघोवा दादा जैसे महत्वाकांक्षियों को उसके सामने दवना पड़ा।

—:o:—

(१६)

❀ हत्यारा राघोवा ❀

Raghoba afterwards murdered Narayan Rao........ and was supported by the British Government. A very evil chapter in Anglo-Indian History.

कलकत्ता रिव्यू. Vol II. न० ४ पृ० ४३०

माधवरावने अन्तिम समय में नानाफड़नवीस राघोवादादा तथा अन्य सरदारों को बुला कर कहा कि मेरे पीछे नारायणराव को पेशवा बनाकर मराठा मंडल का शासन किया जाय। वह अपने बड़े भाई की

तरह होम हार न था। राघोबा दादा चाचा के नातेसे दरबार में अपनी मुख्यता रखना चाहता था। नारायण राव की धर्मपत्नी गोपिका बाई तथा राघोबा की स्त्री आनन्दीबाई में भी अन बन थी।

राघोबा नाना साहेब के शासन काल के समय से मराठा मंडल में ऊंचे से ऊंचा स्थान प्राप्त करना चाहता था। पेशवाओं ने समय २ पर उसे अच्छे से अच्छे मौके दिये; परन्तु अपने उतावले स्वभाव के कारण वह कभी भी सफल नहीं हो सका। वह वीर था-मैदानों में तलवार चलाने में किसी से कम न था परन्तु व्यवस्था और प्रबन्ध करने की उसमें योग्यता न थी। इस लिए वह प्रजा मंडल में तथा नीचे के सरदारों में लोक प्रियता प्राप्त न कर सका। नारायणराव पेशवा बना। इसी समय अंग्रेज लोग मराठा मंडल में फूट के बीजबोने की कोशिश में थे। असफल महत्व कांक्षी राघोबा ने जब देखा कि इतनी देरतक कोशिश करने पर भी उसे मराठा मंडल में कोई अच्छा स्थिर पद नहीं मिला तब निराश होकर, उसने नारायण राव पेशवा का खून करने का निश्चय किया।

नारायणराव के कोई सन्तान नहीं थी। राघोबा की धर्मपत्नी आनन्दीबाई क्रूर स्त्री थी। उसने अपने पति की महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने के लिए, पेशवा के पद को अपने वंश में प्रचलित करने के लिए गुप्तरूप से महलों में गारदियों की सहायता से १७७३ ई० में नारायण राव का खून करवाया। किसने खून किया इस विषय में मतभेद है; परन्तु यह सर्व सम्मत बात है कि राघोबा ने अंग्रेजों के रेजिडेंट मोस्टन की जानकारी में यह खून कराया था। अभी तक मराठा मंडल में ऐसी घटना कभी नहीं हुई थी कि किसी ने ऊंचा पद पाने के लिए हत्या का पाप किया हो। महत्वाकांक्षी राघोबा ने इस निर्दोष रक्त द्वारा अपने आप को तथा मराठा मंडल को कलंकित किया। नारायण राव का खून क्या हुआ मराठा मंडल की मृत्यु हो गई। किसी उत्तराधिकारी के न होने से राघोबा

पेशवा बना। राघोवा की नीच वासनाओं से, नाना फड़नवीस, सखाराम बापू आदि परिचित थे। उन्हें मालूम था कि यदि पेशवाई राघोवा के हाथ में रही तो यह इसे विदेशियों के हाथ में बेच देगा। इन वीर राष्ट्र भक्तों ने एकदम नारायणराव पेशवा की गर्भवती धर्मपत्नी गंगाबाई के नाम से पेशवाई का काम करने का प्रस्ताव किया। निराश होकर राघोवा पेशवाई प्राप्त करने के लिये सूरत में अंग्रेजों की शरण में गया। इधर नारायणराव के सवाई माधवराव का लड़का पैदा हुआ। छत्रपति रामराजा ने उसे पेशवा बनाया। नाना फड़नवीस ने इसके नाम से शासन चलाया।

राघोबा ने अंग्रेजों की शरण लेकर उन्हें मराठा शाही में निमन्त्रित किया।

देशद्रोही आत्माएं बेशर्म हो जाती हैं। इस प्रकार मराठा शाही के मध्यान्ह का सूर्य्य अपनी पूरी ज्योति से चमक कर अदूरदर्शी राघोवा राहु का ग्रास बना। नानाफड़नवीस ने अपने जीते जी महाराष्ट्र देश को इस राहु के प्रकोप से बचाया।

तृतीय परिच्छेद

अंग्रेजों का मायाजाल

From factories to forts, from forts, to fortification, from fortification to garrisons from garrisons to, armies, and from armies to conquests. The graduations were natural, and the results inevitable; where we could not find a danger; we were determind to find a quarrel.

Philip Francis:

१७वी सदी तक युरोपियन जातियों को भारतवर्ष के सम्बन्ध में नाम मात्र का ज्ञान था। सबसे पहले पुर्तगाल के राजा इमैन्युल ने सशस्त्र जहाजी बेड़े के साथ वास्कोडिगामा को नए देशों की खोज के लिये भेजा। वास्को डिगामा अफ्रीका के दक्षिणी किनारे होता हुआ मालाबार पहुंचा।

हिन्दुस्तान के इन प्रदेशों की समृद्धि तथा ऐश्वर्य को देखकर, पुर्तगीज़ लोगों की आंख इधर लग गई। धीरे २ मलाबार के स्थानीय राजाओं से मैत्री का सम्बन्ध स्थापित किया। आखिर दिल्ली दरबार से इन्होंने अपनी शक्ति तथा सत्ता को स्वीकार कराया। इन पुर्तगीज़ लोगों ने व्यापारीय तथा धार्मिक प्रश्नों तक ही अपने क्षेत्र को सीमित किया। परन्तु अन्य युरोपियन जातियां, पुर्तगीज लोगों की शक्ति को कम करने का यत्न कर रही थी। परन्तु पुर्तगीज लोग बहुत देरतक इन युरोपियन जातियों की गति को नहीं रोक सके। १६११ में डच लोगों ने पुर्तगीज सेनाओं को पराजित कर सूरत पर अधिकार कर लिया। डच लोग दिन २ शक्ति धारण करने लगे। यदि

इस जाति का ध्यान आस पास के द्वीपों की ओर न खिंचता तो असम्भव नहीं था कि यह लोग भारत में अपना जाल फैलाते। इधर इन जातियों की बढ़ती हुई शक्ति देखकर, इंगलैण्ड तथा फ्रांस के साम्राज्य वादी मन्त्रियों ने एशियायी देशों में अपना पैर फैलाने के लिए नयी कम्पनियां खड़ी करनी शुरू कीं। डच लोगों की बढ़ती शक्ति को कम करके, फ्रांसवाले मैदान में उतरे। फ्रांसीसियों के मैदान में आते ही फ्रांस का सदा का प्रतिद्वन्दी राष्ट्र भी मैदान में आ उतरा। रानी एलिज़बेथ ने स्पेनिश आर्मेडा को तहस नहस कर, इंग्लैंड के नवयुवकों को उत्साहित किया। १६०० ई० सन् में इंगलैण्ड में ईस्ट इण्डिया कम्पनी बनायी गयी। इसी कम्पनी ने भारत में ब्रिटिश शक्ति को स्थापित करने का प्रारम्भ किया था। इसी कम्पनी के नौकरों ने देशभक्ति के भाव से प्रेरित होकर, धीरे २ कोठियां किले धड़ाबन्दी तथा सेनाएं तय्यार कर, भारत में अपना अधिकार जमाया। जिस समय योरोपियन जातियों ने भारत में प्रवेश किया था उस समय भारत में दिल्ली के बादशाह, एक छत्री प्रभावशाली शासक थे।

योरोपियन जातियों ने अनुनय विनय द्वारा यहां पैर जमाने की कोशिश की। परन्तु कई कारणों से उन्हें पर्याप्त सफलता प्राप्त नहीं हुई। पुर्तगीज लोग धार्मिक कट्टरपन के कारण सबकी आंखों में अखरने लगे। हालैण्ड वालों ने अपने कार्यक्षेत्र को सीमित किया और केवल मात्र व्यापारी रहना पसन्द किया। हॉलैण्ड वाले साम्राज्यवाद के विरोधी थे अतः उन्होंने व्यापारी कोठियों को, किलों का रूप नहीं दिया। फ्रांस वाले अपनी उदारता तथा केन्द्रित सरकार के स्वातन्त्र्य प्रिय होने के कारण भारत में राजनैतिक प्रभुता न पा सके। केवल मात्र अंग्रेज जाति ही अपनी कूट नीतिज्ञता तथा स्थिर प्रवृत्तिता के कारण यहां की शासक बन सकी। अंगरेज जाति ने यहां कैसे पैर जमाए इसका संक्षिप्त वर्णन ऊपर के उद्धरण में एक अंगरेज विद्वान् ने कर दिया है। शुरू में व्यापारी कोठियां खोलीं, धीरे २ व्यापारी कोठियों को किले का रूप दिया। किलों को संगठित तथा पक्का बनाया। इन संगठित सुरक्षित किलों को सेनास्थान बनाया। अपने

नौकरों तथा क्लाकों को कम्पनी की सेनाओं का सेनापति बनाकर, छोटी मोटी लडाइयां रचाकर, कभी किसी देशी राजा का पक्ष लेते कभी किसी का। इन छोटे २ राजाओं को आपस में लड़ाकर, जहां एक ओर उनकी शक्ति को कम किया, वहां भारत की केन्द्रित शासन शक्ति को कमजोर तथा प्रभाव हीन करने के लिये प्रांतीय तथा स्थानीय हाकिमों को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष तरीके से दिल्ली की बादशाहत से स्वतन्त्र होने के लिए उत्साहित किया। अंगरेजों की इस कुटिल चाल का खुला चिट्ठा बंगाल के इतिहास में दीखता है। जब तक अंगरेजों ने देखा कि अलीवर्दी खां की तलवार बंगाल पर है तब तक इन्होंने उससे छेड़ छाड़ नहीं की।

उस समय दिल्ली के कमजोर बादशाहों की कृपा प्राप्त कर, बंगाल में रहने का प्रबन्ध किया। वहां अपनी स्थिति पक्की करके, दिल्ली के बादशाह को निर्बल हुआ देखकर इन्होंने धीरे २ अपना असली रूप प्रकट करना शुरू किया। इनकी इस कूट चाल को समझने वाले विरले राजनीतिज्ञ ही थे। अलीवर्दीखान ने मृत्यु शय्या पर लेटे हुए, सिराज को जो वचन कहे थे वह मर्मस्पर्शी और सच्ची स्थिति को प्रकट करने वाले हैं। वह यह है:-

"इस देश में युरोपियन लोगों की बढ़ी हुई शक्ति को ध्यान में रखो। तेलगु देश में इन जातियों ने जो लड़ाइयां लड़ी हैं उनको दृष्टि में रखकर सदा सजग रहो।"

"इन जातियों ने देशी नरेशों के निजू झगड़ों का बहाना कर, धीरे २ उनके राज्य छीन लिये हैं। इन सब जातियों को एक साथ एक समय में कमज़ोर करने का इरादा मत करना। अंगरेजों की ताकत सबसे प्रबल है। इन्होंने अभी हाल में अंगदेश को जीतकर, अपने आधीन किया है पहले इन अंगरेजों का दमन करना।"

"पुत्र! इनको अपने राज्य में किले मत बनाने देना और नाही इनके सिपाहियों को अपने देश में बसने देना। यदि तैने इन्हें आने दिया और

किले बनाने की अनुमति दी तो याद रखना यह देश तुमसे छिन जायगा और यह इसके मालिक बन जायंगे'—

अलीवर्दीखां ने अंगरेजों की कूट नीति से अपने उत्तराधिकारी को सचेत किया। सिराज, महत्वाकांक्षी सरदारों से आवृत था अतः अलीवर्दी खां की आज्ञाओं को कार्य रूप में परिणत नहीं कर सका। परिणाम यह हुआ कि १७५७ ई० की पलासी की लड़ाई में बंगाल अंगरेजों के हाथ में चला गया। युरोपियन जातियों की बढ़ती हुई शक्ति को रोकने की ताकत उस समय भारत की तात्कालिक शासन शक्ति में नहीं थी। भारत की शासक शक्ति अफगानिस्तान के आक्रमणों, तथा अन्तः कलह के कारण क्षीण और निस्तेज हो चुकी थी।

अंगरेज जाति ने देर तक मराठा जाति से छेड़ छाड़ नहीं की। क्योंकि अंगरेज मराठों की शक्ति को समझते थे। १७५७ ई० तक मराठा सेनापतियों ने कई वार अंगरेजों के मुकाबले में, दिल्ली दरबार तक हाथ बढ़ाया। परन्तु यह अवस्था देर तक नहीं चल सकी। आखिर नारायणराव पेशवा के समय राघोवा के द्वारा अंगरेजों को मराठा शक्ति में प्रवेश करने का मौका मिला। अंगरेजों के राजनैतिक मायाजाल को छिन्न भिन्न करने वाली जाति यदि कोई भारत में थी तो मराठा जाति। अंगरेज और मराठे दोनों एक दूसरे को समझते थे। बंगाली मद्रासी मुसलमान सब जातियां इनके मायाजाल में उलझ चुकी थी।

(२)

नाना फड़नवीस और महादजी सेंधिया

Give us Nana Faranavis and such like, what poor pigmies we are as Indian administrators compared with natives of that stamp.

Mr. J. Sullivan.

यदि भारतवर्ष का सुशासन करना है तो हमें नाना फड़नवीस जैसे योग्य व्यक्तियों का संग्रह करना चाहिये । हम लोग नाना फड़नवीस जैसे योग्य शासकों के मुकावले में भारतीय शासक की दृष्टि से कुछ भी नही हैं ।"

नाना फडनवीस महाराष्ट्र इतिहास का चमकता सितारा था। यदि नाना फडनवीस अपनी नीति में सफल हो जाता; यदि देशद्रोही राघोवा अपनी स्वार्थ पूर्ण नीति से नाना के रास्ते में अड़चने पैदा न करता तो आज महाराष्ट्र देश-पराधीनता की बेड़ियों में न जकड़ा जाता। नानाफड-नवीस ने अपनी आंखों पानीपत का युद्ध देखा था।

पानीपत के मैदान में उमने देख लिया था कि किन कमियों के कारण मराठे लोग पराजित हुए थे। महादजी सेंधिया भी उस युद्ध के अनुभवी सैनिकों में से एक था। महादजी शूरवीर और पराक्रमी था। इस समय राजनीति में नानाफड़नवीस के पाए का दूसरा आदमी महाराष्ट्र में कोई नहीं था। दूसरी ओर रण कुशलता में महादजी सेंधिया की आन का दूसरा नहीं था। यदि दोनों मिलकर; महाराष्ट्र की रक्षा करना चाहते तो मराठा जाति का यह पतनकाल-उदय काल में परिणत हो जाता। अंगरेजों को इन दो वीर पुरुषों का ही मुकाबला करना था। महादजी सेंधिया योद्धा और महत्त्वाकांक्षी सिपाही था। अंगरेजों को उससे भय नही था। वह लोग ऐसे महत्त्वाकांक्षियों को सरलता के साथ आधीन करने में चतुर थे। वह समझते थे कि इनका असली मुकाबला नानाफड़नवीस से है। जब तक

नाना फड़नवीस महाराष्ट्र के राज्य कार्य को संचालित करेगा तब तक मराठा मंडल में अंगरेजों की दाल नहीं गलेगी।

महादजी सेंधिया महाराष्ट्र का भुजबल था, शस्त्रबल था। नाना फड़नवीस महाराष्ट्र का दिमाग था। जब तक दिमाग और बाहु परस्पर एक दूसरे के अनुकूल हों; तब तक दुश्मन वार नहीं कर सकता। वार करने वाला यही कोशिश करेगा कि किसी तरह दिमाग और बाहु आपस में न मिल सकें।

अंगरेज लोग युद्धों में सफलता प्राप्त करने के इस गुप्त रहस्य को समझते थे। इसलिए वह ऐसा मौका देखते थे जब इन दोनों में लड़ाई या अनबन पैदा हो। नाना फड़नवीस की राजनीतिकुशलता तथा योग्यता को देखने के लिये आवश्यक है कि तुलनात्मक दृष्टि से नानाफड़नवीस तथा महादजी सेंधिया का जीवन चरित पाठकों के सामने रखा जाय। इन दोनों व्यक्तियों ने महाराष्ट्र के यश को स्थिर रखने; उसकी विजय पताकाओं को दूर २ तक ले जाने में भरसक कोशिश की थी।

—:०:—

(३)

❋ महादजी सेंधिया ❋

सेंधिया के पूर्वज उच्च तथा प्रतिष्ठित घराने में से थे। वे लोग मुगल सम्राटों के यहां सेना में उच्च पदों पर काम कर चुके थे। भाग्य के फेर से पेशवाओं के यहां वह लोग नीच वृत्ति की सेवा में नियुक्त किए गए। राणो जी का पिता पटेल का काम करता था। राणो जी विश्वनाथ के शरीर रक्षकों में से एक था। राणो जी का यह काम था कि जब कभी पेशवा राजा से भेंट करने जाए तब वह उसके जूतों की देख रेख करे। एक बार राजा से बात चीत करते हुए पेशवा को देर होगई। इधर राणोजी की

आंख लग गई। राणा जी ने निद्रित होते हुए भी पेशवा के जूतों को अपनी छाती के साथ लगाकर संभाल रखा।

पेशवा राणोजी के इस भक्तिपूर्ण ईमान्दारी के व्यवहार से बहुत ही सन्तुष्ट हुआ, और उसे मालवा के उत्तरार्ध का शासक बना दिया। १८वीं सदी के प्रारम्भ में दिल्ली के बादशाह ने हैदराबाद राज दरबार के संस्थापक आसफजाह को मालवा का शासक बनाकर भेजा था। १७२१ ई० में आसफजाह दक्षिण में विजय यात्रा करने गया। तब मालवा में राजा गिरधारीलाल को शासक बनाकर भेजा गया।

इसी समय पेशवा ने मालवा को जीतने की अभिलाषा से राणोजी को मालवा के उत्तरार्ध का शासक बनाया और मालवा के दक्षिणी भाग को जीतने के लिए मल्हारराव जी होलकर को नियुक्त किया। उस समय के प्रचलित रीति रिवाजों के अनुसार राणो जी के अन्तःपुर में कई वेश्यायें थीं। इन वेश्याओं में से एक वेश्या से माधवरावया माधोजी सिंधिया था का जन्म हुआ। राणों जी का असली पुत्र देर तक जीवित नहीं रहा। माधोजी सिंधिया बिना किसी विरोध के राणोजी का उत्तराधिकारी बना। माधोजी वेश्यापुत्र था, इस कारण कट्टर हिन्दुओं में उसकी प्रतिष्ठा नहीं थी। नाना फड़नवीस ने उदार राजनीतिज्ञ की भांति माधोजी के प्रति मित्रता का भाव ही रखा। परन्तु जब नानाफड़नवीस ने देखा कि माधोजी सिंधिया अपनी महत्वाकांक्षियों को पूरा करने के लिए विदेशियों का सहारा लेरहा है, तब उसने इसका प्रतिवाद किया। माधोजी सिंधिया से महाराष्ट्र को बहुत आशाएं थी। माधोजी पानीपत का अनुभवी योद्धा था। परन्तु महत्वाकांक्षा की ज्वाला ने उसे महाराष्ट्रमंडल के लिए पूर्ण उपयोगी सिद्ध नहीं किया। अंगरेज लोगों की मालवा के उपजऊ मैदान पर दृष्टि थी, परन्तु इस समय होलकर राज्य में देशभक्ता अहिल्या बाई शासन करती थी। अहिल्यावाई ने विदेशियों को अपने राज्य में हस्ताक्षेप नहीं करने दिया, इसीलिए अंगरेजों ने मराठा मंडल में द्वेषाग्नि फैलाने के लिए सिंधिया को अपने जाल में फंसाया।

(४)

❋ नाना फड़नवीस की जीवनी ❋

नाना फड़नवीस का असली नाम बालाजी जनार्दन भानु था, इसका पालन पोषण उच्च घराने के कुमारों की तरह हुआ था। बालाजी विश्वनाथ के साथ जो भानु भाई छत्रपति के पास आए थे, उन्हीं के वंशजों में से नाना फड़नवीस था। बालाजी विश्वनाथ ने भानु बन्धुओं को मराठा मंडल में फड़नवीसी दफ्तर के लेख-पञ्जिका सम्बन्धी कार्यों पर नियुक्त किया। अपनी योग्यता द्वारा भानु बन्धु, पेशवाओं के साथ २ उन्नति के पथ पर अग्रेसर होते गए। पेशवाओं और भानु बन्धुओं के पूर्वजों में जिस प्रकार प्रेमभाव था, उसी प्रकार उनके वंशजों में पारस्परिक स्नेह का भाव बना रहा। जिस समय स्वार्थी लोगों ने पेशवाई पर आक्रमण करना चाहा उस समय इन भानु भाइयों ने ही उसकी रक्षा की। नारायणराव पेशवा की मृत्यु के बाद राघोबा दादा पेशवाई को अपने हाथ में लेना चाहता था, परन्तु नाना फड़नवीस ने परम्परागत धर्म का पालन करते हुए पेशवाई तथा मराठा मंडल को सुरक्षित करने का यत्न किया। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए उसने अपने आपको शान्त जीवन से निकाल कर, जटिल जीवन में डाला।

वैयक्तिक दृष्टि से नाना फड़नवीस का पेशवाई के कार्यों में भाग लेने में कोई स्वार्थ नहीं था। परन्तु रामदास तथा ब्रह्मेंद्र स्वामी की निष्काम कर्म करने की शिक्षाओं से प्रेरित होकर, नाना फड़नवीस ने निरीह भाव से राष्ट्रसेवा के लिए अपने आपको तय्यार किया और शिवाजी द्वारा स्थापित साम्राज्य की रक्षा करने का दृढ़ संकल्प किया।

पानीपत के भयंकर युद्ध में नाना फड़नवीस ने राजनीति की शिक्षा पाई थी। नाना फड़नवीस कुमारावस्था में ही (१६ साल की आयु में) मराठी सेनाओं के प्रधान सेनापति सदाशिवराव भाऊ का मन्त्री बनकर, पानीपत के मैदान में पहुँचा था। इस यात्रा का उद्देश्य उत्तरी भारत के

तीर्थों की यात्रा करना भी था। इस दूसरे उद्देश्य से प्रेरित होकर, नाना फड़नवीस की माता और धर्मपत्नी भी उसके साथ २ पानीपत के मैदान में पहुंची थी। पानीपत के मैदान में पराजित होजाने के कारण जो भागदौड़ मची उसमें नाना को माता और पत्नी से हाथ धोना पड़ा। कुमारावस्था में ही नाना अनाथ और विधुर होगया। पानीपत की भागदौड़ में नाना स्वयं वेष बदलकर पैदल भाग; भटक कर दक्षिण में पहुंचा था। इन आपत्तियों से उद्विग्न होकर प्रिय निकट सम्बन्धियों के विछोह से निराश होकर उसने एकबार सन्यासी फकीर बनने का निश्चय किया। परन्तु राष्ट्र भक्तों की प्रेरणा से उसने यह विचार छोड़ दिया और अपने जीवन को राष्ट्रकार्य में राजनैतिक सन्यासी का जीवन बिताते हुए लगाने का संकल्प किया।

माधवराव पेशवा का मन्त्री बनकर नाना ने अपने अनुभवों से राष्ट्र की जो सेवा की उसे कोई नहीं भुला सकता। माधवराव की मृत्यु के बाद नारायणराव पेशवा के अल्पकालिक दुःखान्त शासन काल में भी नाना फड़नवीस इसी हैसियत में काम करता रहा। इस प्रकार धीरे २ सब तरह का अनुभव प्राप्त कर माधवराव द्वितीय के समय नाना फड़नवीस अष्ट प्रधान मंडल में प्रधानामात्य के पद तक पहुंचा। इस पद पर पहुंच कर उसने पेशवाई तथा मराठा मंडल को जिस योग्यता से संभाला उसकी सराहना, खिजे हुए अंग्रेज समालोचकों को भी करनी पड़ी। नाना फड़नवीस और राघोबा की इस लिये नहीं बनी क्यों कि राघोबा ने बम्बई के अंग्रेज व्यापारियों की सहायता से मराठा मंडल में उथल पथल मचाने का यत्न किया था।

नाना फड़नवीस की अपने समकालीन अन्य भारतीय राजनीतिज्ञों से, विशेषता यह थी कि वह शत्रु को अच्छी तरह समझता था और उसकी चालों को गहरी तथा सूक्ष्म दृष्टि से देखता था। महादजी सेंधिया तथा राघोबा आदि तो यही नहीं जानते थे कि उनका असली शत्रु कौन है?

वह पुराने स्वभाव के अनुसार मुसलमानों तथा प्रतिद्वन्दी पुराने मराठे सरदारों को ही अपना दुश्मन समझते थे।

नाना फड़नवीस ने यह बात ताड़ली थी कि इस समय भारतीय राज घरानों का असली दुश्मन कौन है ? उसने देख लिया था कि दिल्ली के बादशाह तथा हैदराबाद के निज़ाम और टीपू सुलतान में इतना पानी नहीं कि वह मराठों की शक्ति का अपमान कर स्वेच्छाचार कर सकें। यह सब लोग मराठों की तलवार का लोहा मान चुके थे। इस लिए नाना फडनवीस ने अपनी शक्ति को इन जीते हुए शत्रुयों के नाश में लगाना उचित नहीं समझा। इतना ही नहीं अपितु; उसने इन स्वदेशी भारतीय राजाओं और नवावों को एक सूत्र में ग्रथित करने का प्रयत्न किया। इस प्रयत्न को पूरा करने के लिए उसने गुप्तचर विभाग का एसा प्रबन्ध किया था जिससे उसे अंगरेजों की हरेक चाल का पता लगता रहे। इस गुप्तचर विभाग की–उत्तमता के कारण ही अंगरेजों की भेदनीति महाराष्ट्र में सफल नहीं हो सकी। नानाफड़नवीस के इस गुप्त-चर बिभाग के प्रवन्ध के सम्बन्ध में निम्नलिखित उद्धरण लिखना अप्रासंगिक नहीं है।

"नानाफड़नवीस के गुप्तचर विभाग का प्रबन्ध इतना उत्तम तथा पूर्ण था कि देश के किसी भी भाग में यदि कोई महत्वपूर्ण घटना होती थी तो उस घटना के सम्बन्ध में भिन्न २ साधनों द्वारा दर्जनों की संख्या में वृतान्त लेख ठीक समय में उसके पास पहुंचते थे। इन भिन्न २ स्थानों से आए हुए वृत्तान्त लेखों को पढ़कर, वह अपने कमरे में बैठा हुआ ही घटना की असलियत को जान लेता था। (मेजरवसु)

माधोजी सिंधिया को नाना फड़नवीस कहा करते थे कि यदि हमने मराठा साम्राज्य में अंग्रेजों को पैर तक रखने का भी स्थान दिया तो यह देश हमारे हाथ में नहीं रहेगा। जहां नाना फड़नवीस असली शत्रु को पहचानता था वहां प्रतिद्वन्दी शत्रु अंग्रेज भी इस बात को समझते थे कि

भारत की राजशक्ति मुगल बादशाहों के हाथों से छिनकर मराठों के हाथ में चली गई है। मराठों के सेनापति तथा राजदूत दिल्ली में शाहआलम के सलाहकार थे। वह समझते थे कि जबतक महाराष्ट्र में नाना फड़नवीस की मुख्यता रहेगी तबतक कोई महाराष्ट्र तथा भारत की राजधानी दिल्ली में प्रभुता नहीं पा सकता। पूना के रेजिडेण्ट चार्लस म्लेट ने लिखा था:—

As long as Nana remained supreme at the Poona court they (British) should never dream of obtaining a firm footing in the Maharatta Empire.

जबतक पूना दरबार में नाना फड़नवीस की मुख्यता है तबतक ब्रिटिश जाति को मराठा साम्राज्य में स्थिर स्थान प्राप्त करने की आशा नहीं करनी चाहिये।"

इस प्रकार दोनों शत्रु एक दूसरे का महत्त्व समझते हुये एक दूसरे का दमन करने के लिए भरसक यत्न करते थे। एक ओर क्लाइव की कूट-नीति के सम्प्रदाय में शिक्षा पाया हुआ वारन हैस्टिंग है, दूसरी ओर नाना फड़नवीस। वारन हेस्टिङ्ग ने जी जान से राघोबादादा तथा सिंधिया आदि को प्रलोभन देकर, नाना फड़नवीस के विरुद्ध करने की कोशिश की। पूना दरबार में फूट पैदा करने में कुछ कसर नहीं छोड़ी। दूसरी ओर नाना ने मैसूर निज़ाम भोंसले आदि राजवंशों को अंग्रेजों के विरोध में खड़ा करने में अपना वह अप्रतिम चातुर्य दिखाया जिसे देखकर अंग्रेजों को भी चकित होना पड़ा। नाना फड़नवीस ने दुनियां को विसार कर भी, ब्राह्मण वृत्ति को धारणकर, आने वाली जनता के सामने यह उदाहरण रखा है कि किस प्रकार राष्ट्र सेवा के लिए निष्काम भाव से काम करना चाहिये। नाना फड़नवीस ने अपने जीते जी अपने प्रण को निबाहा और अंग्रेजों को मराठा मंडल में पैर नहीं जमने दिया। ऐसे निष्काम कर्मयोगी ही राष्ट्रों को तारने वाले होते हैं।

(५)

❋ पूना दरबार और अंग्रेज ❋

जब राघोबा को पता लगा कि पूना दरबार के दरबारी उसे पेशवा नहीं बनाना चाहते तब वह अपनी रक्षा के लिये गुजरात चला गया। राघोबा ने नारायणराव पेशवा की विधवा के पुत्र पैदा होने की घटना के सम्बन्ध में भ्रम फैलाने शुरू किए और बम्बई की अंग्रेजी सरकार का सहारा लेकर, यह प्रमाणित करना चाहा कि नारायण राव की विधवा के कोई पुत्र नहीं हुआ।

बम्बई की सरकार ने मराठा दरबार में झगड़े पैदा करने के लिये राघोबा के पक्ष को पुष्ट करने में किसी तरह की कमी नहीं की। पूना दरबार के अन्तःकलहों तथा अंग्रेजों की कुटिल चालों का वर्णन करने से पहले यह बता देना आवश्यक है कि इस समय भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी सरकार की क्या स्थिति थी।

१७७३ ई० के रेगुलेटिङ एक्टके बननेसे पूर्व, बंगाल मद्रास तथा बम्बई की प्रैसीडेन्सी सरकार बिलकुल स्वतन्त्र थी। इंग्लैण्ड में रहने वाले कोर्ट आफ डाइरैक्टर्स के साथ इनका सीधा सम्बन्ध था। परन्तु १७७३ ई० के रेगुलेटिङ एक्ट के अनुसार बंगाल का गवर्नर, गवर्नर जनरल बना दिया गया। वह पार्लियामैंट द्वारा नियुक्त कौंसिल की सहायता से मद्रास तथा बम्बई की सरकारों का निरीक्षण करती थी।

वारन हैस्टिङ और उसकी कौंसिल की आपस में नही पटती थी। कौंसिल के फ्रैन्सिस आदि मेम्बर उसकी कुटिल नीति को पसन्द नहीं करते थे। इसलिये उसके प्रत्येक कार्य की भारतीय हित की दृष्टि से आलोचना करते थे। जबतक इस कौंसिल का जोर रहा वारन हैस्टिङ को अपनी स्वेच्छाचारिता चलाने का मौका नहीं मिला। यह कौंसिल, रेगुलेटिङ एक्ट के अनुसर अपने अधिकारों का प्रयोग कर बम्बई आदि की प्रेजिडेन्सी सरकारों को समय २ पर टोकती थी।

राघोवा ने बम्बई की सरकार से सहायता मांगी। बम्बई सरकार को चाहिये था कि वह कलकत्ता कौंसिल तथा गवर्नर जनरल की स्वीकृति से ही राघोवा के साथ किसी प्रकार की संधि करती। परन्तु बम्बई सरकार ने अपने चिरकाल के स्वप्नों को पूरा करने के लिये राघोवा से सूरत की संधि कर ली। अंगरेज लोग वसई और सलसेटी नाम के स्थानों पर अधिकार करना चाहते थे।

राघोवा ने जब सहायता मांगी तब बम्बई सरकार ने १७७५ ई० मार्च मास में सूरत शहर में राघोवा के साथ संधि की। इस संधि की शर्तों में यह तय हुआ कि राघोवा अंगरेजों को वसई और सलसट के शहर तथा सूबा सूरत के मराठी हिस्से दें। अंगरेज अपनी सेना की सहायता से राघोवा को पेशवाई दिलाएंगे। इस सूरत की संधि के कारण मराठे और अंगरेजों में लड़ाई हुई। राघोवा कर्नल कीटिंग की सेना के साथ पूना पर चढ़ाई करने के लिए १७ मार्च को कैम्बे स्थान पर पहुंचा। कैम्बे से ११ मील उत्तर पूर्व दुर्मज स्थान पर राघोवा ने अपनी अवशिष्ठ टुकड़ी को तैनात किया था। १९ अप्रैल को कर्नल कीटिंग भी यहीं आ पहुंचा।

इस बड़ी सेना के साथ राघोवा पूना की ओर बढ़ा। दूसरी ओर से पूना दरबार ने हरीपन्तफडके के नेतृत्व में शत्रु का मुकाबला करने के लिये अपनी सेना भेजी। दोनों सेनाओं की पहली मुठ भेड़ में कई अंगरेज सिपाही मारे गए और कई ज़ख्मी रहे। दक्षिण के घरू झगडें तथा वर्षा ऋतु के समीप होने से हरिपन्तफड के पूना की ओर लौटने लगा। कर्नल कीटिंग ने नर्मदा नदी के समीप उसका पीछा किया परन्तु किसी प्रकार की सफलता नहीं हुई। जिस समय राघोवा गुजरात में पहुंचा। उस समय गायकवाड के घराने में पिल्लोजी की मृत्यु के बाद सयाजीराव और गोविन्दराव में राजगद्दी के लिए झगड़े हो रहे थे। सयाजीराव पागल था परन्तु उसका छोटा भाई फतेसिंह चालाक चुस्त था। फतेसिंह अपने भाई की ओर से गोविन्दराव से लड़ रहा था। कर्नल

कीटिंग ने इस गृह कलह से फायदा उठाना चाहा। परन्तु जबतक हरिपंत फड़के वहां रहा उसकी कोई भेदनीति नहीं फली, राघोवा को गुजरात से कोई सहायता नहीं मिली। इधर हरिपंत फड़के के लौटते ही बम्बई सरकार ने प्रसिद्ध कुटिल मोस्टन को गुजरात भेजकर, गायकवाड़ के गृहकलह को खूब बढ़ाया, मौका देखकर फतेहसिंह के साथ संधि करके भड़ोंच के उपजाऊ इलाके तथा नर्वदा के पास के प्रदेशों को अपने अधिकार में किया। सयाजीराव नाम मात्र का राजा रहा, असली शक्ति फतेहसिंह के हाथ में रही। इस संधि के कारण अंगरेजों को गुजरात के तीन परगने मिले। अंगरेजों के साथ अलग संधि करने से गायकवाड़ का राज्य मराठा मंडल से अलग होगया और इसने मराठा मंडल की संगठित शक्ति को शिथिल करने की भूमिका बांधी।

कलकत्ता कौन्सल ने कर्नल आप्टन को पूना भेजा। यहां देरतक संधि चर्चा करने के बाद १७७६ ई० में पुरन्दर की संधि स्वीकार की गई और सूरत की पहिली संधि को रद्द किया गया। इस संधि द्वारा राघोवा को जीवन निर्वाह के लिए काफी सामान संग्रह की सुविधाएं देकर, मित्र भाव को स्थिर रखने के लिए अंगरेजों को वसई भड़ोंच और सालसट के प्रदेश दे दिये गए। राघोवा को पेशवा नहीं माना गया। कलकत्ता सरकार के इस कार्य से बम्बई सरकार ने असन्तोष प्रकट किया और विलायत के कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स से सूरत की सन्धि की स्वीकृति के लिये सीधी आज्ञा मांगी। वहां से स्वीकृति आने पर उन्होंने पुरन्दर की संधि को रद्द करने तथा सूरत की संधि को कार्य रूप में लाने का निश्चय किया। इसी समय कर्नल आप्टन बंगाल लौट गया। बंगाल सरकार ने बम्बई सरकार को पूना में एक रेजिडेन्ट भेजने का आदेश दिया। बम्बई सरकार ने मि० मोस्टन को इस काम के लिए चुना। पूना दरबार के मन्त्रियों ने इस का प्रतिवाद किया और कहा कि मोस्टन की जगह किसी दूसरे को भेजा जाय। क्योंकि मोस्टन ने ही नारायणराव पेशवा के समय अन्तःकलह पैदा की थी। परन्तु बंबई सरकार अपनी जिद पर रही। उसने १७७७ ई०

मार्च में मि० मोस्टन को पुरन्दर की सन्धि की शर्तों को रद्द करने का आदेश देकर भेजा। मोस्टन ने आते ही अपना काम शुरू किया। पूना दरबार में सेन्ट ल्युविन नाम का फ्रांसीसी साहसी रहता था। मि० मोस्टन ने बम्बई सरकार तथा कलकत्ता कौन्सल के पास यह रिपोर्ट पहुंचाई कि नानाफडनवीस ने मि० ल्युविन के साथ मिलकर अंगरेजों के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा है। परन्तु ऐतिहासिक मि० हौन्धी का कहना है कि नाना फडनवीस किसी भी विदेशी की वातों पर विश्वास नहीं करता था। यथार्थ यह है कि अंगरेजों के लिए इस समय फ्रांसीसी लोग हौवा थे। उन्हें हर जगह फ्रांसीसी षड्यन्त्र करते हुए ही दिखाई देते थे। मि० मोस्टन ने यहीं तक बस नहीं की। उसने सखाराम बाबू और नाना के भतीजे मोरोवो को नाना-फडनवीस के विरुद्ध करना शुरू किया। मि० मोस्टन की सहायता से मोरोवो ने पूना दरवार में नाना फडनवीस को हटाकर स्थान प्राप्त किया।

इसी समय मि० मोस्टन ने मोरोवो द्वारा बम्बई सरकार के पास प्रार्थना की कि वह रावोवा को पूना भेज दे। पुरन्दर की संधि के अनुसार अंगरेजों को रावोवा के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये, और नाही उसको पेशवाई प्राप्त करने के लिये सहायता देनी चाहिये थी। परन्तु बम्बई सरकार पुरन्दर की संधि के शर्तों को जान बूझकर तोड़ने पर तुली हुई थी। इधर पूना दरबार ने जब देखा कि अंगरेज आवश्यक शर्तों को पूरा नहीं कर रहे; तब उन्होंने भी पुरन्दर की संधि के अनुसार अंगरेजों को जो सहूलियतें तथा रियायतें देनी थी उनको पूरा करने में विलम्ब किया। विलम्ब का वहाना कर, वारन हैस्टिंग ने मराठों के विरुद्ध युद्ध करने का निश्चय किया। कलकत्ता कौन्सिल में हैस्टिंग के प्रतिद्वन्दियों का ज़ोर कम हो गया। फ्रांसिस फिलिप के विरोध करने पर भी, वारन हेस्टिंग ने युद्ध की घोषणा कर दी और बंगाल से आज्ञा प्रकाशित की कि काल्पी की सेनाएं बम्बई की ओर रवाना की जांय। अभी यह सूचना निकली ही थी कि पूना में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गए हैं। मोरोवा जिसने रावोवा को पूना में आने के लिये निमन्त्रित किया था, अहमदनगर के

किले में कैदहो गया है। नाना फड़नवीस पूना दरबार में प्रधानामात्य बन गया। सखाराम बापू और नाना फड़नवीस में जो अनबन थी, वह दूर हो गई, और दोनों एक हो गये हैं। इसप्रकार नाना फड़नवीस के नेतृत्व में पूना दरबार हेस्टिंग की अंगरेजी सेना का मुकाबिला करने के लिए सन्नद्ध हो गया।

(६)

❀ नाना फड़नवीस और वारन हेस्टिङ्ग ❀

वारन हेस्टिंग ने कर्नल लेजली के नेतृत्व में सेना को युद्ध के लिए रवाना किया था। वारन हेस्टिंग ने प्रत्यक्ष रूप में यह कहा कि यह सेनाएं भारत के पश्चिमी तट पर फ्रांसीसियों के षड्यन्त्र का उच्छेद करने के लिये भेजी जा रही है। इसीलिये नाना फड़नवीस से इस बात की इजाजत मांगी कि उसकी सेनाए मराठा दरबार की भूमि में से जा सके। नाना फड़नवीस ने गवर्नर जनरल को सन्तुष्ट करने के लिए फ्रेंच साहसी सेन्टल्युबिन को अपने राज्य से बाहर भेज दिया। इसपर भी वारन हेस्टिंग ने सेनाओं की गति को नहीं रोका।

शत्रु के इस व्यवहार से नाना फड़नवीस इस परिणाम पर पहुंचा कि अंग्रेज लोग पुरन्दर की संधि को तोड़ने के लिए उतारू हैं और किसी न किसी प्रकार युद्ध छेड़ने का बहाना ढूंढ रहे है। यह देख कर नाना फड़नवीस ने भी मुकाबला करने की तय्यारियां शुरू कर दी।

इसी समय युरोप में इंगलैंड और फ्रान्स में लड़ाई छिड़ गई। वारन हेस्टिंग ने एकदम बम्बई सरकार को सूचना दी कि वह भोसले के साथ संधि करे और पूना दरबार के प्रति द्वेष भाव प्रकट न करे। परन्तु बम्बई सरकार ने इसकी कुछ परवाह नहीं की। राघोबा को कर्जा देकर आर्थिक सहायता दी; और अपनी सेना की एक टुकड़ी नाना फड़नवीस

तथा उसकी पार्टी का दमन करने के लिये रवाना की। बम्बई सरकार के एक सभ्य मि० ड्रेपर ने कहा कि हमें शीघ्रता नहीं करनी चाहिये। वारन हेस्टिंग द्वारा भेजी गई सेना की प्रतीक्षा करनी चाहिये। परन्तु उसकी नहीं सुनी गई। २२ नवम्बर को कर्नल ईगर्टन के नेतृत्व में तथा मोस्टन आदि तीन सभ्यों की कमेटी के निरीक्षण में अंगरेजी सेना राघोवा को पेशवा बनाने तथा पूना दरवार का मान मर्दन करने के लिये भेज दी गई। उसी समय मि० मोस्टन जोकि अपनी कुटिल नीति के कारण प्रसिद्ध था बीमार पडा और बम्बई लौटकर १७७६ ई० जनवरी में मर गया।

राघोवा इस लड़ाई में स्वयं सेना के साथ था। उसके नाम से युद्ध सम्बन्धी सूचनाएं जारी की गई। खान्डेलतक अंगरेजी सेना निरन्तर बेरोक टोक बढ़ती गई। नानाफड़नवीस इस समय चुपचाप नहीं बैठा था। अपने गुप्तचर विभाग द्वारा उसे दुश्मन की हरेक बात पल २ में मलूम हो रही थी। वह बम्बई सरकार की चालों को सूक्ष्म दृष्टि से देख रहा था। सिंधिया और होलकर, इस समय पूना दरवार में थे। नाना ने उन दोनों को सेनापति बनाकर, मराठा सेना के साथ अंगरेजों, का मुकाबला करने भेजा। मराठे, सरदारों ने खान्डेल तक जानबूझ कर अंगरेजी सेना को नहीं रोका और उन्हें तलीगांव तक बेरोकटोक बढ़ने दिया। तलीगांव बम्बई से १८ मील की दूरी पर है। १७७६ की ७ जनवरी को अंगरेजी सेना इस जगह पहुची। इसी स्थान पर मराठी सेना अपने सेनापतियों के निरीक्षण में मुकाबला करने के लिए सन्न खड़ी थी। मराठों की इस सजी सजाई सेना को देखकर अंगरेजी सेना के दिल भय कम्पित हो गए। उन्होंने सोचा कि दुश्मन का मुकाबला करके, पराजित होने की अपेक्षा पहले ही लौटजाना अच्छा है। अंगरेजी सेना के पास केवल मात्र १८ दिन की रसद बाकी थी। पूना वहां से ३,४ दिन की पहुंच में था। भय भीत हुई अंगरेजी सेना ११ जनवरी को बम्बई की ओर लौटने लगी। लौटती हुई सेना ने भारी २ तोपें बडे तालाबों में डालदी और रसद के स्टोरों को जला दिया।

मराठी सेनाओं ने लौटती हुई अंगरेजी सेना को चारों ओर से घेर लिया; और बम्बई सरकारकी रसद तथा सामान को लूट लिया। परन्तु मनुष्यता के नाम पर अंगरेजी सेना का जीव नाश नहीं किया। चारों ओर से घिरी हुई अंगरेजी सेना ने शत्रु के सामने आत्म समर्पण कर दिया; और १३ जनवरी को सेना के साथ आई हुई संधि कमेटी ने पूना दरबार के स . संधि की बात चीत शुरू की। अंगरेजी सेना ने पूना दरबार द्वारा पेश की गई शर्तों को स्वीकार करने में आना कानी की परन्तु लाचार होकर उन्हें निम्नलिखित शर्तें स्वीकार करनी पडी:—

१. अंगरेज राघोबा को पूना दरबार के हाथ में सौंपदें।

२. माधवराव बल्लाल के समय से महाराष्ट्र के जो प्रदेश अंगरेजों ने जीते हैं उन्हें तथा भडोंच और सूरत में जो कर बसूल किया है, उसे, लौटादें।

३. दूसरी तरफ वारन हेस्टिंग ने कर्नल लेसली के नेतृत्व में बंगाल से जो सेना भेजी थी वह धीरे २ आगे बढ़ रही थी। वारन हेस्टिंग कर्नल लेसली की इस सुस्ती से नाराज था और निश्चय कर चुका था कि कर्नल लेसली को सेनापति पद से हटा कर कर्नल गाडर्ड को उस पद पर नियुक्त किया जाय।

अभी यह विचार हो रहा था कि कर्नल लेसली का देहान्त होगया। कर्नल गाडर्ड बुन्देल खंड और मध्य भारत में से होता हुआ बम्बई की ओर आ रहा था। रास्ते में हिन्दु राजाओं ने उसका विरोध किया, परन्तु भूपाल के नवाब ने उसका साथ दिया। बरार के राजा ने अंगरेजों के साथ सुलह तो नहीं की, परन्तु बंगाल की सेना को बरार में से होकर जाने से नहीं रोका। कर्नल गाडर्ड को रास्ते में ही बम्बई की अंग्रेजी सेना की अपमानजनक पराजय का हाल मालूम हुआ। यह सुनते ही वह सूरत की ओर अपनी सेना लेकर वेग के साथ बढ़ने लगा। ६ फर-

वरी को पूना दरबार ने अपना वकील भेजकर अंगरेजी सेना को एकदम बंगाल लौटने के लिये कहा। अंगरेजी सेना के सेनापतियों ने कहा कि हम गवर्नर जनरल की आज्ञा से बम्बई जा रहे हैं। मराठों के साथ हमारी किसी प्रकार की लड़ाई नहीं है। मराठा वकील इस बहकावे में आ गया। जब वारन हेस्टिङ्ग को बम्बई की सेना के पराजय का हाल मालूम हुआ उसने कर्नल गाडर्ड को बम्बई तथा बंगाल की सयुक्त सेनाओं का सेनापति नियत कर आज्ञा दी कि वह पूना दरबार से पुरन्दर की सन्धि को स्वीकार कराए तथा उनसे यह भी वचन ले कि वह फ्रान्स वालों के साथ किसी प्रकार का ब्यापारिक व राजनैतिक सुलहनामा नहीं करेंगे। कर्नल गाडर्ड को यह भी अधिकार दिया कि यदि आवश्यकता हो और पूना दरबार सन्धि न करे तो युद्ध की घोषणा भी करदी जाय।

वारन हेस्टिङ्ग ने मराठा मंडल में गृह कलह पैदा करने की ओर विशेष ध्यान दिया। गायकवाड़ अंगरेजों के साथ था। कर्नल कीटिंग द्वारा बरार के राजा को भी प्रलोभन देकर मराठा मंडल से अलग कर लिया गया। अब सिन्धिया और होलकर को मराठा मंडल से अलग करने की सिरतोड़ कोशिश होने लगी। माधोजी सिंधिया नाना फड़नवीस का दायाँ हाथ था। जिस समय बम्बई की पराजित सेना ने सन्धि की शर्तों को पूरा करने के लिये जमानत के रूप में, दो अंगरेजों को मराठों के यहां रखा तब यह गौरव महादजी को ही था कि वह उन अंगरेजो तथा राघोबा का निरीक्षक नियत कियाजाय। कर्नल गाडर्ड ने गुजरात में सिंधिया को हरेबाग दिखा कर, नाना फडनवीस के मुकाबले में मराठा मंडल में मुख्यता दिखाने की आशा दिलाई। माधोजी सिंधिया इस जाल में फँसगया उसने जमानत के रूप में रखे हुए अंगरेजों, तथा राघोबा को अंगरेजों के हाथ में लौटा दिया। सिंधिया को आशा थी कि अंगरेज इस उपकार के बदले उसके साथ अलग सन्धि करेंगे। परन्तु कर्नल गाडर्ड ने ठीक समय पर चकमा दे दिया और अलग सन्धि करने से साफ मनाई करदी। कर्नल गाडर्ड ने मौका देखकर महाद जी के सैनिकों पर छापा भी डाला अन्यों को मैदान से भगा देने में भी संकोच नहीं किया।

नाना फड़नवीस अंगरेजों के कुटिल तथा अविश्वासनीय व्यवहार से तंग था उसने सोचा कि एकबार इनको अच्छी तरह बता देना चाहिये कि वर्तमान भारत में उनकी क्या स्थिति है ? इस उद्देश्य से नाना फड़नवीस ने साम्प्रदायिक मतभेद की परवाह न करके निजाम, हैदरअली अर्काट के नवाब तथा अन्य छोटे राज्यों को अंगरेजों के विरुद्ध संगठित होने के लिए निमन्त्रण दिया। उसी उद्देश्य से दिल्ली के बादशाह को अपने साथ मिलाने के लिए, दिल्ली स्थित मराठा वकील पुरुषोत्तम महादेव हिंगे के द्वारा निम्नलिखित आशय की चिट्ठी दिल्ली में शाह आलम के पास भेजी।

"टोपिकारों (युरोपियनों) के रंग ढंग अन्यायपूर्ण तथा शरारत से भरे हैं। उनका तरीका यह है कि वह पहले भारतीय राजाओं को फुसलाते है और पीछे उनके राज्य को छीन कर, राजा को कैद में डाल देते हैं। उदाहरण के लिए शुजाउद्दौला महम्मदअली खां, चन्दावर और अर्काट के राजा पर्याप्त हैं। इस लिये आपको चाहिए कि युरोपियनों को उठने न दें, नहीं तो युरोपियन लोग सारे देश पर अधिकार करलेंगे। दिल्ली का सम्राट् सम्पूर्ण देश का स्वामी है। इसलिए यह सर्वथा उचित है कि वह इस बात पर ध्यान दें। दक्षिण के सब राजा परस्पर मिल गए हैं। उत्तरीय भारत में सम्राट और नाजवखां को चाहिए कि सब राजाओं को संगठित कर अंगरेजों का दमन कर उनकी बढ़ती शक्ति को रोकें इसी में भारतीय साम्राज्य की प्रतिष्ठा और समृद्धि बढ़ेगी।"

हेस्टिंग को नाना फड़नवीस की इस चाल का जब समाचार मिला वह एक दम सहम गया। उसने कर्नल गार्डड द्वारा निराश किए गए, महादजी जी सिंधिया को फिर से आशा की चमक दिखाकर पूना दरबार के साथ संधि करने के लिए मध्यस्थ बनाया। इस मध्यस्थी का परिणाम ही सालबाई की संधि है। यदि महाद जी मध्यस्थ न बनता तो असम्भव नहीं था कि हिन्दुस्तान के सम्मिलित राज्य अंगरेजों की शक्ति को सर्वथा के लिए नष्ट कर देते। परन्तु देव को यह अभीष्ट नहीं था। अंगरेजों को इस समय अनुभव हुआ कि उनके मुकाबले में भी कोई शक्ति है जिसको आंखों से

ओझल नहीं किया जा सकता। हेस्टिंग को नानाफड़नवीस की नीति कुशलता तथा रण चातुरी के सामने हार माननी पड़ी। महत्वकांक्षी महादजी की सहायता लेकर, मुश्किल से अपनी प्रतिष्ठा को कायम रखा। इस संधि की (१७८१ ई०) मुख्य शर्तें यह हैं:—

१. राघोबा का पक्ष अंगरेज छोड दें और वह तीन लाख सालाना पैन्शन लेकर चाहे जहां कहीं रहें।

२. सालसट टापू अंगरेजोंके अधिकार में रहे परन्तु दोनों एक दूसरे के जीते हुए प्रदेश एक दूसरे को लौटादें।

३. मराठे अंगरेजों के युरोपियन शत्रुओं की मदद न करें और अंगरेज मराठों के देशी शत्रुओं की मदद न करें।

४.गायक बाड नियमानुसार पेशवा को कर देकर, अपने मुल्क का प्रबन्ध करे।

५. अंगरेज व्यापारियों को दक्षिण में व्यापार करने की छुट्टी मिली।

इस समय राघोबा का देहान्त हो गया और नानाफडनवीस ने अवसर पाकर मराठा मंडल को फिर से संगठित करने का यत्न शुरू किया। नाना फडनवीस की धाक चारों ओर बैठगई। अंग्रेज लोग भी उसकी योग्यता को सराहने लगे और उसके जीते जी उन्होंने महाराष्ट्र पर आंख उठाने का साहस नहीं किया।

(७)

❀ दिल्ली का टिमटिमाता दीपक ❀

१७६१ ई० में पानीपत के मैदान में मराठों और मुसलमानों में जो लड़ाई हुई थी, उसमें यह निश्चित होगया था कि दिल्ली के बादशाह टिमटिमाते दीपक की तरह शीघ्र ही बुझ जायगे। वजीर जिसे चाहते थे उसे गद्दी पर बिठाते थे। गड़बड़ में दिल्ली के बादशाह आलमगीर का खून हुआ। इस आलम गीर का लड़का शाह आलम बंगाल में था। पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर, इसने अंगरेजों का सहारा लेकर, अपने आपको इलाहाबाद में अभिषिक्त कराया। भारत साम्राज्यका केन्द्र शहर दिल्ली था। जिसके हाथ में दिल्ली का बादशाह होगा, वही भारत में शासन करेगा। इस बात को उस समय की उठती हुई शक्तियां भली प्रकार समझती थी। अंगरेज, मराठे और अवध का वजीर, तीनों ही इस कोशिश में थे कि बादशाह उनके हाथ में आजाए। जब तक दिल्ली दरबार में नजीबखान रहा, मराठों की कुछ नहीं चली। अंगरेज लोग नजीवखां को सहारा देकर, मराठों के विरोध में षड्यन्त्र रचते थे और धीरे २ दरबार में अपना प्रभाव बढ़ा रहे थे। परन्तु नजीवखान की मृत्यु के बाद मराठों को रोकने वाला प्रभावशाली व्यक्ति दरबार में कोई नहीं था। शुजाउद्दौला और अंगरेज बादशाह को दिल्ली नहीं पहुचा सके। इस दशा में निराश होकर बादशाह ने मराठों की शरण ली। बादशाह शाहआलम में इतना तेज और बुद्धि वल न था कि वह स्वयं दिल्ली पहुंचकर आत्मरक्षा कर सके।

मराठों और बादशाह में यह तय हुआ कि बादशाह मराठों को १० लाख रुपए दे और वह उसे दिल्ली पहुंचाएं। अंगरेजों ने कलकत्ता से अपना वकील भेजकर, बादशाह को इस प्रकार की शर्त करने से मना किया। मई मास में बादसाह इलाहाबाद से दिल्ली की ओर प्रस्थित हुआ। दिसम्बर मास में पाटलि वुवा महाद जी के साथ बादशाह शाहआलम ने, दिल्ली शहर में प्रवेश किया। महाजी सिंधिया ने बादशाह को गद्दी पर

बिठाया। दिल्ली दरबार में दो पार्टियां होगई। एक मराठों के पक्ष की दूसरी रुहेले अफगान सरदारों की। महादजी सेंधिया की प्रवल अभिलाषा थी कि वह इस झगड़े को भी अपने सामने समाप्त करता। परन्तु दक्षिण में पेशवाई के सम्बन्ध में नए झगड़े पैदा होने के कारण उसे पूना लौटना पड़ा। इधर दरबार में १७८२ ई० तक बादशाह के सहायकों की रक्षा में उसकी स्थिति सुरक्षित रही। परन्तु नवाब खां के मरते ही बादशाह असहाय होगया। महत्त्वाकांक्षी सरदार स्वार्थसिद्धि के लिए बादशाह को अपने मतलब के अनुसार चलाते थे। बादशाह दरबार की इन आंधियों से बचने के लिये किसी न किसी रक्षक को ढूंढता था। शाह आलम की दशा बुझने से पहले टिमटिमाते दीपक की तरह थी। आंधी का झोंका आया और उस की स्थिति डांवाडोल हो जाती थी। कभी वह रुहेलों की पार्टी का बनता था कभी किसी दूसरे का। इसी क्रम में महाद जी सेंधिया सालवाई की संधि के बाद, १७८३ ई० में दिल्ली पहुंचा। दिल्ली से महादजी का बहुत प्रभाव था। उसने सब पर अपनी धाक बैठाई और बादशाह के नाम से आगरा के किले में रहकर शासन करना शुरू किया। इस समय महाद जी ने राज्य में कई हेर फेर किए। योग्य व्यक्तियों को ऊंचे २ पदों पर नियुक्त किया। अयोग्यों को कार्यमुक्त किया। इस कारण कई सरदार दिल २ में महाद जी से द्वेष करने लगे। १७८७ ई० में इसी अनबन के कारण राजपूतों और मराठों में बालसोर में लड़ाई भी हुई। इसमें महाद जी हार गया। दरबार में महाद जी के शत्रुओं तथा राजपूतों का पक्ष प्रबल हो गया। बादशाह भी उनका पक्ष लेने लगा। उसने राजपूतों के साथ मिलकर, अजमेर प्राप्त करने की अभिलाषा से मराठों का तिरस्कार करना चाहा। दरबार में इस्माइल बेग और गुलाम कादिर ने षडयन्त्र रचकर, बादशाह को लूटने तथा सिंहासन भ्रष्ट करने का षडयन्त्र किया। महाद जी मथुरा में था। वह जान बूझकर उदासीन भाव से इन घटनाओं को देख रहा था। बादशाह बाहर था। इस्माइल बेग तथा गुलाम कादिर ने किले पर तोपें तैनातकर, जबर्दस्ती बादशाह से वज़िरी प्राप्त की और कुरान की शपथ ली कि हम बादशाह

की रक्षा करेंगे, और उसे शहरमें आने दिया। परन्तु इस प्रकारके स्वार्थियों तथा राक्षसों की शपथें निःसार होती है। इन्हें केवलमात्र रुपये से वास्ता होता है। बादशाह ने बड़ी आशा से अपनी राजशक्ति को सुरक्षित करने के लिए उनका सहारा लिया परन्तु उसे क्या मालूम था कि यही लोग इनके अत्याचार करेंगे। सचाई यह है कि निर्बल को कोई नहीं पूछता। इन सबों मुसलमान सरदारों को मालूम था कि बादशाह निर्बल है। चलती हुई हवा भी मन्द तेज, टिमटिमाते दीपक की ज्वाला को बुझा देती है परन्तु वही हवा प्रचंड तेज वाली अग्नि को अधिक प्रदीप्त कर देती है। यही बात बादशाहों तथा शक्ति शाली व्यक्तियों के अस्तोदय में चरितार्थ होती है।

१७८८ ई० की २९ जुलाई को गुलामकादिर कुछेक बदमाशों के साथ मिलकर बादशाह के पास गया और उससे खर्च के लिए पैसा मांगा। बादशाह ने कहा कि मेरे पास रुपया नहीं है। बादशाह का यह उत्तर सुन कर, गुलामकादिर खिजे हुए कुत्ते की तरह बादशाह पर झपटा। अपनी जेब में से एक बनावटी चिट्ठी निकाली और बादशाह को कहा कि तुम ने यह चिट्ठी महादजी को लिखी है। यह कहकर एकदम बादशाह को सिंहासन से नीचे खींचकर उतार दिया। तीन दिन तक बिना अन्न जल के पदच्युत बादशाह को कैद में रखा। अन्तःपुर तथा अन्यस्थानों पर रखी हुई बहु मूल्य चीजें लूटली। शाहआलम को मोती महल में बंद कर दिया। बादशाह के सामने उसके पुत्रों को पिटवाया। दासियों की मानमर्यादा भ्रष्ट की। बादशाह को राजकोष का पता लगाने के लिए उसे दिवानेखास में ले जाकर चाबुकों से पिटवाया। इसी पर बस नहीं की। बादशाह की बेगमों का भी अपमान किया। छोटे २ बच्चों को कड़ी धूप में खड़ाकर प्यासा मरवाया। एक दिन राजकुमारों को अपने सामने बुलाकर नचाया। स्वयं थक जाने का बहाना करके राजकुमार अकबर के कंधे का सहारा लेकर, तलवार को नीचे धरकर सो गया। एकदम जागकर अकबर को धमकाया।

"तुम शासन कार्य का सचालन करने के योग्य नहीं हो। तुमने पास पडी तलवार से मेरा शिरच्छेद क्यों नहीं किया ? इसी अत्याचार की अंधेरी रात में बादशाह की आखें भी निकाल ली। उसके राक्षसी कार्य को देखकर दिवानखाने की स्त्रिया हाहाकार करने लगी। अंधे बादशाह को कैद में डाल दिया। जव इन अत्याचारों की खबर शहर में पहुंची, शहर के लोग कांप उठे। इस्माइयलखां को जव यह खबर मिली उसने गुलाम कादिर को दंड देने का निश्चय किया। इतने में गुलाम कादिर ने किले के बारूद खाने में आग लगा दी। इधर से मराठों की सेना राणाखान सरदार के साथ दिल्ली में आयी। गुलाम कादिर किले में आग लगाकर, गुप्त द्वार से यिकल गया। राणाखान ने आग बुझाकर, किले में सब व्यवस्था ठीक की। स्वयं मराठी सेना लेकर गुलाम कादिर का पीछा किया। मेरठ के किले में उसको जा घेरा। परन्तु वह वहां से भी निकल भागा। गुलाम कादिर मेरठ के किले से निकलकर भागा रहा था कि रास्ते में एक खेत में घोड़े से गिर गया। एक कायस्थ ब्राह्मण ने उसे पकड़वर राणाखान के पास पहुंचा दिया।

राणाखान ने उसे मथुरा में महाद जी सेंधिया के पास भेजा। महादजी ने उसे गधे पर उलटे मुंह चढा कर शहर में घुमाया। उसकी आंखे निकलवा दी। जव वह गालियां देने लगा तब उसके नाक, कान, हाथ, पैर तथा जीभ कटवा कर उसके शरीर का अवशिष्ट भाग बादशाह के पास दिल्ली भेज दिया। परन्तु दिल्ली पहुंचने से पूर्व रास्ते में ही १७८६ ई० में उसका देहान्त हो गया। महाद जी सेंधिया के इस कार्य से मुगल बादशाही के भक्तों तथा अंगरेजों पर उसकी शक्ति प्रकट करदी। जनता ने देख लिया कि दिल्ली दरवार के टिमटिमाते बादशाही दीपक के लिये संरक्षा लैम्प का कार्य यदि कोई कर सकता हैं तो वह मराठों के सेनापति ही कर सकते हैं दूसरा कोई नहीं। मराठों की शक्ति को देखकर बादशाह ने पेशवा को वकील-इ मुत्लक की उपाधि दी। महाद जी पेशवा का प्रतिनिधि बन कर सब काम भेखने लगा। दिल्ली में शान्ति स्थापित

कर, विरोधी राजपूत सरदारों का दमन किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस समय क्या उत्तर भारत में और क्या दक्षिण में मराठों की नयी राजशक्ति के सामने पुरानी राजशक्तियां कमजोर हो गयी।

भारत में चारों ओर उनकी विजय पताका फहराने लगी। १७९२ ई० तक महाद जी ने दिल्ली में किसी दूसरी शक्ति को आने नहीं दिया। दिल्ली दरबार में बादशाही तख्ते-ताउस पर जो बादशाह था वह नेत्रहीन तथा तेजहीन था। वह अशक्त और केवल मात्र सिंहासन की पुरानी शोभा को कायम रखने वाला था। इसके बाद वह बादशाही दीपक, जबतक मराठों की संरक्षा में रहा, इसकी रक्षा होती रही। परन्तु भारतीय राज-घरानो की रही सही शोभा तथा प्रतिष्ठा को मटियामेट करने पर तुली हुई ब्रिटिश जाति ने जब १८०३ ई० में मराठों को पराजित किया तब इस रही सही ज्योति को भी बुझा दिया। इतना ही नहीं इस जाति ने धीरे २ छलबल से बादशाह को अपना आश्रित बना कर, १८५७ ई० में मौका देख कर, मुगल बंश का सर्वनाश कर दिया। मुगल बादशाहों की कृपा से ही अंगरेज लोग बंगाल में प्रविष्ट हुए थे। उन्ही की कृपा से उन्हें वहां की दिवानी मिली थी। उन्ही के अनुग्रह से इन्हें यहां व्यापारी कोठियां खोलनी मिली थी। परन्तु किसी ने सच कहा है कि विजयी हो कर, कृतज्ञता प्रकट करने वाली जातियां बिरली ही होती है। स्वेच्छाचारी विजयी शक्तियां गुलाम कादिर की तरह अपनी पापमयी इच्छाओं को पूरा करने के लिये कृतघ्न राक्षस का रूप धर लेती हैं। अंगरेज जाति के प्रतिनिधियों ने भी यहां यही कार्य किया। १८५७ ई० के गदर में बादशाह को वर्मा कालेपानी की सजा देकर भेजा, और उसके पुत्रों को दुनिया से मिटा दिया।

मुगल बादशाह के टिमटिमाते दीपक को बुझाने वाली यदि कोई जाति है तो वह अंगरेज जाति है। अशक्त बेबस शत्रु को कुचल कर शक्ति प्राप्त करने के लिये सब कुछ करने वाली अंगरेज जाति को आने वाले निष्पक्ष ऐतिहासिक माफ नहीं कर सकते। मराठों ने यथाशक्ति

धर्मभेद होने पर भी भारतीय मुगल बादशाही की रक्षा की, उसकी टिमटिमाती ज्वाला को प्रदीप्त रखने की कोशिश की। इतना ही नहीं इस कार्य के लिये शक्तिशाली जातियों से दुश्मनी भी ठानी। यह घटना स्पष्ट कह रही है कि विदेशी विदेशी ही है और स्वदेशी स्वदेशी ही है। आज उसी लालकिले में जहां गुलाम कादिर ने भयंकर अत्याचार किए थे, बिदेशी शासक किले पर तैनात हुए अपना रूप दिखा रहे हैं। उस दिन वहां बादशाह तो था, आज उसका नामोनिसान भी नहीं है। उस दिन टिमटिमाते बादशाही दीपक को देख कर भारतीयों के दिल में उच्च भावनाएं जागृत होती थीं परन्तु आज वह भावनाएं भी शान्त हैं। उस समय गुलाम कादिर के अत्याचारों की अंधेरी रात में, महाद जी सेंधिया की मराठी सेना, किले पर तैनात की गई तोपों की गोलाबारी से शहर वालों को बचा रही थी, पर आज बचाने वाला भी नहीं है। उस दिन अत्याचारों की घनी मयावस थी परन्तु फिर भी टिमटिमाता दीपक लोगों को राह दिखा रहा था, आज वह दीपक भी बुझ गया है।

चारो तरफ अंधेरा हैं। भाई २ को नहीं पहचानता। आपस में लडाई हो रही है। इस लडाई को रोकने का एक मात्र उपाय यही है कि हम भारतीय स्वाधीनता की ज्योति को देखें और उसके प्रकाश में चलते हुए स्वाधीनता के कठिम पथ से बिचलित न हों।

—:•:—

(८)

❀ मराठों पर कुटिल ग्रह ❀

आशा लग रही थी कि फिर से मराठे भारत में अपना झंडा फहराएंगे। महादजी सेंधिया ने १७६२ में इस काम को चरमसीमा तक पहुंचा दिया अभी आवश्यकता थी कि इस विजय को स्थिर रूप दिया जाता। परन्तु काल को यह अभीष्ट नहीं था। १७६३ में महादजी

सेंधिया का देहान्त हो गया। जब आपत्तियां आती हैं तब इकट्ठी ही आती हैं। नानाफड़नवीस नारायणराव पेशवा के पुत्र सवाईमाधवराव को राज कार्य संचालन करने के लिए तय्यार कर रहा था। नाना ने इस पेशवा को अपने निरीक्षण में शिक्षित किया था। उसे आशा थी कि यह पेशवा नष्ट हुई विजय श्री को फिर से चमका देगा। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर नाना ने टीपू जैसी विरोधनी शक्तियों को अपनी राजनीति कुशलता से बेकार कर दिया था।

सब देशभक्त आशा पूर्वक फिर से मराठा जाति के तेजस्वी रूप के आलोक की प्रतीक्षा में थे। परन्तु इतने में एक भयंकर घटना होगई। सवाई माधवराव नाना के निरीक्षण में शिक्षा प्राप्त कर रहा था। रावो वा दादा के पुत्र बाजीराव ने पिता का बदला लेने के लिए सवाई माधवराव के हृदय को विषमय विचारों से कलुषित करना शुरू कर दिया। उसने पेशवा के दिल में यह भाव अंकित किया कि जिस प्रकार हम नाना की कैद में हैं उसी प्रकार तुम भी उसकी कैद में हो। इस विवशता तथा परवशता के दुःख में सवाई माधवराव १७९५ ई० में आत्मघात करने के लिए पेशवायों के महलों की ऊपर की मंजिल से नीचे कूद पड़ा। भयंकर चोट के कारण कुछ दिनों तक जीवित रहकर मर गया। अब नानाफड़नवीस के सामने फिर यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि किसे पेशवा बनाया जाय। इस आपत्ति ने किये कराए पर पानी फेर दिया।

इसी समय सन १७९५ ई० में होलकर घराने की राणी अहिल्याबाई की मृत्यु होगई। दो साल बाद तुकोजी होलकर का भी इस लोक से पयान होगया। हम पहले लिख चुके हैं कि अंगरेज लोग अहिल्याबाई के रहते उसके राज्य में फूटनीति को फैलाने में सफल नहीं हो सके। क्योंकि अहिल्याबाई दूर दर्शिनी धर्म परायणा राज्ञी थीं। उसने देशद्रोही राघोबा को अपने राज्य में प्रवेश नहीं करने दिया। परन्तु इस अकालिक मृत्यु के कारण होलकर राज्य भी अंगरेजों की भेदनीति का उपजाऊ

स्थान बन गया। गायकवाड़ में गृह द्रोह फैल रहा था। महादजी सेंधिया की मृत्यु के बाद वहाँ भी पुराने मराठा साम्राज्य की शान की सराहना करने वाला कोई नहीं रहा। प्रभाव शाली व्यक्तियों के कार्यक्षेत्र से हटते ही संगठित मराठा मण्डल छिन्न भिन्न होने लगा। महाराष्ट्र पर छाए हुए इस कुटिल ग्रहने यहीं तक बस नहीं की। रामशास्त्री प्रमुखो जिसकी निष्काम सदिच्छायों तथा परामर्शों का मराठा जाति पर प्रभाव था वह भी परलोक सिधारा। इस प्रकार योग्य व्यक्तियों के उठ जाने से पूना दरवार में अकेला नानाफड़नबीस ही रहगया। अन्य स्वार्थी महत्वाकांक्षी उससे इर्ष्या करने लगे। उसकी उन्नति को न देख सके। योग्य आदमी को योग्य आदमी ही पहचान सकते हैं। मराठा मंडल इन वीरों के उठ जाने से अनाथ होगया। इस प्रकरण को समाप्त करने से पूर्व हम माता अहिल्याबाई के सम्बन्ध में अंगरेज ऐतिहासिक की सम्मति देते हैं। इससे पता लगेगा कि भारतीय महिलायों ने राजनैतिक क्षेत्र में भी किस सफलता के साथ काम किया। मि० टॉरेन्स एम्पायर इन एशिया नाम की पुस्तक १०१ पृष्ट पर स्वेच्छाचारी तथा पंचायती राज्यकी बुराइयों तथा लाभों पर विचार करते हुए लिखते हैं:—

"अहिल्याबाई का ३० साल का शासन काल इस बात का उदाहरण है कि शुद्ध और सम्माननीय आदर्शों से प्रेरित हुआ कोई व्यक्ति एकतन्त्र राज्य की बुराइयों को भी दूर कर सकता है।

१७६५ ई० में होलकर वंश का कोई पुरुष उत्तराधिकारी नहीं बचा था। इस दशा में मृतराजा की माता अहिल्याबाई ने राज्य का कार्य संभाला उसने अश्चर्यमयी योग्यता से राज्य कार्य को निभाया। रूस की प्रसिद्ध कैथराइन की तरह वह विदेशी नीति में सफल रही; परन्तु इस सफलता को प्राप्त करने के लिए उसने कैथराइन की तरह अपने पति का खून नहीं किया। साहस में वह इंग्लैंड की प्रसिद्ध राणी एलिजबेथ से किसी अंश में कम नहीं थे। परन्तु उसने एलिजवेथ की तरह अपनी प्रति द्वन्दिनी मेरी को जेल में कैदकर मरवाया नहीं।

अहिल्याबाई का उद्देश्य धर्मपूर्वक न्याय के अनुसार देश तथा प्रजा की स्थिति को उन्नत करना था। उसकी सेनाशक्ति थोड़ी थी । सुप्रबन्ध के कारण उसे अन्तरीय शासन करने में कभी दिक्कत नहीं हुई । सारी प्रजाएं उसके लिए सब कुछ न्यौछावर करने को तय्यार रहती थी । वह अपने आपको परमात्मा के प्रति उत्तरदाता समझती थी । अहिल्याबाई अपने धर्म में दृढ़ निश्चय वाली थी और साथ ही भिन्न २ धर्म वाली अपनी प्रजाओं के प्रति सहिष्णुता पूर्वक व्यवहार करती थी । इसका जीवन पवित्र और धर्ममय था । अपने प्रिय सम्बन्धियों की मृत्यु होने पर भी साहस के साथ अपने कर्तव्य का पालन किया । वह विधवा और पुत्रहीन होकर ही परलोक सिधारी" ।

मराठा शासन काल के उत्तरार्ध में राणी अहिल्याबाई ने भारतीय महिलाओं के यश को उज्ज्वल किया । यह जगमगाता महिला रत्न भी इस कुटिल ग्रह की छाया से न बच सका । इन योग्य व्यक्तियों के उठ जाने पर फिर से अंधेरा छागया और मराठा साम्राज्य का उज्ज्वल भविष्य फिर से धुंधला होगया । राष्ट्र भक्तों की आशाओं पर फिर से निराशा का तुषार छागया—

(६)

कृतघ्नता की पराकाष्ठा

सवाई माधवराव पेशवा की मृत्यु का वर्णन होचुका है । अंगरेज ऐतिहासिकों ने उस समय के अंगरेज अफसरों के बयानों के आधार पर यही परिणाम निकाला है कि सवाई माधवराव नाना फड़नवीस के कड़े निरीक्षण के कारण विवश होगया था । परन्तु मेजरबसु आदि भारतीय ऐतिहासिकों का कहना है कि यह बात ठीक नहीं है । नानाफड़नवीस को बदनाम करने के लिए ही यह भ्रम फैलाया गया था । खैर यह निर्विवाद

बति है कि सवाई माधवराव निःसन्तान होकर परलोक सिधारा। अब नाना के सामने फिर यही प्रश्न उपस्थित हुआ कि पेशवा कौन बने? जानता था राघोबा का पुत्र बाजीराव द्वितीय अदूरदर्शी है। पिता की तरह स्वार्थ सिद्धि के लिये राष्ट्र हित की परवाह नहीं करेगा। वह यह भी समझता था कि अंगरेज लोग इसे अपना (कठपुतली) बनाएगे।

इन बातों को विचार कर नाना ने यह निश्चय किया कि सवाई माधवराव पेशवा की विधवा यशोदाबाई राज्य की मालकिन हो और वह किसी लड़के को गोदी ले। इस विषय में नाना ने तुकोजी होलकर से भी सलाह ली, और पूना स्थित अंगरेज रेजिडेन्ट मेलूट को भी इसकी सूचना दी। अंगरेज लोग समझते थे कि बाजीराव को तो वह अपने जाल में फंसा सकते हैं परन्तु नानाफडनवीस द्वारा शिक्षित किया हुआ नवयुवक उनके दांव पर नहीं चढ़ेगा।

बाजीराव ने पेशवाई की गद्दी को खाली देखकर उसके लिए कोशिश करनी शुरू की। नाना को बाजीराव का यह विचार ज्ञात हुआ उसने घर की लड़ाई को बन्द करने के लिए बाजीराव द्वितीय को ही पेशवा बनाया। बाजीराव और दौलतराव सेंधिया मिल गए। बाजीराव के दिल में यह बात घर कर गई कि जब तक नानाफडनवीस की चलेगी तब तक हम स्वतन्त्र नहीं हैं। अतः उसने दौलतराव सेंधिया को दो करोड़ रुपए का प्रलोभन देकर इस बात के लिए तैयार किया कि वह नाना को गिरफ्तार करे। नाना गिरफ्तार किया गया।

परन्तु बाजीराव शर्तें के अनुसार सेंधिया को रुपया न दे सका। बाजीराव ने उसको पूना शहर लूटकर रुपया वसूल करने की अनुमति दी। उसने यथेच्छ लूट मचाई। बाहर लूट मचाने वाले के घर में शान्ति नहीं रह सकती। इसी समय सेंधिया के राज्य में कई झगड़े खड़े होगए। उन झगडों को निपटाने के लिए सेंधिया को लाचार होकर नाना को कैद से मुक्त करना पड़ा। सन् १८०० ई० मार्च के महीने में नाना कैद से छूट कर

बारे आया कुछ दिन बाद उसका देहान्त होगया। नाना फडनवीस ने मराठा साम्राज्य की निष्काम सेवा की। मराठा राज्य को बचाने के लिये उससे जो कुछ बन पड़ा, उसने वह सब कुछ किया। दिन रात सतर्क रहा अन्तिम दम तक मराठा मंडल में से फूट की बुराई को दूर करने की कोशिश की। इसी कोशिश में अपने प्राणों के शत्रु बाजीराव को पेशवा भी बनाया। सिन्धिया तथा होलकर की रियासतों की प्रतिष्ठा को कायम रखने में तन मन वार दिया। परन्तु हम देखते हैं कि ऐसे निष्काम ब्राह्मण के साथ मराठा जाति ने कृतघ्नता की। जो जातियां अपने वीरों का सन्मान करना नहीं जानती वह कभी शक्ति शाली नहीं बन सकती। मराठा जाति ने मराठा सरदारों ने नाना के साथ जो कृतघ्नता का व्यवहार किया है उसी का परिणाम है कि आज उनके वंशज पराधीनता की बेडियों में जकडे हुये है। यदि बाजीराव द्वितीय नाना फडनवीस की सलाह से कार्य करता तो क्या मजाल थी कि अंगरेज मराठा शाही का अन्त कर पाते। नाना फडनवीस उनकी चालों को समझता था। नाना फडनवीस ने अन्तिम समय तक दत साधकर, आपत्तियां झेलकर, पूर्व पुरुषों द्वारा स्थापित राष्ट्र की रक्षा की। उसके इस कार्य के कारण उसका नाम भारत के इतिहास में सदा मान तथा प्रतिष्ठा के साथ याद किया जायगा। मराठों पर कुटिल ग्रह का प्रकोप आ चुका था, नाना फडनवीस की मृत्यु के कारण वह कोप प्रलय के रूप में बदल गया। नाना के मरते ही दुश्मन प्रबल हो गये। एक ओर से निजाम अपना खोया हुआ राज्य संभालने की कोशिश करने लगा दूसरी ओर अंगरेजों ने फिर से रैजिडेन्टों का जाल फैला कर पूना इन्दौर तथा मालवा में अपनी भेदनीति का प्रचार किया इस भेजनीति के कारण ही मराठों की रही सही शक्ति नष्ट हो गयी और अंगरेजों के रैजिडेन्ट सब रियासतों के मालिक बन गए। वीरों के प्रति कृतघ्नता करने वाली जातियों को यही फल मिलता है। भारत भी आज उसीका फल भोग रहा है।

(१०)

दूसरा बाजीराव

नाना फडनवीस ने लाचार होकर बाजीराव को पेशवा बनाया था। जिस समय इसने सेंधिया से मिल कर नाना के विरुद्ध षड्यन्त्र करने शुरू किए उस समय मराठा मंडल की अन्तःकलह को देख कर निजाम तथा अंगरेज मिल कर, मुकाबला करने के लिए खड़े हुए। टीपू सुलतान की शक्ति नष्ट हो गई थी। मैसूर की राजधानी श्री रंगपट्टम में अंगरेजों का झंडा पहरा रहा था। अंगरेजो को भय था कि कहीं दक्षिण के मराठे जागीरदार, पूना के मराठा सरदारों के साथ न मिल जाय। इस लिये उन्होंने दक्षिण के जागीरदारों में पूना दरबार के विरुद्ध भाव फैलाने शुरू किए। बाजीराव द्वितीय ने जब देखा कि अब कुछ नहीं हो सकता तब उसने नाना फडनवीस को फिर कार्य सौंपा। नाना ने मराठा सरदारों को निजाम और युरोपियनो के विरुद्ध संगठित करना शुरू किया। अभी यह कार्य शुरू किया ही था कि १६ फरबरी सन् १८०० ई० को नाना फडनवीस का देहान्त हो गया। अब कोई दूरदर्शी व्यक्ति न रहा। बाजीराव असहाय था। उसने दौलत राव सेंधिया का सहारा लेकर, शासन कार्य शुरू किया किया। वह बुद्धिमान् न था; यह लड़ाका और साहसी था। इसी समय होलकर घराने में तुकोजी होलकर, के मरने के बाद उसके उत्तराधिकारियों में झगड़े होने लगे। यह चार भाई थे। काशीराव मल्हार राव यशवन्तराव और विठोजी। सिंधियों ने काशीराव और मल्हार-राव का दमन दिया, मल्हारराव मारा गया। यशन्तराव और विठोजी भाग गए। इस भाग दौड़ में विठोजी को बाजीराव पेशवा ने हाथी के पैरों में रुंदवा दिया।

यशवंतराव को जब यह समाचार मिला उसने एकदम पूना पर आक्रमण कर लूट मचादी और सेंधिया तथा बाजीराव की सेनाओं को पराजित कर किया। बाजीराव की जगह उसके भाई अमृतराव को पेशवा बनाने की घोषणा करदी। सेंधिया पूना में था इस लिए यशवन्तराव ने

मालवा पर आक्रमण किया। माधोजी सिंधिया की विधवा रानियां भी दौलतराव सिंधिया के विरुद्ध हो गई थी। नागपुर के रैजिडैन्ट मि० कौलब्रुक ने बरार के राजा तथा उसके पास आए हुए यशन्तराव होलकर को सिंधिया के विरोध में विद्रोह करने के लिए प्रेरित किया। इस समय अंगरेज समझते थे कि नाना फडनवीस के पीछे सिन्धिया ही एक ऐसा व्यक्ति है जो उनकी चालों को समझता है। सिंधिया ने बाजीराव को हर समय सचेत रखा कि वह अंगरेजों को अपने देश में न आने दे। बाजीराव ने सर आर्थर वेल्सली को धुधुया नाम के व्यक्ति का पीछा करने के लिए महाराष्ट्र प्रदेशों में घूमने की आज्ञा दी, तब सिंधिया ने उसका विरोध किया। सर आर्थर वेल्सली की चिट्ठियां बतलाती हैं कि उसने इस मौके से पूरा लाभ उठा कर महाराष्ट्र की भौगोलिक तथा सेना संचालन सम्बन्धी स्थिति को देख लिया था। इसके बाद भी सिन्धिया ने अपनी शिक्षित सेना द्वारा अंगरेजों तथा अंगरेज रैजिडैन्टों की कुछ नहीं चलने दी। गवर्नर जनरल ने लाचार होकर पूना के असफल रैजिडैन्ट पामर को हटाकर उसकी जगह कर्नल पैट्रिक को नियुक्त किया। परन्तु वह बीमार होकर विलायत चला गया उसकी जगह कर्नल क्लोज पूना का रैजिडैन्ट बना इसी ने श्रीरंग पट्टम में टीपु सुल्तान के घर में फूट के बीज बखेरे थे।

बाजीराव पेशवा की बातों से हैरान होकर, सैंधियाने यही उचित समझा कि बाजीराव पर हर समय पहरा रहे; जिससे विदेशी लोग उसपर नीति चक्र का पासा न फेंक सकें। मूर्ख बाजीराव ने इस पहरे को बुरा मनाया और यशवन्त राव आदि से मिलकर सिंधिया के निरीक्षण से मुक्ति पाने की चेष्टा की। अंग्रेजों ने यशवन्तराव होलकर को सिंधिया के विरुद्ध सहायता देने से कोई कमी नहीं की। गवर्नर जनरल वेल्सली ने इस समय अपने सेनापति को लिखा कि:—

"वह सिंधिया के विरोध में राजपूत राजाओं को खड़ा करने की कोशिश करे; साथ ही राज दरबार की विधवा रानियों के द्वारा सिंधिया

की प्रजाओं में दौलत राव के प्रति विद्वेष का भाव पैदा करें। यशवन्तराव होल्कर और पिंडारी गारियों ने परस्पर, दिखावे की लड़ाई लड़कर, युरोपियनों के बहकावे में आकर मारवाड की ओर प्रस्थान किया। इधर सिंधिया की अनुपस्थिति में पूना में गड़बड़ हो गई। यशवन्तराव होलकर ने मौका देखकर पूना पर आक्रमण किया। इसी समय वैल्सली ने पूना के रेजिडेण्ट को आज्ञा दी कि वह यशवन्तराव होलकर की सेनाओं से किसी प्रकार का लड़ाई झगडा न करे, क्योंकि होलकर और सिंधिया की पारस्परिक लड़ाई से हमें फायदा है। हम इस लड़ाई से फायदा उठाकर पूना के राजदरबार को बाधितकर, अनुकूल यथेष्ट शर्तों के अनुसार संधि कर सकेंगे। मराठों के साथ अंगरेजों ने जो संधि की उसके अनुसार उनका कर्तव्य था कि वह पेशवा तथा सिंधिया को होलकर के विरुद्ध सहायता देवे। परन्तु इसमें अंग्रेजों का स्वार्थ बिगड़ता था अतः उन्होंने यह नहीं किया; अपितु होलकर को सिंधिया के विरुद्ध उकसाकर बाजीराव को असहाय बना दिया। होलकर ने अपनी अधेड़ अशिक्षित सेना की सहायता से पेशवा और सिंधिया की शिक्षित सेनाओं को हरा दिया।

जिस समय पूना में यशवन्त राव होलकर विजयी होता है और पेशवा पराजित होता है उस समय पूना का रेजिडेंट कर्नल क्लोज वहीं था। होलकर ने कर्नल क्लोज को निमन्त्रण देकर सिंधिया और अपने के झगड़े को निपटाने के लिए कहा। दोनों को लड़ाकर अंग्रेजों ने बाजीराव को असहाय बना दिया। बाजीराव पूना से सिंहगढ़ गया और सिंहगढ से रायगढ़ होता हुआ फिर महाड़ को लौटा। यहां से उसने बम्बई सरकार को रक्षा के लिये जहाज भेजने को लिखा। अंग्रेजी सरकार द्वारा भेजे गये जहाजों पर चढ़कर अपने साथियों के साथ बाजीराव द्वितीय ६ दिसम्बर १८०२ को बसई में पहुंचा। अंगरेजों की चिरकाल की इच्छा पूरी हुई। अंगरेज पेशवा को अपने जाल में फसाकर अपने अनुकूल सहायक सेना की शर्तें स्वीकार कराना चाहते थे। बाजीराव ने कई सालों तक इन्हें स्वीकार करने से इन्कार किया। परन्तु अब वह लाचार था।

असहाय था। उसका सबकुछ अंगरेजों के हाथ में था। उसकी पेशवाई उसका जीवन विदेशियों के हाथ में आ गया। इस हालत में मराठे सरदारों तथा पूना दरबार की सलाह लिये विना उसने ३१ दिसम्बर १८०२ को वसई की सधि पर हस्ताक्षर कर दिये। संधि की शर्तें यह हैं:—

१. बाजीराव आत्म रक्षा के लिए अंगरेजों की सहायक सेना को रखे और उसके खर्च के लिये २६ लाख का मुल्क अलग कर दे।

अंगरेजों के अन्य युरोपियन शत्रुओं (फ्रांसीसियों) को वाजीराव अपने राज्य में स्थान न दे।

३. अन्य देशी रजवड़ों से अंगरेजों की मध्यस्थी से ही सुलह या लड़ाई करे, स्वतन्त्र रूप से नहीं। वाजीराव ने इन पर हस्ताक्षर कर दिए हस्ताक्षर क्या किए मराठा साम्राज्या को अंगरेजों के हाथ में कर दिया। मराठे की स्वाधीनता का सूर्य अस्त होगया। कमज़ोर वाजीराव ने अपनी कमजोरी के कारण शक्तिशाली मराठा साम्राज्य को नष्ट भ्रष्ट कर दिया। अंगरेज लोग समझते थे कि अन्य मराठे सरदार इस संधि को स्वीकार नहीं करेंगे और इसका विरोध करेंगे। इस विरोध की उमड़ती हुई आंधी का मुकावला करने के लिए अंगरेजों ने विशेष तय्यारी करनी शुरू की। इस युद्ध में मराठे सरदारों ने अपनी शक्तिको स्थागित करने की कोशिश की, परन्तु अंगरेजों की भेदनीति के कारण मराठे अपने इस उद्योग में सफल न हो सके। इस युद्ध का किस्सा इस तरह है।

—:०:—

(७)

❀ सिंधिया और होलकर ❀

इस द्वितीय मराठा युद्ध का एक मुख्य कारण वसई की सुलह थी। लार्ड वेल्सली चाहता था कि होलकर सिंधिया, बरार के भोसले इस संधि को स्वीकार करें। वेल्सली का एक मात्र उद्देश्य सिंधिया की शक्ति को कम करना था। १८०३ ई० में सिंधिया ने यह घोषणा की कि हम

पेशवा वाजीराव को फिर से पूना की गद्दी पर बैठाना चाहते हैं। इस उद्देश्य से तीनों पार्टियां मिलने को तय्यार हो गई। उन्होंने कम्पनी की सीमा स्थित सेना के प्रति किसी प्रकारका बिरोध भाव नहीं दिखाया। वाजीराव पेशवा कम्पनी की छोटी सेना की दशा में था। इस सेना के पूना दरवार में शान्ति स्थापित करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली। अंग्रेजों की सेनाएं सिंधिया होलकर तथा वरार के सीमाप्रान्तों पर तैनात थी। इस प्रकार शत्रुओं से आवृत होने परे एक दम युद्ध के लिए तय्यार होना कठिन था। परन्तु तीनों ने इस बात पर एका कर लिया कि वह बसई की संधि पर हस्ताक्षर नहीं करेंगे। इस पर लार्ड वेल्सली ने सिंधिया को लिखा कि वह अपनी सेना को नर्वदा के पार लेजाय। इधर आर्थर वेल्सली मेसूर से वड़ी भारी फौज लेकर, वाजीराव के शत्रुओं का दमन करने के लिए आया हुआ था। कर्नल मालकम नर्मदा के किनारे पर था। तीनों मराठे सरदारों ने कहला भेजा कि हम अपनी सीमा में ही हैं। हां यदि अंगरेज सेनापति कोई खास तिथि निश्चित करेंगे तो हम उनके साथ अपनी सेनाएं पीछे हटालेंगे। लार्ड वेल्सली ने इसे भी स्वीकार नहीं किया। उसने इसी बात पर जोर दिया कि वह अंगरेजों की सहायक सेना को अपने यहां रखें।

युक्ति यह दी कि यदि अन्य मराठा सरदार हमारी सहायक सेना को नहीं रखेंगे तो हम वसई की संधि के अनुसार मराठा मंडल पर पूरा नियन्त्रण नहीं कर सकेंगे। जवाब में, सिंधिया और बरार के भोसलों ने कहा कि हम वसई की सुलह पर हस्ताक्षर कर अपनी स्वतन्त्रता को नही खोएंगे। पेशवा ने खुशी से वसई की संधि पर हस्ताक्षर नहीं किए; वाधित होकर ही किए हैं। हमारा फर्ज है कि हम पेशवा को मुक्तबन्धन करें। इस भाव से प्रेरित होकर बरार और सेंधिया ने युद्ध की तय्यारियां शुरू करदी। अंगरेज इसकी प्रतीक्षा में ही थे। सेंधिया की सेना में कई युरोपियन अफसर नौकरी करते थे। अंगरेजों ने उनको ईसाइयत के नाम पर अपने साथ मिलाने में सकोच नहीं किया। सेंधिया का फ्रांसी-

सियों के साथ मेल है। इस बहाने की आड में लार्ड वेल्सली ने निम्नलिखित उद्देश्यों को पूरा करने के लिये सिंधिया तथा बरार के विरुद्ध युद्धघोषित किया। यशवन्तराव होलकर की सिंधिया से नहीं बनती थी। अतः उसने इस समय उदासीन रहना ही उचित समझा और युद्ध के मैदानों से अलग होकर स्वतन्त्र रूप से लूट मचाने के लिए राजपूताना के मैदानों में चला गया। जिन उद्देश्यों को पूरा करने को घोषणा करके यह युद्ध जारी किया गया था वह यह है:—

१. यमुना के किनारे, फ्रांसीसियों का जो राज्य स्थापित होरहा था उसका नाश करना।

२. कम्पनी की राज्य सीमा को यमुना तक बढ़ा कर दिल्ली, आगरा तथा यमुना तटवर्ती किलों को अपने आधीन करना।

३. मुगल सम्राटों से राज्यशक्ति प्राप्त करना।

४. यमुना के दक्षिण तथा पश्चिम के छोटे २ राज्यों के साथ सन्धि कर बुन्देलखंड को अपने अधिकार में करना।

इन उद्देश्योंमें से प्रथम उद्देश्य काल्पनिक था। सिंधिया की सेना में मि० पैरन आदि फ्रांसीसी अफसर नौकर थे। अंगरेज लोग फ्रेञ्च रियासत सत्ता का वहाना कर सिन्धिया के प्रादेश में आक्रमण करना चाहते थे और चाहते थे कि सिंधिया की सेना के युरोपियन अफसरों को विद्रोही बनाया जाय। युरोपियन अफसरों के रहते अगरेजी सेनायों का विजयी होना मुश्किल था। आर्थर वेलसली मैसूर रियासत के सीमा प्रांत से ८००० सिपाहियों के साथ अहमदनगर के किले को घेरने के लिए आगे बढ़ा। महा सेनापति लार्ड लेक के नेतृत्व में १० हजार सेना कानपुर की ओर से महाराष्ट्र में प्रविष्ट हुई। जनरल स्टविन्सन गोदावरी के किनारे, जनरल स्टुअर्ट, कृष्णानदी के तट पर, रिजर्व सेनाओं के साथ तैयार थे। गुजरात में जनरल मरे ७३०० सिपाहियों के साथ सुरक्षित स्थानों पर नियुक्त

हुआ। कर्नल पावेल ३५०० के साथ बुन्देलखंड में तथा ५०० सिपाहियों की टुकड़ी के साथ बरार के रघु जी भोसले को नियन्त्रण में रखने के लिए नियत किया गया। इस प्रकार चारों ओर से घेरा डाला गया। लार्ड वेल्सली स्वयं मुख्य युद्ध सचिव बना। घमसान युद्ध हुआ। सिंधिया की सेनाएं पराजित हुईं। असई के मैदान में अन्तिम फैसला होगया। मराठे हार गए। लासवाडी में भी यही हालत हुई। अंगरेजी सेनाओं ने यथेच्छ लूट मचाई। आगरा तथा दिल्ली के किलों पर अंगरेजी झण्डे फहराने लगे। अंगरेज दिल्ली के असली बादशाह बने। राजपूताना के अनेक राजाओं को मराठों के शासन से मुक्तकर स्वतन्त्र किया। सिंधिया और भोंसले----दोनों ने पराजित होकर, अंगरेजों से सन्धि की। इस संधि की शर्तों पर विशेष विचार करने से पूर्व दो एक शब्द इस सम्बन्धमें भी लिखने असंगत नहीं कि सिंधिया की सेना ढंग पर शिक्षित युरोपियन होने पर भी पराजित क्यों हुई ? हमारी राय में इसका एक मात्र कारण यह था कि अंगरेजों ने सिंधिया की सेना के युरोपियन अफसरों को सिंधियां के विरुद्ध कर (रिश्वत देकर) अपने साथ मिला लिया था। इस स्थापना को पुष्ट करने के लिए, हम दो तीन उद्धरण पेश करना आवश्यक समझते हैं:—

जनरल वेल्सली ने सिंधिया की पराजित सेनाओं की दयनीय दशा को देखकर इस प्रकार सन्तोष प्रकट किया था---

At all events the European officers have left them.

सब मौकों पर देशी राजाओं के युरोपियन अफसरों ने उनका साथ छोड़ दिया है।

कैप्टिन ग्रान्टडफ ने भी हिस्टरी ऑफ मराठा के पृष्ट ५७४ पर लिखा है कि असई की लड़ाई में सिंधिया के पराजित होने का मुख्य कारण यह था कि उसकी सेना के युरोपियन अफसर ब्रिटिश सरकार के घोषणा पत्र द्वारा (जिसमें उन्हें अच्छी तनख्वाहें देने का वचन दिया गया था)। सिंधिया का पक्ष छोडकर शत्रु पक्ष में चले गये थे। इसी प्रकार जनरल

वेल्सली ने १८०३ में २३ अक्तूबर के दिन फिर्द पुर से जो चिट्ठी कर्नल पर को लिखी है उसमें वह लिखता है कि कर्नल स्टीवन सन का कथन है कि असीरगढ़ में पराजित शत्रु की पदाति सेना के १६ युरोपिअन अफसर हमारे साथ मिल गए हैं । अब शत्रु सेना फिर से संगठित नहीं हो सकती ।

यदि सधिया नाना फड़नवीस की सलाह मानकर युरोपियनों को अपने यहा नौकरी में न रखता तो उसे यह बुरे दिन न देखने पड़ते और यह अपमान जनक शर्तें स्वीकार न करनी पड़ती ।

१८०३ दिसम्बर में बरार के राजा के साथ अंगरेजो की जो संधि हुई उस के अनुसार भौंसले ने बरार प्रांत तथा कटक प्रांत अंगरेजों को दे दिए । अंगरेजों का रैजिडेंट नागपुर में रहने लगा । अन्य देशी रियासतों के साथ यदि कोई झगड़ा हो तो अगरेज ही उसका फैसला करें ।

इसी समय अंजुन गांव में सिंधिया और अंगरेजों में संधि हुई । उस से भी गंगा यमुना के बीच का मुल्क और कुछ हिस्सा सेंधिया ने अंगरेजों को दिया । यह भी तय हुआ कि वह सहायक सेना रखे और उसका खर्चा भी दे । अगरेजों की सम्मति के बिना किसी युरोपियन को नौकरी में न रखे । दिल्ली निजाम तथा पूना के बादशाह और पेशवा पर सिंधिया का कोई हक नहीं रहेगा ।

सिंधिया तथा बरार के इन शर्तों को स्वीकृत करने के बाद अंगरेजों के मुकाबले में यशवन्तराव होलकर को छोड़कर कोई प्रवल दुश्मन न था । अंग्रेजों ने अपनी सारी शक्ति होलकर को पराजित करने में लगाने का संकल्प किया । यही एकमात्र शक्तिशाली मराठा सरदार था जिसके रहते अंग्रेज स्वतन्त्रता पूर्वक बे फिकर होकर नहीं विचर सकते थे ।

—:०:-

(१२)

❀ होलकर और लार्ड लेक ❀

सिंधिया पराजित होकर चुप हो गया। राजपूत राजा भी अंगरेजों के सामने शस्त्र रख चुके थे। केवलमात्र यशवन्तराव होल्कर ही बचा था जिसने अंगरेजों की परवाह नहीं की और स्वतन्त्र रूप से जहां चाहा अपनी सेना को भेजा। यशवन्तराव साहसी और पराक्रमी था। उसने देख लिया था कि सिंधिया अंग्रेजो से क्यों हारे ? उसे अपनी सेना के युरोपियन अफसरों पर विश्वास नहीं किया। लार्ड वेल्सली ने लार्ड लेक को यह आज्ञा दी कि वह जैसे तैसे बने होल्कर से लडाई ठानकर, अवशिष्ट मराठा शक्ति का भी अन्त करे। बाजीराव पेशवा के नामपर यथेष्ट अत्याचार तथा स्वेच्छाचार करने में यदि कोई बाधक हो सकता था तो वह यशवन्तराव होल्कर ही था। लार्ड लेक ने होल्कर के सन्तोषजनक पत्रों की परवाह न कर लडाई की घोषणा कर दी। होल्कर ने दूरदर्शिता की दृष्टि से यह उचित समझा कि अपनी सेना के जितने भी ऐसे व्यक्ति है जो शत्रु के हाथ बिकने को तैयार हैं उश सब को कतल कर दिया। होलकर की सेना में कैपटन बिकार, टाड और रापन नाम के अंगेरज नौकर थे। लेक की गुप्त चिट्ठियों से होलकर को पता लग गया था कि वह अंगरेज विश्वासघात करेंगे। उसने एक दम इनको कडा दण्ड देकर बता दिया कि यहां सिंधिया की तरह आंख मूदे काम नही होना। होलकर ने अपने शत्रु को अच्छी तरह पहचान लिया था। यदि होलकर सिंधिया के साथ मिलकर अंग्रेजों का मुकाबला करता तो असम्भव नहीं था कि अंग्रेजो को मैदान छोड़कर भागना पड़ता।

लार्डलेक ने होलकर को भयभीत करने के लिये अपनी सेना की टुकड़ी दिल्ली से दक्षिण पश्चिम की ओर ६० मील की दूरी पर कनौर में भेजी। दूसरी टुकड़ी कर्नल मान्सन के साथ जयपुर की ओर भेजी। होलकर शत्रु की इन गतियों को देखकर समझ गया कि अब लड़ाई होकर ही

रहेगी। लार्ड लेक ने जनरल वेल्सली को लिखा कि वह होलकर के विरुद्ध लड़ाई के लिये दक्षिण से सेना लेकर आगे बढ़े। परन्तु जनरल वेल्सली की गवर्नर जनरल से नहीं बनी। जनरल वेल्सली अपना काम वालेस को सौंपकर बिलायत चला गया। गवर्नर जनरलने सिंधिया को प्रलोभन देकर अपने जाल में फंसाना शुरू किया। लार्ड लेक ने देखा कि होलकर पर विजय पानी मुश्किल है। क्यों कि उसने स्वामिद्रोही युरोपियनों को अपनी सेना से निकाल दिया था। ऐसी दशा में एक दो वार लार्ड लेक का दिल युद्ध करने से डांवाडोल हुआ। परन्तु जब उसे अमीर खान नाम का, होलकर का विद्रोही सेनापति मिला तब उसने युद्ध के इरादे को पुनः पक्का किया इस अमीरखान ने गुप्त रूप से होलकर के विरुद्ध अंगरेजों को सहायता दी। इर तरह की ऊंच नीच देखने के बाद युद्ध अनिवार्य हो गया। होलकर की शक्ति को कम करने के लिये उसके विरुद्ध तीन ओर से आक्रमण किया गया। मुख्य लेना लार्ड लेक के निरीक्षण में मध्य हिन्दुस्तान में थी। दक्षिण में कर्नल वालेस और गुजरात में कर्नल मरे इस उद्देश्य से तैनात किए गए। जनरल लार्ड लेक ने कर्नल डौन के नेतृत्व में एक सेना भेजकर टोंक रामपुर के किले को जीत लिया। इस किले को सर करने में उन्हें कोई दिक्कत नहीं हुई १६ मई १८०४ ई० से यह किला अंगरेजो के हाथ में आगया। इसके बाद लार्ड लेक ने कर्नल मान्सन को होलकर का दमन करने के लिये भेजा। उपक्रम यह था कि कर्नल मरे गुजरात से सेना लेकर होलकर के राज्य में प्रवेश करेगा और कर्नल मान्सन उत्तर की ओर से। कर्नल मान्सन ने एक जुलाई को मुकन्दरा केदरे से, होलकर के राज्य में प्रवेश किया। इसी सायंकाल को मान्सन की सेना ने हिंगला का किला जीत लिया। मान्सन की सेना शक्तिशालिनी तथा साधन सम्पन्न थी। ७ जुलाई को मान्सन मुकन्दरा केदरा से ६० मील दूर तक चम्बल नदी की ओर बढा। उसे यह समाचार मिला कि होलकर नदी पार कर रहा हैं। यह भी सुना कि कर्नल मरे जिसे होलकर पर

आक्रमण करना चाहिए था, गुजरात की ओर लौट गया है, और अपनी सेना के पास दो दिन की ही रसद हैं। इन दोनों बातों से मान्सन घबरा गया। इस घबराहट में उसने मुकन्दरा के दरे की ओर लौटने का निश्चय किया। मान्सन ने धीरे २ सामान भेज कर लौटना शुरू किया। होलकर ने मौका देख कर शत्रु की लौटती हुई सेना पर धावा बोल दिया और उसे घेर लिया। होलकर स्वयं घुड़सवार सेना के साथ था। उसने सेनाओं की टुकड़ियों में बांट अंगरेजों को हराया। मान्सन को पराजित होकर भागना पड़ा। अंगरेजों की इस पराजय के कारण होलकर का नाम तथा मान चमक गया। अन्य देशी राजा भी अंगरेजों के विरु सिर उठाने लगे।

होलकर ने इस पराजय से फायदा उठाकर एकदम दिल्ली पर धावा बोल दिया। परन्तु वहां सफल न हुआ, इस असफलता से होलकर निराश नहीं हुआ। उसने भरतपुर के जाट राजा रणजीतसिंह के साथ सुलह कर अंग्रेजों का मुकाबला किया। चारों ओर से अंग्रेजो के सतर्क होने के कारण दीग के दुर्ग में दोनों (होलकर तथा रणजीतसिंह) की सम्मिलित सेनाएं अंग्रेजों के सामने न ठहर सकी। होलकर वहां से निकल भगा। अंग्रेजों ने सोचा कि जब तक भरतपुर के किले को आधीन नहीं किया जायगा तब तक अन्तिम विजय नहीं मिल सकती। इस उद्देश्य से लेक ने सारा ज़ोर भरतपुर के किले को जीतने में लगाया। जनरल लेक ३ जनवरी को १८०५ ई० को भरतपुर पहुंचा। पूरे बल के साथ किले पर धावा बोला। दीवार में कुछ फटाव दिखाई दिया परन्तु सफलता नहीं हुई। जनरल लेक ने तीन वार किले को जीतने के लिए विशेष कोशिष की परन्तु एक वार भी सफलता नहीं हुई। अंगरेज लोग शत्रु के गढ़ में घर के द्रोही पैदा कर विजय प्राप्त करने में अभ्यस्त थे। परन्तु उन्हें यहां कोई देशद्रोही नहीं मिला। लाचार होकर गवर्नर जनरल लार्ड लेकको युद्ध बन्द करनेको लिखा। इतने में अमीरखान के विश्वास घात के कारण लार्डलेक को विजय की झलक दिखने लगी।

इसीसमय लाचार होकर भरतपुर के राजाने भी आत्मरक्षा के विचार से संधि की शर्तों पर विचार करने की इच्छा प्रकट की। अंगरेज तो तय्यार ही थे। सुलह होगई। अब होलकर का साथ देने वाला कोई नहीं था। इधर लार्डवेल्सली की जगह लार्डकार्नवालिस आगया। उसने एकदम युद्धवन्द कर दिया। यसवन्तराव होलकर विफल होकर बेचैन होगया।

कार्नवालिस की शांतिमयी नीतिके कारण सिंधियाने अपने आपको होलकर से अलग रखना उचित समझा। असहाय साधनहीन यशवन्तराव होलकर ने अपने आपको दुश्मन के हाथ में नही सौंपा और नाही रक्षा के लिए हाथ पसारा। वह वहां से पंजाब गया। उसे आशा थी कि पंजाब का स्वतन्त्र राजा रणजीतसिंह उसे अंगरेजों के विरुद्ध सहायता देगा। परन्तु वहां भी उसे सफलता न हुई। रणजीतसिंह अंगरेजों के संधि जाल में फंस चुका था।

अमीरखां के अधम चरित से पता लगता है कि लार्डलेक भी होलकर की वीरतामयी विजय यात्राओं से तंग हो चुका था उसे भय था कि कही होलकर रणजीतसिंह या अन्य सिक्ख सरदारों के साथ न मिल जाय। इस लिये उसने कलकत्ता कौंसल की आज्ञानुसार अपनी प्रतिज्ञा कायम रखने के लिए रणजीतसिंह द्वारा होलकर को संधि करने लिए तय्यार किया। आखिर संधि की शर्ते १८०५ ई० की १४ दिसम्बर से तय हुई। इसके अनुसार अंगरेजों ने ताप्ती और गोदावरी के दक्षिण की ओर के सब प्रदेश जो होलकर से छीने थे उसे लौटा दिए। होलकर के राज्य में सहायक सेना की भी स्थापना की गयी। एवं हमने देखा कि अगरेजों ने जबर्दस्ती, नीति वलद्वारा छलबल से भारत के राजाओं को आपस में लड़ाकर अपना प्रयत्न काम किया। यशवन्तराव होलकर का परिश्रम सराहनीय है। जब उसे एक बार अंगरेजों का स्वार्थ पूर्ण स्वभाव का पता लग गया उसने फिर उन पर कभी विश्वास नही किया। इसी लिए वह सिंधिया की तरह अपमानित नहीं। हुआ। आखिर होलकर आत्मग्लानि से उद्विग्न होकर १८११ ई० में इस लोक से चल बसा।

(१३)

❀ पूना दरबार में षड्यन्त्र ❀

वमई की संधि के वाद पूना दरबार में कर्नल क्लोज रैजिडेन्ट था। लार्ड बेल्सली ने कई बार कर्नल क्लोज को इस बात के लिए प्रेरित किया कि वह पूना दरवारे में द्वेषाग्नि पैदा करे और बाजीराव की रही सही शक्ति को नष्ट करे। परन्तु कर्नल क्लोज ने लार्ड वेल्सली की इस स्कीम को नहीं माना। वह बाजीराव का हित चिन्तक था। वह पूनादरवार तथा अंगरेजी सरकारके वीचमें खर्शेदजी नामके पारसीद्वारा सारा कारोवार करता था। जबतक कर्नल क्लोज रैजिडेन्ट रहा उसकी पेशवा से किसी प्रकार की अनवन नहीं। हुई। परन्तु कर्नल क्लोज के बाद जब एलफिन्सटन रैजिडेन्ट वनकर आया तब इसने लार्डवेल्सली की नीति के अनुसार दरवार में नित नए षड्यन्त्र करने शुरू किए। खर्शेदजी को राज्य कार्य से अलग कर स्वयं सब काम देखने शुरू किए। उसने इस समय वाजीराव पेशवा तथा गायकवाड़ के दरवार में कुछेक प्रश्नों पर झगडा था। पेशबाने यलफिन्स्टन से कहा कि वह इसका फैसला कराएं।

एलफिन्सटन ने आपकवाड के महाराज को कहा कि वह अपना एजन्ट पूना दरवार में भेजे। गायकवाड़ ने गंगाधर शास्त्री को इस काम के लिए भेजा। यह गंगाधर शास्त्री पहले पेशवायेंके दरवारमें नौकर था। गुस्ताखी के अपराध में इसे वहां से निकाला गया था। गंगाधर शास्त्री जब पूना में आया, इसने एलफिन्सटन को फर्सेदजी के विरुद्ध भड़काया।

पूना पेशवाने गंगाधर शास्त्री के साथ विवाह सम्बन्धी प्रस्ताव पेश करके उसे अपने अनुकूल करने की कोशिश की। परन्तु एलफिन्सटन के रहते यह कार्य न हो सका। गंगाधर शास्त्री ने पेशवा तथा गायकवाड़ के साथ जो लेन देन था उसका फैसला भी कर दिया परन्तु स्वयं पीछे से यह कहकर टाल दिया कि गायकवाड़ इसे नहीं मानेगा।

अंगरेजों के इशारे पर उसने पेशवा का वजीर बनना भी अस्वीकार किया और पेशवा की साली का अपने पुत्र के साथ जो विवाह होना

निश्चित हुआ उसे भी बन्द कर दिया। इसी समय १८१५ ई० जुलाई मास में गंगाधर शास्त्री, पेशवा के साथ पुरन्दर गया। वहां किसी ने शास्त्री का खून कर दिया। कहा जाता है कि बाजीराव के मुंहलगे में त्रिम्बकजी डिंगलेने पेशवा के इशारे पर ही यह खून कराया था। परन्तु इस पक्ष के समर्थन के लिए कोई युक्ति नहीं दी गई।

परन्तु एलफिन्सटन ने यही कहा कि इस हत्या का कराने वाला त्रिम्बकजीडिंगले हैं। और बाजीराव को अन्तिम सूचना दी कि यदि वह डिंगले को हमारे हाथ में नहीं सौंपेगा तो पूना पर आक्रमण कर दिया जायगा। बाजीरावने बेवस होकर डिंगले को अंगरेजों के हाथ सौंप दिया अंगरेजों ने उसे थाना में गिरफ्तार किया।

पूना दरबार में दो ही प्रभावशाली अनुभवी व्यक्ति थे। खर्सेदजी और डिंगले। एलफिन्सटन ने षड्‌यन्त्रों का जाल फैलाकर, बाजीराव को दोनों व्यक्तियों को अलग कर दिया। ये दोनों व्यक्ति ही समय २ पर बाजीराव को सलाह देकर ढांढस बंधाते थे।

(१४)

❁ अंगरेज और बाजीराव ❁

पूना का रैजिडेन्ट एलफिन्सटन, पेशवा के साथ जान बूझ कर लड़ाई छोड़ना चाहता था। रैजिडेन्ट ने पेशवा को यह शर्त पूरी करने को कहा त्रिम्बकजी डुंगले ब्रिटिश सेना की रक्षा में कैद था। वह वहां से निकल भगा। कहा जाता है कि वह पेशवा के राज्य में रहता था। एलफिन्सटन ने पेशवा को कहा कि वह त्रिम्बकजी डेगले को एक मास के भीतर अंगरेजों को सौंपदें और साथ ही एकदम जमानत के तौरे पर सिंहगढ पुरन्दर और राजगढ़ के किलों को हमारे आधीन करदें। एलफिन्सटन, सेनाए लेकर पूनाकी ओर बढ़। बाजीरावने १८१७ ई० ६ मई को तीनों किले अंगरेजों के हाथ में सौंपनेका हुक्म कर दिया। अंग्रेज इतने से ही सन्तुष्ट नहीं हुये। उन्होंने बाजीराव से कहा कि वह गंगाधर शास्त्री की हत्या के बदले पूना की संधि पर हस्ताक्षर करे। बाजीराव ने निर्दोष होते हुये भी सस्काक्षर कर दिए। इस संधि द्वारा पेशवा ने गायकवाढ

से जो कुछ लेना था उसे सदा के लिए छोड़ दिया। अंगरेजों ने गुजरात के उपजाऊ प्रदेशों को पेशवा से छीनकर अपने अधिकार में करने की कोशिश शुरू की। बाजीराव अंगरेजों के इस कृतघ्नता पूर्ण व्यवहार से बहुत हैरान हुआ।

बाजीराव तथा सरदारोंने निश्चय किया कि यातो स्वाधीनताके साथ जीवन बिताएंगे या मर मिटेंगे। बापू गोखलेके नेतृत्व में मराठी सेनाओं ने अंगरेजों के विरुद्ध युद्ध का शंख बजा दिया। किसी भी ब्रिटिश लेखक ने बापू गोखले के विषय में बुरी आलोचना नहीं की। इसने बसई की संधि कराने में; उन्हें पूरी सहायता दी थी। परन्तु इस समय वह भी इनके अत्याचारों तथा अन्यायों से हैरान हो चुका था। एलफिन्स्टन ने मराठी सेना का मुकाबला करने के लिए गवर्नर जनरल को लिखा। कर्नल वर्र और जनरल स्मिथ सेनाओं के साथ १८१७ ई० ५ नवम्बर को पूना में पहुंचे। इसीदिन खिड़की का प्रसिद्ध युद्ध हुआ। पेशवा की सेना हार गई। पेशवा प्रसिद्ध पार्वती मन्दिरपर खडा हुआ युद्धके उतार चढ़ावको देख रहा थी। इस पराजय का जहां एक कारण यह था कि मराठों की सेना में कई स्वामि द्रोही थे वहां मुख्य कारण यह था कि बापू गोखले जनरल स्मिथ और कर्नल वर्र की सेनायों के मिलने से पहले अंग्रेजी फौजों पर आक्रमण करने में सफल नहीं हो सका। खिड़की के युद्ध में पराजित होकर, बाजी राव पूना से भाग निकला। बापू गोखले की सेना ने इसके बाद कई जगह अंग्रजों को हराया परन्तु इसी बीच में बापू गोखले का देहान्त हो गयां। पेशवा कमजोर था उसमें इतनी शक्ति नहीं थी कि वह सेना का संचालन कर सके। भीरु बाजीराव ने संधि करने की इच्छा प्रकट की। माल्कम ने पेशवा को ८ लाख की वार्षिक पेन्शन देनी स्वीकार की। इसपर बाजीराव ने १८१८ ई० के जून मास में अंगरेजों के हाथें में अपने आपको सौंप दिया।

अंगरेजों ने उसे कानपुर के समीप विठुर स्थान में भेज दिया। वहां वह १८५० ई० में इस लोक से चल बसा। यह अन्तिम पेशवा था। १८१८ ई० में मृत्यु से ३२ साल पूर्व नाना साहब को दत्तक पुत्र

बनाया और पेशवाओं की परम्परागत थाती उसे सौंपी।

पूना को सहायक सेना ने घेर लिया। दो अंगरेजी सेनाएं दो और पूना में प्रविष्ट हुई और ११ फर्वरी १८१८ को घोषणा दी कि यह प्रान्त ब्रिटिश साम्राज्य का एक प्रांत बनाया जाता हैं।

बाजीराव ने आत्म समर्पण कर, मराठा राज्य को अंग्रेजों के हाथ में सौंप दिया। जिनके सहारे से बाजीराव पेशवा बना था उन्होंने अपना मतलब पूरा कर उसे रसातल तक पहुंचाया।

यह सब क्यों हुआ?

निरन्तर प्रचण्ड तेज से चमकता हुआ उदय भानु क्यों मन्द तेज होकर अस्त हो गया। शिवाजी; बाला जी विश्वनाथ, तथा नाना फडनवीस आदि ने भरसक कोशिश कर, जिस साम्राज्य की स्थापना की थी वह साम्राज्य इतनी जल्दी क्यों छिन्नभिन्न होगया। जिस शक्ति ने १७६१ ई० के भयंकर पानीपत के युद्ध में विदेशी अफगानों की भयकर चोट खाकर भी पीछे कदम नहीं हटाया और फिर से नया जीवन धारण कर दुर्रनी के उत्तराधिकारियों का दिल्ली दरबार पर अधिकार नहीं होने दिया वह शक्ति इस प्रकार एक दम क्यों निःसार हो गई?

हमारी सम्मति में इस परिवर्तन के दो मुख्य कारण हैं प्रथम यह कि इस समय की भारतीय जनता में देशभक्ति तथा जातीयता के भाव पैदा नहीं हुये थे। इने गिने व्यक्तियों में ही यह भाव विद्यमान थे, परन्तु उनको अच्छे सहायक नहीं मिले।

दूसरा कारण यह है कि उस समय के राजनतिक नेता युरोपियनों की गहरी चालों को नहीं समझ सके और शठं प्रति शठं के सिद्धान्त के अनुसार पाप का दमन करने में चूक गये।

मराठों का उत्तर कालीन इतिहास बताता है कि सिवाय नाना फडनवीस तथा कुछ अंशों में यशवन्तराव होलकर के और किसी ने शत्रुओं की चोलों को समझने का यत्न नहीं किया।

भारतीय जनता को चाहिये कि इन दो कमियों को दूर कर वीरों की मांग को पूरा करे यही सच्ची श्रद्धांजलि है।